बीस स्थानक तप विधि

(२० कथाए, स्तुति, स्तवन आदि सहित)

●

मूल लेख -

बीस स्थानक तप विधि (गुजराती) में वर्णित
कथाओ का अनुवाद

●

सपादक

श्री चाँदमल सीपाणी, 'साहित्य भूषण'

मन्त्री–श्री जिनदत्तसूरि मण्डल दादाबाडी, अजमेर

●

प्रकाशक

पुण्य सुवर्ण ज्ञानपीठ, बीकानेर

वीर सवत् २४८७ ★ ईस्वी सन् १९६१

वि सवत् २०१८ सुखसागरस ७६

परम पूज्या विदुषी, शासन प्रभाविका, भारत कोकिला
श्री विचक्षणीजी महाराज सा.



जिनकी प्रेरणा से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है जिसकी कि हिंदी संसार में अत्यन्त आवश्यकता थी।

समर्पण

श्री आदरणीय परमपूज्या

विदुषी शासन प्रभाविका

श्री विचक्षणश्रीजी महाराज साहिबा

के

कर कमलो में

सादर समर्पण

सहायक सूची

२५१) श्री [illegible] [illegible], [illegible]
२५१) श्री [illegible]जी [illegible], [illegible]
१०१) श्री [illegible] बाई [illegible], [illegible]
१०१) श्री [illegible]बाई [illegible], [illegible]
१०१) श्री [illegible] [illegible], जयपुर
१०१) श्री [illegible]जी [illegible], जयपुर
५१) श्री उमरावमलजी [illegible] [illegible], जयपुर
५१) श्री [illegible]चंदजी [illegible], जयपुर
५१) श्री पदमचंदजी [illegible], जयपुर
५१) श्री जैन श्वेताम्बर संघ, [illegible]
५१) श्री जैन श्वेताम्बर संघ, [illegible]पुर
५१) श्री राजमलजी सुराणा, जयपुर
३१) उदयपुर से
२५) श्री अमरचंदजी नाहर, जयपुर
२५) श्री जड़ावचंदजी पगारिया, जावरा
२५) श्री कपूरचंदजी श्रीमाल, झूंझनू
२५) गुप्त जयपुर
२१) श्री चिंतामणजी वढ़ेर, कोटा
१५) श्री समीरमलजी हेमराजजी, केकड़ी
१५) श्री विनोबाई, जयपुर
११) श्री शानूरामजी पंजावी, जयपुर
११) श्री संतोषचंदजी कोठारी
११) श्री कस्तूरीबाई पंजावी, जयपुर

दानवीर, धर्मपरायण



श्री जवरीचंदजी खजांची, नागोर

अर्हम

श्रीमान् सेठ जंवरीचंदजी का संक्षिप्त जीवन परिचय

राजस्थान के अत्यधिक एवम् प्रसिद्धि प्राप्त नागोर शहर में सवत १६४४ मार्ग शीर्ष शुक्ला ६ को आपका जन्म हुआ। आप धन सम्पन्न, धर्मनिष्ट व लब्ध प्रतिष्ठित श्रीमान् लाभचन्दजी सा० खजाची के सुपुत्र थे।

आपका बचपन बडे हो लाड प्यार से व्यतीत हुआ था। उस समय के शिक्षा माध्यम के अनुसार आपने अच्छी योग्यता प्राप्त की। अध्ययन के साथ २ आपने मनन अत्यधिक किया जिस कारण आपने व्यापार धधे तथा समाज जाति में अच्छा स्थान प्राप्त किया। आपका विवाह नागोर निवासी सेठ रिखबचदजी चतुरमुथा की सुयोग्या पुत्री झणकारबाई के साथ हुआ। झणकारबाई भी बडी सुशीला, धर्मनिष्टा तथा शात स्वभाव वाली हैं। आपने बीस स्थानक, नवपद कल्याणक, चतुर्दशी, अष्टमी, पचमी आदि तिथि आराधन तथा वार्षिक तप, उपधान तप आदि विविध तपस्याओ की आराधना की है। सामायिक, पोषध, प्रतिक्रमण, पूजा आदि धर्म कार्यो म हमेशा उद्यत रहती हैं। आप जप, तप, तीर्थयात्रा आदि धम कार्यों में लगी रहती हुई आपका नाम उच्च एवम् अपना जीवन सफल व आदर्श बनाया है। सेठ साहब सुयोग्या धर्मपत्नि के कारण विशेष सरल व धर्मप्रिय बन गये। आपका दिल बहुत ही उदार था। आपको तीथ यात्रा को बहुत भावना

रहती थी। आपने शत्रुंजय, गिरनार, आबू, सम्मेद शिखर, ऋषभदेवजी, फलौदी पार्श्वनाथ, जैसलमेर आदि अनेक महान् तीर्थों की यात्राएँ कर पुण्य उपार्जन किया। आपने शुभ कार्यो मे हजारो रुपया खर्च किया। पालीताणा, जैसलमेर, ओसिया, मेड़तारोड आदि स्थानों मे कमरे बनवाये। नागोर के बड़े मदिर मे चाँदी का दरवाजा बनवाया। खरतरगच्छ कालोपोल के उपाश्रय में श्री सिद्धाचलजी का पट पधराया। इस प्रकार अनेक काम खुले दिल से किये। इस तरह अपने शुभ कार्यों की अमर सुगंध फैलाते हुए संवत् २००६ आषाढ़ शुकला १ को इस नश्वर शरीर का त्याग कर स्वर्गवासी हुए। आपके कारण परिवार एवम् समाज मे बहुत कमी हो गई परन्तु अटल नियम से कौन बच सकता है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती इन्द्र, चंद्र आदि महापुरुष को भी इस अटल नियम ने नही छोड़ा तो दूसरों की तो बात ही क्या।

आपके लघुभ्राता श्री ज्ञानचदजी खजांची थे। वे दुर्भाग्य से युवावस्था मे ही काल के गाल में चले गये। उनकी धर्मपरायणा धर्मपत्नि श्री० अमरीबाई ने संयम ले लिया जिनका नाम अभयश्रीजी रखा गया था परन्तु कुछ समय हो संयम पालन कर वे भी स्वर्गवासी हो गई।

आपके ही परिवार में सुयोग्या विदूषी साध्वीजी श्री अविचलश्रीजी (श्री वृद्धिचंदजी खजांची की सुपुत्री कल्याणबाई) तथा श्री कमलाश्रीजी (श्री हीराचंदजी खजांची

के सुपुत्र श्री चेतनचदजी की धमपत्नि श्री कल्याणीबाई) ने दीक्षाग्रहण कर आत्म कल्याण एवम् शासन सेवा कर रही हैं।

आपके पीछे आपके दत्तक पुत्र श्री पदमचदजी भी आपके पद चिन्हों पर चल रहे हैं व बहुत ही धर्मनिष्ट ह तथा अपनी योग्यता से समाज प्रिय भी खूब हो रहे ह ।

विदूषी रत्न श्री अविचलश्रीजी के उपदेश से श्री झणकारबाई ने बीस स्थानक तप की पुस्तको के लिए रु० २५०) की आर्थिक सहायता देकर ज्ञानदान का लाभ लिया है एतदर्थ धन्यवाद ।

———

प्रस्तावना

यह तो सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य किसी न किसी प्रकार से सर्व साधारण को सन्मार्ग दिखाकर उन्हे सुखी बनाने का होता है। उसी तरह इस पुस्तक का ध्येय भी यही है। अब प्रश्न यह है कि सुख किसे कहा जाय। क्या भरत चक्रवर्ती की तरह राजसुख को सुख कहा जाय? अथवा लक्ष्मी का स्वामी बन नाना प्रकार के भोग विलास को सुख कहा जाय? आदि। वास्तव में देखा जाय तो इनमें लेशमात्र भी सुख नही है क्योंकि ये नाशवान है तथा आत्मा के साथ सदा इनका सबन्ध नहीं रहने वाला है। फिर सुख किस तरह प्राप्त हो सकता है? परमोपकारी श्री तीर्थंकर देव ने अनंत अव्याबाध सुख प्राप्त करने के लिए दान, शील, तप और भावना चार प्रकार के धर्म का सेवन करने के लिए प्रतिपादित किया है। पूर्णरूप से इस चतुर्विधि धर्म का सेवन करने वाले प्राणी को अनुक्रम से उपरोक्त सुख प्राप्त होता है।

इस पुस्तक म उपरोक्त चार प्रकार के धर्म के अन्तर्गत २० स्थानक के तप को प्रधान स्थान दिया गया है। इन भिन्न २ बीस स्थानक पद की आराधना से किस २ को क्या २ फल प्राप्त हुआ, तत्सम्बन्धी हरेक पद की आराधना करनेवाले महापुरुष की कथा का वर्णन किया गया है।

वर्तमान २४ तीर्थकरो ने भी पूर्व भव में इन स्थानको की आराधना कर जिन नाम कर्म का उपार्जन किया था।

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

श्री बीसस्थानक तप विधि

शुभ दिन, वार, नक्षत्र व चन्द्रबल देख कर गुरु के पास विधिपूर्वक बीस स्थानक तप की ओली लेकर शुरू करना। एक ओली दो मास से छ मास पर्यन्त पूरी करे। यदि छ मास के अन्दर एक ओली पूरी न कर सके तो उसको फिर से दूसरी ओली शुरू करनी होगी क्योंकि वह गिनती में नहीं आती। एक ओली के बीस पद होते हैं, उन बीसों पदों में से बीस दिन में एक पद की आराधना करनी होती है। इस तरह कुल चार सौ दिन में ओली पूर्ण होती है। अगर ऐसा न हो सके तो बीस दिन में एक एक पद की आराधना कर के ओली पूर्ण करे। (कुल बीस दिन में)। शास्त्रानुसार तो यदि शक्ति हो तो अट्ठम (तेला) व्रत कर के बीस स्थानक तप का आराधन करे, क्रमश बीस अट्ठम (तेला) कर लेने पर एक ओली पूरी होती है। इस प्रकार (४००) चार सौ अट्ठम के कर लेने पर बीस स्थानक तप का आराधन समाप्त होता है। यदि अट्ठम करके ओली का आराधन करने की शक्ति न हो तो, यथाशक्ति (छट्ठ) बेला, उपवास, अथवा आयंबिल या एकासणा कर के ओली की आराधना करे। तपस्या के दिन यथाशक्ति अष्ट प्रहरी या चौपहरी पौषध

७ दुन्दुभि प्रभृत्यनेक आकाशस्थित वादित्र वादन-रुप सत्प्रातिहार्य शोभिताय श्रीमदर्हते नमः

८ मुक्ताजाल झुम्बनकयुक्त छत्रत्रय सत्प्रातिहार्य शोभिताय श्रीमदर्हते नमः

९ स्वपरापाय निवारकातिशयधराय श्रीमदर्हते नमः

१० पंचत्रिंशदवाणीगुणयुक्त सुरासुर देवेन्द्र नरेन्द्राणां पूज्याय श्रीमदर्हते नमः

११ सर्व भाषानुगामी सकल संशयोच्छेदक वचनातिशयाय श्रीमदर्हते नमः

१२ लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञानरूप ज्ञानातिशयेश्वराय श्रीमदर्हते नमः

(उपरोक्त खमासमण देकर १२ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे)

स्तुति–

अरिहन्त, अरुहन्त, अरहन्त, देवाधिदेव, परमेश्वर, परम करुणा निधान, महागोप, महामाण, महानिर्यामक, महासार्थवाह, जगद्वैद्य, जिनेश्वर, तीर्थङ्कर, विश्वम्भर, विश्वपते, विश्वोत्तम, त्रिकालवित्, सर्वज्ञ, सर्वदर्शिन, देवाधिदेव, पुरुषोत्तम, वीतराग, जगन्नाथ, जगद्बन्धो, जगत्तारण, बुद्ध, भगवत, विश्वानन्दिन्, सहजानन्दी, शुद्धचेतना, धर्ममयी,

व्यक्तस्वभावमयी, धर्मरत्न, रत्नागर, धमदेशक, भाव धर्मदाता, परमात्मन्, परमदर्शी, परमगुरो, परमोपकारिन्, परमससार-तारक, अशरणशरण, तरणतारण, भवभयहरण, इत्यादि भगवत सहस्र नाम का पाठ करे और अगणित गुण गुणो से भूपित श्रीमदर्हतजीव को प्रतिक्षण में वन्दना हो और हमारा त्राण शरण गति, मति सब अरिहन्त भगवान है और श्री अरिहन्त भगवान् हमारी श्रद्धा सफल करे ।

इस प्रकार भगवान् की स्तुति करे और श्वेतवण अरि-हन्त का गुण कीतन करे, पारणा के दिन अष्टप्रकारी, सत्रह्-प्रकारी एकवीसप्रकारी, अष्टोत्तरी आदि पूजाए एव यथा शक्ति भक्ति करे, नूतन मुकुट कुण्डल प्रभृति भूपण चढावे, छत्र चमर रत्नतिलक चढावे, शरीर मार्जन के लिये वस्त्र तथा चन्द्रवा चढावे, समवशरण की रचना कराकर तीसरे शालमें सिंहासनपर प्रभुको विराजमान कराके आगे मत्र पूत धान्य से प्राकारकी रचना करे और इन्द्रध्वज चढावे, रूप्यमयी, अक्षत-मयी अष्ट माङ्गलिक चढावे, सुन्दर वर्ण गधयुत पुष्प फलादि रखे, और विविध प्रकार का पकवान चढावे, भण्डार में यथाशक्ति द्रव्य दे, केवलज्ञान का उत्सव करे और जिन बिम्ब करावे । इस प्रकार छ मास पर्यन्त अरिहन्त पद के आराधन से सर्वेष्ट सिद्धि होती है । अरिहन्तपदके आराधनसे श्रीदेवपाल तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है ।

श्री देवपाल

इस भारत क्षेत्र में लक्ष्मी से पूर्ण अचलपुर नाम का एक नगर था। वहां के लोग धनाढ्य, सुखी और दानी थे। वहां के राजा का नाम सिंहरथ था। जिसका यश सब जगह फैल रहा था। वह न्यायपूर्वक राज्य करता था और उन्होंने अपने शत्रुओं को वश में कर रखा था। कोई उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता था। वह हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सब तरह की लक्ष्मी का स्वामी था। सर्व गुण सम्पन्न कनकमाला और शीलवती नामकी दो राणियां थीं। राजा के एक सुलक्षणा एवम् अनुपम सौंदर्यशाली गुणवती नाम की पुत्री थी।

उसी नगर में साक्षात् कुबेर के समान अपार धनशाली जिनदत्त नाम का सेठ रहता था। राजा भी उसका बड़ा सम्मान करता था। वह सेठ सम्यग् दृष्टियों में श्रेष्ठ, दुखी और अनाथों को आश्रय देने वाला, परोपकारी, दयालु आदि गुणों से विभूषित था। उसके घर में (क्षत्रिय जाति मे उत्पन्न हुआ,) सर्व जीवों पर दया करने वाला, जैन धर्म को मानने वाला देवपाल नाम का नौकर था। वह सद्गुरु के सहवास से वीतराग धर्म के रहस्य को जानने वाला था। अहा ! सद्गुरु की कृपा से क्या नहीं मिलता ? सद्गुरु मिथ्यात्व का नाश कर अनेक भवों में उपार्जन किए क्लिष्ट

कर्मों का नाश करने वाले सम्यगदर्शन ज्ञान और चारित्र रूपी तीन रत्नों को प्राप्त कर भव भ्रमण रूपी चक्र से मुक्त करते हैं। ऐसे सद्गुरु की संगति के गुणों का यथार्थ वर्णन कौन कर सकता है ?

एक दिन आकाश में मेघ गर्जना कर रहे थे, जगह जगह नदियों में पानी बड़े वेग से बह रहा था, ऐसे समय मे देवपाल कम्बल ओढ़े, हाथ में लाठी लिए जिनदत्त सेठ की गायों को लेकर एक नदी के किनारे चराने लगा। इतने में जल के तेज बहाव के कारण नदी तट का एक तरफ का हिस्सा गिर पड़ा और उसमें से आदिश्वर भगवान युगादिदेव की मनोहर मूर्ति निकली। एकाएक देवपाल की दृष्टि उस मूर्ति को देखकर चिन्तामणी अथवा कल्पवृक्ष प्राप्त हुआ हो इस प्रकार हृदय में प्रसन्न होता हुआ सोचने लगा कि अहो ! मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ कि तीन लोक के स्वामी के मुझे दर्शन हुए। मेरे सब अशुभ कर्मों का नाश होकर वास्तव में मेरा पुण्य उदय हुआ है। अब इस प्रभु की मूर्ति को पवित्र स्थान देखकर स्थापित करूं। इस प्रकार विचार कर पवित्र जगह देख नदी के किनारे पर एक पर्ण कुटि बनाई और उसमें युगादिदेव की प्रतिमा स्थापित कर यह नियम लिया कि 'जीवन पर्यन्त जब तक यहां प्रभु के दर्शन नहीं करूंगा तब तक भोजन नहीं करूंगा।' ऐसा नियम लेकर निरन्तर उस प्रतिमा के द्वारा प्रभु की चंदन से सेवा, पूजा, भक्ति करने लगा।

इस प्रकार अनन्य भक्ति से निश्चल अभिग्रह युक्त प्रभु के दर्शन और सेवा करते हुए कुछ दिन व्यतीत हुए। इतने मे एक दिन आकाश सर्वत्र काले मेघों से आच्छादित हो गया, चारों दिशाओं में घनघोर घटा छा गई। बिजली की कड़क से सम्पूर्ण आकाश मण्डल घोर गर्जना से गूंजने लगा और मूसलधार वर्षा होने लगी। सर्वत्र जल ही जल दृष्टि-गोचर हो रहा था। ऐसे समय मे देवपाल युगादिदेव की सेवा करने नहीं जा सका जिससे बिना भोजन के ही रहना पड़ा। इस प्रकार लगातार सात दिवस तक वर्षा होती रही इसलिए उसे भगवान के दर्शन न होने से सात उपवास करने पड़े। आठवें दिन वर्षा रुकने पर देवपाल बड़े हर्ष व उल्लास के साथ भगवान की सेवा पूजा करने गया। वहाँ जाकर अत्यन्त भक्ति पूर्वक सेवा करके इस प्रकार स्तुति करने लगा।

'हे प्रभु! हे त्रैलोक्य नाथ! हे करुणा समुद्र! मेरा अपराध क्षमा करें क्योंकि सात दिन तक मुझ मंदभागी ने आपकी सेवा भक्ति नही की। हे त्रैलोक्य तारण! जिस प्रकार वन मे मालती का पुष्प बेकार है उसी प्रकार मेरे ये सात दिन आपकी सेवा भक्ति के बिना व्यर्थ गये है। हे त्रैलोक्य वत्सल! आज आपके पवित्र दर्शन करके कृतार्थ हुआ हूँ। हे विश्वेश! विशेष क्या कहूँ! आपके दर्शन बिना मुझे कोई भी बात अच्छी नही लगती, न कोई जगह आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये हे करुणा निधि! मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि क्लिष्ट कर्मों को नाश करने वाले आपके

दर्शन का मुझको निरन्तर लाभ मिलता रहे।"

इस प्रकार देवपाल की अनन्य भक्ति देख युगादि प्रभु की शासन देवी चक्रेश्वरी प्रत्यक्ष प्रकट हो हर्षित होकर कहने लगी। 'हे देवपाल! मैं भगवान की शासनदेवी चक्रेश्वरी हूँ। तेरी भक्ति से तेरे पर प्रसन्न हुई हूँ इसलिये तू इच्छित वर माग। इस लोक का कोई भी सुख माग ले, वह मैं देने में समर्थ हूँ।

देवपाल ने कहा 'हे देवी! त्रैलोक्य के स्वामी पर मेरी अनुपम और अखण्ड भक्ति हो, इसके अतिरिक्त किसी वस्तु की मुझे इच्छा नही है।

देवी—हे पुण्यशाली! यह तो है ही, परन्तु इसके सिवाय और कोई वर माग। देवता का दर्शन कभी निष्फल नही जाता।

देवपाल—शासन प्रभाविका! भगवान की भक्ति के आगे तीन लोक के साम्राज्य को भी कोई गिनती नही। ऐसा कौन मूर्ख है जो हाथी को बेचकर गदहा खरीदे। हे देवी! भगवान् की अनन्य भक्ति के सिवाय मुझे किसी पदार्थ की इच्छा नही है।

देवी—भाग्यशाली! तेरी ऐसी निःस्पृह भावना से प्रसन्न होकर यह वरदान देती हूँ कि थोडे ही दिनो में तू लक्ष्मी से पूर्ण इसी नगर के राज्य का स्वामी होगा। यह वरदान देकर देवी अन्तर्धान होगई।

इसके बाद देवपाल ने भावपूर्वक उत्साह से शुद्ध अन्त

करण से भगवान की भक्ति स्तवन किया तथा भगवान का ध्यान करता हुआ घर गया । जिनदत्त सेठ ने बहुत आदर पूर्वक क्षीर से पारणा कराया । उस समय नगर के बाहर उद्यान में दमसार मुनि ने निर्मल शुक्ल ध्यान के प्रभाव से घातिया कर्मो का क्षय कर लोकालोक को एक ही समय में प्रकाश करने वाला निर्मल केवलज्ञान प्राप्त किया । उनका देवताओं ने केवलज्ञान महोत्सव किया । जिस प्रकार मन्दराचल पर्वत पर सूर्य शोभायमान होता है उसी प्रकार सुवर्ण कमल पर आरूढ़ होकर केवली भगवान शोभित हुए । नगर में नगर निवासियो को सूचना मिलने पर सब केवलो भगवान की वन्दना को चले । सिंहरथ राजा भी परिवार और अपनी सम्पत्ति सहित केवली की पर्षदा मे आकर पांच अभिगम पूर्वक वन्दना व स्तुति कर उचित स्थान पर बैठ गया । उस समय दमसार केवली भगवान संसार रूप ताप से संतप्त हुए भव्यजनो को अमृत की वृष्टि के समान धर्म देशना देने लगे ।

हे भव्य प्राणियों ! यह संसार दुःखमय दुःख का भण्डार और असार है । प्राणियों का शरीर जल के बुदबुदे के समान क्षण मे उत्पन्न होकर विलय होता है । जो अतिशय श्रम से नाना प्रकार की सम्पदा को प्राप्त कर दूसरों पर हुक्म चलाता है वह भी जब निर्दयी यमराज के फन्दे में पड़ता है तब पूर्ण पश्चाताप करते हुए हाथ फैलाकर मृत्यु को प्राप्त होता है । उस समय महान् परिश्रम से प्राप्त की हुई सम्पदा को कोई अन्य ही भोगता है और उसे प्राप्त करने में किए गये क्लिष्ट

कर्मों को तो उसे ही भोगने पडते हैं। ससार के सब सम्बधियो का स्नेह भी केवल झूठा, प्रपचमय एवम् स्वार्थमय है। यदि माता का स्नेह सत्य है ऐसा मान लिया जाय तो वह भी असत्य है क्योकि देखो चुल्लणी रानी ने अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को अपने सुख मे बाधारूप समझकर उसे मारने के लिये क्या नही किया ! यदि पिता का स्नेह सत्य है ऐसा मान लिया जाय तो वह भी प्रपचमात्र है, क्योकि राज्यलक्ष्मी के लोभी कनककेतु ने अपने सब पुत्रो का अगोपाग का छेदन कर उन्हे राज्य से अयोग्य बनाने का प्रयत्न किया। यदि पुत्र का स्नेह सत्य है ऐसा मान लें तो यह भी भ्रम ही है, क्योकि कोणिक ने अपने पिता श्रणिक को काठ के पीजरे में डालकर उसे क्या क्या दु ख नही दिये ? इस प्रकार ससार के सब रिश्तेदारो का स्नेह उपाधि रूप और दु ख का कारण समझकर हे भव्य जीवो ! आप धर्म में अपने चित्त को स्थिर करो। दस दृष्टान्त के समान दुलभ मनुष्यजन्म, आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, दीर्घआयु और जिन भाषित धर्म को पाकर प्रमाद से उसे क्यो व्यर्थ खोते हो ? मनुष्या को आधी आयु नीद में ही चली जाती है, वाकी में से आधी बचपन और युवावस्था में व्यतीत हो जाती है, अब बाकी रही हुई आयु बुढ़ापे में पूरी हो जाती है। इस प्रकार महान् पुण्य योग से प्राप्त हुए इस मनुष्य भव का लोग मोहवश होकर व्यथ में ही खो देते है। मृत्यु हो जाने पर जब नरक के दु सह दुखो की वेदना सहन करनी पडती है तब यह जोव अत्यन्त पश्चाताप कर रुदन करता है और अन्त में अनन्त ससार चक्र में भ्रमण

करता है। इसलिये हे भव्य प्राणियो ! ससार के इन स्वरूप को समझ कर मोक्ष लक्ष्मी को देनेवाले धर्म की तरफ चित्त को लगाओ।"

केवली भगवान की धर्म देशना सुन कर सिंहरथ राजा को ज्ञान हुआ और उसने पूछा कि हे भगवन् ! अब मेरी आयु कितनी बाकी है ?

केवली—हे राजा ! तेरा आयुष्य अब सिर्फ तीन दिन का और है।

केवली भगवान के ऐसे वचन सुनकर राजा चमका और अपने मन मे पश्चाताप करने लगा। अरे मैंने राज्य लक्ष्मी और ऐश्वर्य मे उन्मत्त हो, [1]पंचेन्द्रिय के विषय और कषाय में लीन होकर जरा भी सुकृत नही किया, तपस्या भी नही की और सारी आयु ऐसे ही व्यतीत करदी। अब क्या हो सकता है? आग लगने के बाद कुआ खोदने से क्या फायदा? इस प्रकार राजा पश्चाताप करने लगा। तब केवली भगवान ने फरमाया हे नरेश ! सिर्फ पश्चाताप करने से क्या होगा ? अभी भी तीन दिन शेष है, कल्याण के लिये वही काफी है। करोड़ों वर्षों तक तपस्या करके जो पुन्य उपार्जन किया जाता है उतना पुण्य एक अन्तर्मुहुर्त में [2]पांच महाव्रत धारी मुनि को होता है।

---

१. पांच इंद्रिय—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।
२. पांच महाव्रत—प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण, और परिग्रह विरमण।

इसलिये अभी सम्यक्त्वयुक्त श्रावक के [1]बारह व्रत अगीकार कर। सम्यकत्वयुक्त किया हुआ थोडा तप भी [2]आठ कर्मो की निर्जरा करने वाला होता है।"

इस प्रकार केवली भगवान् की वाणी सुनकर सवेगपूर्ण हृदय से बारहव्रत अगीकार कर राजा राजमहल में आकर विचारने लगा कि 'अब आयुष्य कम होने से यह राज्य और पुत्री मनोरमा किसके अपण करू ?' इतना विचार आते ही राज्याधिष्ठायिका देवी प्रगट होकर कहने लगी हे राजन्! पच दिव्य प्रकट कर और वह पच दिव्य जिसको पुष्पमाला पहनावे उसे तेरा राज्य और पुत्री मनोरमा अर्पण कर स्वय आत्म हित साधन कर'। ऐसा कह वह देवी अन्तर्धान हो गई। पीछे राजा और मत्री आदि राज्यमडल ने मिलकर पचदिव्य प्रगट किए और नगर मे घुमाये। जिन पूजा के प्रभाव से पचदिव्य ने देवपाल के गले में पुष्पमाला पहनाई। राजा ने महोत्सव पूर्वक मनोरमा का पाणिग्रहण सम्कार देवपाल के साथ कर दिया, सारा राज्य भी उसे भेंट कर दिया और स्वय ने केवली भगवान के पास जाकर चारित्रग्रहण किया। दो दिन तक निरतिचार सयम पाल कर सौधर्म स्वर्ग मे देवता हुआ।

---

१ बारह व्रत स्थूल प्राणातिपात विरमण, स्थूल मृषावाद विरमण, स्थूल अदत्तादान विरमण, स्थूल मथुन विरमण, परिग्रहपरिमाण, दिक्-परिमाण भोगोपभोग परिमाण, अनर्थदण्ड विरमण, सामायिक देशावकाशिक पौषधोपवास और अतिथि सविभाग।

४ आठ कर्म ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

अरे ! दो दिवस मात्र चारित्र पालने से सिंहरथ राजा अनुपम देवता के सुख भोगने वाला हुआ। इसलिये जो दीर्घकाल पर्यन्त सम्यक प्रकार से निरतिचार संयम पालन करता है उसे क्या प्राप्त नहीं होता है? जो एक दिन भी मोह रहित, समभाव पूर्वक निरतिचार चारित्र का पालन करता है उसे कदाचित् मोक्ष न भी मिले, परन्तु देवलोक का सुख तो अवश्य मिलता है। इसीलिये कहा है कि:—

प्रतिहन्तिक्षणार्द्धेन, साम्यमालंव्य कर्म तत् ॥
यन्न हन्यान्नरस्तीव्रतपसा जन्म कोटिभिः ॥१॥

अर्थः- 'जिन कर्मों को मनुष्य करोड़ों जन्म पर्यन्त किये हुए तप से भी दूर नही कर सकता, उन कर्मों को सिर्फ मन के साम्य अवलम्बन से आधे क्षण में दूर कर सकता है।'

अब देवपाल राजा हो गया परन्तु मंत्री वगैरह कोई उसकी आज्ञा को नहीं मानते थे। इससे देवपाल विचार करने लगा कि 'यदि मंत्री आदि नये बनाता हूं तो विना कारण ये सब शत्रु बन जायंगे। अब क्या करना चाहिये ? सेठ जिनदत्त को बुलाकर उनकी सलाह लेना चाहिये। ऐसा विचार कर सेठ को बुलाया परन्तु सेठ भी अभिमान वश नहीं आया। तब देवपाल चितायुक्त होकर सरिता तट पर जहां युगादिदेव पर्ण कुटी मे थे वहां जाकर भाव पूर्वक दर्शन कर स्तुति करने लगा—' हे प्रभु ! हे जगन्नाथ ! हे कृपानिधान ! आप जयवन्ता हो ' हे दीनेश ! आपने मुझे राज्य दिया परन्तु विना घी के भोजन व्यर्थ है उसी प्रकार ऐश्वर्य और प्रताप

बिना राज्य भोगना भी बेकार है। इसलिये हे प्रभु ! जब आपने राज्य दिया है तो उसके साथ २ दसो दिशाओ मे मेरी कीर्ति और प्रताप फैले और सब मेरी आज्ञानुसार काम करे ऐसा उपाय करें नही तो जिस प्रकार होली का राजा केवल हँसी के लिये होता है उसी तरह मैं भी प्रताप रहित वैसा ही गिना जाऊँगा।'

इस प्रकार देवपाल की स्तुति सुनकर चक्रेश्वरी प्रगट हुई और कहने लगी—हे राजा तू जरा भी दिल में खेद मत कर और मै कहूँ वैसा कर जिससे सब तेरे आधीन हो जायँगे। एक मिट्टी का हाथी बनाकर उस पर तू सवारी करना और देव प्रभाव से वह हाथी जीवित होकर सब जगह फिरेगा। यह देखकर सब लोग तेरी आज्ञा मानेंगे तथा अभिमान छोड-कर नमस्कार करेगे। परन्तु राज्य लक्ष्मी से उन्मत्त होकर कामधेनु के समान इच्छित फल देने वाले भगवान की सेवा मत छोडना। यह कहकर देवी अदृश्य हो गई।

देवपाल ने पुन भगवान की हर्ष पूर्वक स्तुति कर राज महल में आकर कुम्हार को बुलाकर सुन्दर आकृति वाला ऐरावत हाथी के समान मिट्टी का हाथी तैयार कराया। उस पर अम्बावाडी लगाकर आरूढ होते ही देव प्रभाव से मिट्टी का हाथी मेघ समान गर्जना करता हुवा शहर के बाहर भगवान के दर्शन करने चला। यह आश्चर्य जनक घटना देखकर सब मन में डरने लगे और सोचने लगे कि वास्तव में इसका कोई देव सहायक है। यह सामान्य आदमी का कार्य नही है, इसे

देव सहायता करता है इसी से यह मन इच्छित कार्य कर सकता है। यह जिस पर प्रसन्न हो उसे ऐश्वर्यवान बना सकता है और रुष्ट हो जाय तो सर्व लक्ष्मी लूट कर हाथ पैरों में हथकड़ी डालकर कारागृह में डाल सकता है। इसलिये अपने अभ्युदय के लिये इसे प्रसन्न रखना चाहिये। यह विचार कर सर्व सामन्तगण और पुरजन देवपाल राजा के पास आकर दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे—हे कृपानाथ ! हे पृथ्वीपति ! हमारे सब अपराध क्षमा करना। हम अज्ञानियों ने आपकी अवज्ञा की है वह हमारी वास्तव में मूर्खता है। हे कृपालु ! विशेष क्या कहें ? आपतो समुद्र समान गम्भीर है इसलिए हम अज्ञानियों पर प्रसन्न होकर हमारे अपराध क्षमा करो। हम सब आपकी आज्ञानुसार कार्य करने को तैयार हैं। इस प्रकार सबको अपने आधीन हुए जानकर देवपाल ने अपने परमोपकारी जिनदत्त सेठ को आदर पूर्वक बुलाकर बहुत सम्मान पूर्वक प्रधान मंत्री की पदवी प्रदान की। अहो ! जगत में वही पुरुष धन्य है जो अपने पर किए उपकार को नहीं भूलता। दूसरे सब सामन्तों को भी अपने २ पद पर कायम रखा। इस प्रकार राज्य का सारा काम मंत्री के सुपुर्द कर निश्चित होकर राजसुख भोगने लगा और हर्ष पूर्वक भगवान की भक्ति मे दिन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर नगर के बाहर उद्यान में, अनेक ग्राम, नगर मे विहार करते हुए बहुत मुनियों सहित केवली भगवान दमसार मुनि पधारे। सूचना मिलते ही राजा

भी मन्त्री, सामन्त और रानी सहित अत्यन्त हर्ष पूर्वक वन्दना करने गया। तीन प्रदक्षिणा देकर, पाँच अभिगम पूर्वक गुरु के सन्मुख उचित आसन पर बैठ गया। सुवर्ण कमल पर विराजमान होकर गुरु महाराज भवभ्रमण रूपी व्याधि से पीडित जीवों को अमृत की धारा के समान कल्याणकारी देशना देने लगे।

"हे भव्य जीवो! जैसे समुद्र जल का आधार है वैसे तीनो लोक के जन्तुओ के कल्याण के लिये श्री जिनेश्वर प्ररूपित धर्म ही आधार रूप हैं। इससे चितामणि रत्न, कामधेनु और कल्पवृक्ष वश में होते हैं और मोक्ष सुख भी सुलभ होता है। इसलिए ऐसे धर्म का आदर करो। वह धर्म दो प्रकार का कहा है। एक श्रमण धर्म और दूसरा श्रावक धर्म। श्रावक धर्म सम्यकत्व मूल बारह व्रत सहित है। श्री जिनेश्वर की उल्लासपूर्वक भक्ति करने से सम्यकत्व निर्मल होता है। जिनपूजा के द्रव्य और भाव ये दो भेद है। श्री जिनेश्वर देव की आज्ञा का पालन करना—अष्ट प्रकारी आदि पूजा करना यह प्रथम द्रव्य पूजा है और उनकी स्तुति स्तवनादि गुणगान करना भाव पूजा है। द्रव्य पूजा से उत्कृष्ट देवलोक के सुख प्राप्त होते हैं और भाव पूजा से अनन्त सुखमय मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसीलिये कहा है कि—

उक्कोस दव्वत्थय, आराहिय जाइ अच्चुमजाव।
भावत्थयण पावइ अन्तमुहुत्तेण निव्वाण ॥१॥
मेरूस्स सरिसवस्सय, जत्तय मित्ता तु अतर होई।
दव्वत्थय भावत्थय, अतरमिह त्तिय णेय ॥२॥

अर्थ—द्रव्य स्तवन की आराधना करने वाला उत्कृष्ट बारहवे अच्युत देवलोक तक जाता है । भाव स्तवन से अंतर्मुहूर्त में निर्वाण सुख को प्राप्त करता है। मेरू और सरसों मे जितना अन्तर है उतना ही अन्तर द्रव्य स्तवन और भाव स्तवन में समझना चाहिये।

जिनेश्वर की पूजा भक्ति तीन प्रकार से बताई गई है वह इस प्रकार है। एक सात्विकी, दूसरी राजसी और तीसरी तामसी। वीतराग प्रभु के गुणों के विषय मे अत्यन्त लीन; दु:सह उपसर्ग होने पर भी निश्चल भावयुक्त रहे तथा जिन चैत्यादि सम्बन्धी कार्य मे आवश्यकतानुसार द्रव्य दे, महा-महोत्सव पूर्वक यथाशक्ति निरंतर नि:स्पृहता से भक्ति करे वह प्रथम सात्विकी भक्ति समझना। इससे दोनों लोक मे उत्तम सुख प्राप्त होते है।

इस लोक मे सुख प्राप्त करने के लिए अथवा लोग को आकृष्ट करने के लिए या आजीविका के लिए जिनेश्वर की भक्ति करना राजसी भक्ति समझना ।

शत्रु का विनाश करने के लिए, आपत्ति दूर करने के लिये और चित्त मे अहंकार अथवा मत्सर धारण करके भगवान की भक्ति करना तामसी समझना। राजसी और तामसी भक्ति तो सब कोई सरलता से कर सकते है परन्तु सात्विकी भक्ति तो कोई महाभाग्यशाली व पुण्यशाली ही करते है, क्योंकि सात्विकी भक्ति सर्वोत्कृष्ट है, राजसी मध्यम है और तामसी जघन्य है। इसीलिए पंडित

लोग तो पिछली दो प्रकार की भक्ति नही करके सर्वोत्तम सात्विकी भक्ति का ही विशेष आदर करते हैं ।

इसके अलावा जिनेश्वर की पाच तरह की पूजा भी वतलाई गई है । १--पुष्प वगैरह से सेवा करना २--जिन द्रव्य की वृद्धि करना ३--यात्रा करना ४--महोत्सव करना और ५- वीतराग की आज्ञा पालन करना । इसके सिवा और दो प्रकार से भक्ति होती है । एक आभोग से दूसरी अनाभोग से । जो जिनेश्वर के गुणो को सम्यक प्रकार से जानकर उनका यथार्थ वणन कर विधि पूवक भगवान की पूजा करना वह आभोग से द्रव्य स्तव भक्ति समझना । इससे अनुक्रम से चारित्र का लाभ होता है और इससे ससार समुद्र में भ्रमण कराने वाले अष्ट कम का नाश होकर अनन्त अव्यावाघ मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

जिनेश्वर के गुणो से और पूजा विधि से अज्ञात परन्तु शुभ परिणामपूर्वक वीतराग की भक्ति करना अनाभोग द्रव्य स्तव भक्ति समझना ।

जिन गुणो से अज्ञात हो परन्तु जिन बिम्ब देखकर जिनके हृदय मे अत्यन्त उल्लास पैदा होता है उससे भव्यजनो के अशुभ कर्मो का उच्छेद होकर भविष्य में भद्रकारो वोधि (समकित) प्राप्त होता है । जो जिनेश्वर के बिम्ब को देखकर द्वेष करते हैं वे प्राणी ससार में अतिशय निविड कर्मबन्ध करते हैं । जिस तरह मृत्यु के समय किसी रोगी को अपथ्याहार की इच्छा होती है यह अशुभ को सूचित करने वाला

८--परा—इस दृष्टिवाले का ज्ञान चन्द्रमा के समान निर्मल शांत प्रकाश के समान होता है। निरतिचार पद में प्रवर्तमान, आत्मवीर्योल्लास से श्रेण्यारूढ, हरेक क्रिया आत्म-गुण को पुष्ट करने वाली होती है उसे ही करता है, और अनुक्रम से अपूर्वकरणादि गुणस्थान पर पहुंच कर अन्त में केवलज्ञान प्राप्त कर अनेक भव्य जीवों का उपकार करता है।

इस प्रकार केवली भगवान की देशना सुनकर देवपाल श्रावक व्रत अंगीकार कर अपने महल में आया। उसके वाद बड़े उत्साह पूर्वक एक अत्यन्त मनोहर देवताओं के भवन से भी अधिक शोभायमान, जिसका ध्वजदंड और कलश वहुत उर्ध्व भाग मे रहकर शोभा दे रहा है ऐसा जिन मदिर उसने तैयार कराया। उसमे सुरधेनु और कल्पवृक्ष से भी अधिक सौख्यदाता ऐसे सुवर्णमय जिन विम्ब की स्थापना की। अति महोत्सव पूर्वक केवली ने उसकी प्रतिष्ठा की। दूसरे भी अनेक जगह कैलाश समान देदीप्यमान चैत्य कराकर व प्रचूर द्रव्य व्यय कर, मन, वचन और काया से विधि पूर्वक प्रथम पद की आराधना निर्मल भाव से करने लगा। रत्न और माणिक्य के वहुमूल्य आभूषण कराकर विविध भक्ति से स्नात्रोत्सव कर अपना जन्म सफल करने लगा। स्वधर्मी वन्धुओ की मान पूर्वक भक्ति करता, अनेक तीर्थों की यात्रा करता, गुणवन्त साधु मुनिराजों को एषणीय भक्तपान का दान करता, जिनद्रव्य की वृद्धि करता तथा निरंतर जिनाज्ञा का पालन करता। राज्य कार्य छोड़ अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रथम स्थानक की

आराधना करते हुए उत्कृष्ट पुण्योपाजन कर तीर्थंकर नाम कम का बध किया।

एक दिन नृपति देवपाल और रानी मनोरमा नगर बाहर क्रीडा करते हुए चले जा रहे थे कि इतने में मनोरमा ने दूर से एक मनुष्य को सिर पर लकडी को भारो लेकर आते हुए देखा। उसे देखते ही रानी मूर्छित होकर जमीन पर गिर पडी। राजा ने तुरन्त समयानुकूल शोतोपचार से सावधान कर पूछा—'रानी'! यह अचानक तुमको क्या हुआ?

रानी—"नाथ! उस लकडहारे को देखकर मुझे जातिस्मरण ज्ञान हुआ जिससे मैं मूर्छित होगई। स्वामिन, क्रूर कर्म को लीला स्वरूप मेरे और उसके पूव भव का हाल सुनो। पूर्व भव मे वह और म स्त्री पुरुप थ। हमारी स्थिति अत्यन्त करुणाजनक और दरिद्र थी, जिससे हम जगल से लकडी लाकर उसे बेचकर अपना निवाह करते थे। एक दिन जगल में लकडी लेने हम दोनो जारहे थे कि इतने म गिरि नदी के तट पर कल्याणकारी जिन विम्व को दखा। वहा जाकर पवित्र जल से स्नान कर हाथ में पुष्प लेकर हषपूवक भाव से प्रभु की भक्ति कर मने पापकम का नाश किया। उसके बाद मैंने अपने पति से कहा—नाथ! अनक भवो के क्लिष्ट कर्मों को नाश करन वाले श्री जिनश्वर की यह प्रतिमा है इनको भावपूवक प्रणाम कर अपना जीवन सफल कर ण्य फल का उपाजन करो, और पापकम मल दूर करो'। इस तरह के मेरे हितकारी वचन सुनकर वे क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होकर तीनलोक के नाथ के बिम्ब की

भर्त्सना करते हुये कहने लगे—अरे अभागिनी ! तू ही इस पाषाण को नमस्कार कर तेरा कल्याण कर । इस तरह वज्र प्रहार समान वाक्य कहकर आगे चले। वास्तव मे जिनेश्वरदेव के धर्म के विषय में पूर्व पुण्य के उदय से ही श्रद्धा होती है । इसके वाद समय पाकर मैं मरकर पूर्व सुकृतोदय से राजा के यहाँ पुत्री रूप मे उत्पन्न हुई और आप जैसे महान् ऐश्वर्यवान् नृपति की पत्नी हुई; और वह विचारा पुनः वैसी ही दरिद्रता में रहकर लकड़ी लाकर उदर निर्वाह करता है। वास्तव मे किये हुए कर्मो का फल भोगे विना कदापि छुटकारा नही होता।"

इस प्रकार रानी के मुंह से सारी वात सुनकर विस्मित हो राजा ने उस लकड़हारे को वुलाकर रानी का पूर्व भव का इसका सम्वन्ध सुनाया और कहा कि हे भाई ! तेने पूर्व भव मे सुपात्र दान भी नही दिया, जिनेश्वर की भक्ति भी भाव-पूर्वक नही की, जिससे इस जन्म मे भी तू दुखी और दरिद्री है। अब यदि सुखी होना चाहता है तो श्री जिनेश्वर की भक्ति कर और उनके वताये धर्म का आराधन कर जिससे इहलोक और परलोक का उत्तम सुख प्राप्त हो । परन्तु अभव्य को कभी धर्म पर श्रद्धा नही होती । राजा ने उसे वहुत समझाया परन्तु उसे राजा के वचन पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ । जिससे राजा ने उसे अयोग्य समझ कर छोड़ दिया और स्वयं रानी सहित राजमहल को लौट गया।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर रानी के देवसेन

नामका पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। युवावस्था प्राप्त होने पर उसका सुन्दर राजकुमारी के साथ व्याह कर दिया। इसके बाद पुत्र को राज्य देकर राजा और राणी ने चन्द्रप्रभु गुरू के पास उल्लासपूर्वक चारित्र अंगीकार किया और निरतिचार संयम, आराधना व दुष्कर तप करता हुआ ग्यारह अंग व नवपूर्व का अध्ययन कर नित्य स्वाध्याय करता हुआ कर्मरज को दूर करने लगा। संयमाराधन करते हुए भी निरन्तर भाव युक्त अरिहंत पद की भक्ति भी करता था। इस प्रकार तीनो लोक में सब अकृत्रिम व कृत्रिम शाश्वत अशाश्वत जिनेश्वरो को भावपूर्वक वंदना कर व उनके गुणगान कर अपने कर्ममल दूर करने लगा। इसके सिवा जहां २ श्री जिनेश्वर के कल्याणक हुए वहा २ की यात्रा करता हुआ प्रथम पद की आराधना कर अंत समय में अनशन कर प्राणतकल्प में देव हुआ। मनोरमा भी निरतिचार संयम पाल कर कठिन तपस्या कर स्त्री वेद का उच्छेदकर उसी कल्प में देवांगना हुई और उसके साथ मित्र रूप में रहने लगी। राजा का जीव वहा से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पद प्राप्त करेगा। रानी का जीव भी वहा से चवकर उन्ही तीर्थङ्कर के गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

द्वितीय सिद्ध पद आराधन विधि

"ॐ नमो सिद्धाणं" इस पद की २० माला गिने।

सिद्ध के ३१ गुण होने से नीचे लिखे ३१ खमासमण देवे। प्रत्येक खमासमण के पूर्व यह दोहा बोले

दोहा—

गुण अनंत निर्मल थया, सहज स्वरूप उजास।
अष्ट कर्म मल दाय करी, भये सिद्ध नमो तास॥

(खमासमण—)

१ मतिज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२ श्रुतज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
३ अवधिज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
४ मनःपर्यवज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
५ केवलज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
६ निद्रादर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
७ निद्रा निद्रादर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
८ प्रचला दर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
९ प्रचला प्रचलादर्शनावर्णिकर्म रहिताय सिद्धाय नमः
१० थोणद्धिदर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
११ चक्षुदर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
१२ अचक्षुदर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः

१३ अवधि दर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नम
१४ केवल दर्शनावर्णि कर्मरहिताय सिद्धाय नम
१५ शातावेदनो कर्म रहिताय सिद्धाय नम.
१६ अशातावेदनी कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नम
१७ दर्शन मोहनी कर्म रहिताय सिद्धाय नम
१८ चारित्र मोहनी कर्म रहिताय सिद्धाय नम
१९ नरकायु कर्म रहिताय सिद्धाय नम
२० तिर्यगायु कर्म रहिताय सिद्धाय नम
२१ मनुष्यायु कर्म रहिताय सिद्धाय नम
२२ देवायु कर्म रहिताय सिद्धाय नम
२३ शुभनाम कर्म रहिताय सिद्धाय नम
२४ अशुभनाम कर्म रहिताय सिद्धाय नम
२५ उच्चगोत्र कम रहिताय सिद्धाय नम
२६ नीचगोत्र कर्म रहिताय सिद्धाय नम
२७ दानान्तराय कर्म रहिताय सिद्धाय नम
२८ लाभान्तराय कम सिद्धाय नम
२९ भोगान्तराय कम रहिताय सिद्धाय नम
३० उपभोगान्तराय कर्म रहिताय सिद्धाय नम
३१ वीर्यान्तराय कर्म रहिताय सिद्धाय नम

उपरोक्त खमासमण देकर ३१ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे ।

स्तुति

अनन्त ज्ञानमयी, अनन्त दर्शनमयी, अनंत चारित्रमयी, अनन्त अव्यावाध सुखमयी, अनन्त अरूपी, चैतन्य विलासमयी, अनन्त अगुरु लघु गुणमयी, अनन्ताक्षय स्थितिमयी, अनन्तवीर्य शक्तिमयी, अनाद्यनन्त नित्यानन्द, अविनाशी, अवैरी, अवेदी, अनुपाधि, अजर, अमर, अव्यय, अकलङ्क, अरोगी, अक्लेशी, अयोगी, अवन्धी, असङ्गी, अकामी, चिदानन्दघन, चिद्‌भोगी, चिद्विलासी, चिद्‌रूपी, अचल, अमल, चरमज्योतिः परमात्मा, परमेश्वर, सहजानन्दी, सहजस्वरूपी, पूर्णानन्द, सकललोकाग्रस्थायी, अनन्त गुणनिधान, ऐसे गुणों करके युक्त सिद्ध भगवान को हमारी प्रति क्षण वन्दना रहे। यही स्वरूप हमारा साध्य है, इसी स्वरूप की सेवा हमारा परम साधन है, इन्ही के नाम स्मरण से हमारा जन्म सफल है।

इस प्रकार स्तुति करने के वाद रात दिन रूपातीत स्वरूप रक्तवर्ण का ध्यान करे और पारणा के दिन चौवीस तीर्थंकरों के १४५२ गणधरों का पूजन करे तथा सिद्धक्षेत्र श्री शत्रुंजय, गिरिनार, आबू, अष्टापद, समेद शिखर, चम्पापुरी, पावापुरी, कोटिशीला की स्थापना करके अष्टप्रकारी प्रभु की पूजा यथाशक्ति भक्तिपूर्वक करे, पञ्चवर्ण धान्य से त्रिलोक नालिका पट्ट रचना करे, तथा घृतका मेरु पर्वत की रचना करे, और सिद्ध कल्याण का उत्सव करके, सिद्धपद उच्चारण करके द्रव्य याचक को दे।

इस पद का ध्यान रक्त वर्ण से करे। इस पद की

आराधना से हस्तिपाल राजा तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

दूसरे पद की आराधन पर हस्तिपाल राजा की कथा

इस भरतक्षेत्र में इन्द्रपुरी के समान ऐश्वर्यवाला साकेतपुर नाम का नगर था। वहाँ हस्तिपाल नाम का राजा था जो इन्द्र के समान तेजस्वी, लक्ष्मीवान और जिसका यश सूर्य की किरणों की तरह दसो दिशाओं में फैल रहा था। वह निष्कटक होकर न्याययुक्त प्रजा का पालन करता हुआ राज्य करता था। उसके चैत्र नाम का बुद्धिमान मत्री था। वह मत्री एक बार राज्य काय के लिये राजा की आज्ञा से चपापुरी नगरी के राजा भीम के पास गया। वहा नगर की शोभा को देखता देखता वीतराग प्रभु श्री वासुपूज्य जिनेश्वर के मदिर में गया। वहाँ भगवान की स्तुति वदना कर हर्षपूर्वक बाहर आया। वहाँ मनोहर कामदेव के समान रूपवान, घर्ममूर्ति घमघोप मुनि को अपनी मण्डली सहित देख, प्रसन्न होकर विनय पूर्वक वदना कर उनके सम्मुख बैठ गया। गुरु ने ज्ञानोपयोग से उसकी योग्यता जानकर ससार का नाश करनवाली अमृत के समान देशना शुरू की—

'हे भव्य जीवो! इस ससार रूपी अटवी में भ्रमण करते २ अमृत के तालाब के समान घम पूव पुण्य से ही प्राप्त होता है। सब जीवा पर दया करना यह सबसे उत्कृष्ट धर्म कहा

है मनुष्य को अपने प्राण के सिवा अन्य कोई अधिक प्यारा नही है। जो एक जीव की रक्षा करता है वह त्रिभुवन की रक्षा करता है और जो एक जीव को हिंसा करता है वह त्रिभुवन को हिंसा करता है ऐसा समझना चाहिये। जीव चौदह प्रकार के हैं—सूक्ष्म एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय। सात पर्याप्त और अपर्याप्त मिलकर जीव के चौदह भेद होते है ऐसा जिनेश्वर भगवान ने कहा है। इन सवकी धर्मात्मा पुरुष रक्षा करते है। अपनी आत्मा और दूसरों की आत्मा मे जरा भी फर्क नही समझते है। आत्मवत् सर्व भूतेषु—इस प्रकार सवको अपनी आत्मा के समान देखते है। दूसरे शास्त्रों में भी कहा है कि—

यत्र जीवः शिवस्तत्व, न भेदः शिवजीवयो।
न हिंस्यात्सर्वभूतानि, शिवभक्तिसमुत्सुक ॥ १ ॥

अर्थ—'जहाँ जीव है वहाँ शिव है। शिव और जीव में भेद नही है। इसलिये शिव की भक्ति करनेवाले को सर्व जीवों की हिंसा नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार जीवों पर दया करने से आत्मा निर्मल होती है और धीरे धीरे वह आत्मा जन्म, जरा आदि क्लेशों से मुक्त होकर अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य को धारण करने वाला, शुद्ध चिदानन्दमय सर्वदा कर्मरहित होकर लोक के अग्र भाग वाले सिद्ध क्षेत्र में जहाँ सव सिद्ध भगवान रहते है वहाँ पहुँचता है। उन सिद्ध जीवो के सुख का वर्णन करोड़ों मुख से

भी नही हो सकता है। सुर, असुर और मनुष्य सम्बन्धी जो जो उत्तम प्रकार के सुख हैं, उन सबको इकट्ठा किया जाय तब भी उस सुख की तुलना नही हो सकती अर्थात् उन सब सुखो से भी मोक्ष का सुख अनतानतगुण अधिक है। जिसन अमृत रस का पान किया हो उसे अन्य रस कैसे अच्छे लग सकते है? अर्थात् नही लगते। जिसने मोक्ष के अद्वितीय सुख को जान लिया है उसे अन्य देव मनुष्य सम्बन्धी पौद्गलिक सुख की इच्छा किस तरह हो सकती है। सभी सिद्धात्मा अमूर्त होने म परस्पर बाधा रहित मोक्ष स्थान म रहते हं। सिद्ध के जीवो की उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुष से थोडी अधिक है। मध्यम अवगाहना तीन हाथ से थोडी कम होती और जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अगुल होती है।

जैसे अमृत के एक बिन्दु मात्र से तीव्र विष की व्याधि नाश होती है, वैसे सिद्ध भगवान् के ध्यान से जीवो के दुष्कर्मो की परपरा नाश होती है और तीनो लोको का पूज्य ऐसी उत्कृष्ट पदवी तत्काल मिलती है।"

इस प्रकार गुरू की देशना सुनकर मत्री बोला— हे प्रभु! सिद्ध की भक्ति से ससार का नाश करनेवाले श्रावक व्रत मुझे दीजिये। गुरू ने योग्य जानकर उसे व्रत दिय। व्रत लेकर गुरू को वदना कर मत्री राज्य का कार्य पूरा कर अपने नगर में आया। राजा को प्रणाम कर योग्य स्थान पर बैठ गया। तब राजा ने पूछा 'ह मत्री! तुमने चपापुरी में जो कोई अचरज देखा हो वह कहो।'

तब मंत्री ने कहा—'हे राजा ! उस नगरी के मंदिर देव भवन समान अतिशय मनोहर हे जिनको देखकर मन को तृप्ति नहीं होती। जगह जगह दाता और भोक्ताओं के घर हे। उस शहर के मध्य में तीनों लोक को आल्हाद पैदा करनेवाला अद्‌भुत शोभायमान श्री वासुपूज्य स्वामी का मंदिर है। उस मंदिर मे सबके नेत्रो को मोहनेवाली, दिव्य आभूपणों से विभूषित वासुपूज्य स्वाजी को मणिमय प्रतिमा है। मैंने मेरे पुण्योदय से उन जिनेश्वर की प्रतिमा के दर्शन कर अपने नेत्र सफल किये। भाव सहित भक्ति पूर्वक नमस्कार कर लौटते समय धर्म घोप मुनि मिले। उनको नमस्कार कर मैं वैठा। गुरू ने उपकार दृष्टि से सिद्ध का स्वरूप वताया। मैंने भी उसो प्रकार अगीकार किया। इस प्रकार मंत्री के मुख से बात सुनकर राजा मन मे विचारने लगा कि— अहो ! वे उपकारी मुनिराज यहां कव पधारेंगे और कव उनके दर्शनकर मैं अपने मन का मनोरथ पूर्ण करूंगा।' इतने में धर्मघोप मुनि साधु मडली सहित उपवन मे आ पहुँचे। राजा को उनके आने की सूचना मिलते ही प्रसन्न होकर मंत्री सहित गुरुदेव की वदना करने गया। वहां जाकर विधि पूर्वक गुरू को वंदना कर यथोचित स्थान पर बैठ गया। इतने मे गुरू महाराज सिद्ध का स्वरूप वताने लगे:—

'हे भव्यजीवो ! धर्म दो प्रकार का है एक श्रमण धर्म और दूसरा श्रावक धर्म। उस धर्म का सम्यक्त्व सहित आचरण करने से सिद्ध पद प्राप्त होता है। गुरू महाराज की

देशना सुनकर राजा बोला—हे करुणा समुद्र ! जो दृष्टि से अगोचर है, जिसकी रूपरेखा व काया अगोचर है, ऐसे सिद्ध भगवान की सेवा भक्ति किस प्रकार की जाय ? वह आप कृपा कर हमको बताइए। गुरू महाराज ने कहा 'हे राजन् ! जो सिद्ध स्थान में रहनेवाले निरजन-निराकार, नि कषायो, जितदेह, शुद्धात्मा, सिद्ध स्वरूप का ध्यान करता है और उनकी मूर्ति की द्रव्य भाव से पूजा करता है वह प्राणी घातिया कर्मों का क्षय कर अनतानत सुख देनेवाली तीन लोक को सम्पदा प्राप्त करता है।' इस प्रकार स्वरूप सुन राजा विचारने लगा—अहो ! वह पुरुष धन्य हैं जो भव भ्रमण को दूर करने वाले जिन धम की आराधना करता है। मैं भी उसी को ग्रहण करू। ऐसा विचार सिद्धपद के आराधना का व्रत ग्रहण कर अपने घर आया। पीछे निरतर बहुत मानपूर्वक स्थिर चित्त से "नमो सिद्धाणं" पद से सिद्ध परमात्मा का ध्यान करता हुआ मत्री सहित सम्मेद शिखर, शत्रुजय, आदि सिद्धो के पवित्र स्थानो की यात्रा कर अपनी आत्मा को निर्मल करने लगा। अनुक्रम से निर्मल ध्यान से सिद्ध पद की आराधन कर मोक्ष सुख के निधान स्वरूप तीर्थंकर नाम कर्म बाधा। इस प्रकार दीर्घकाल तक राज्य ऋद्धि और सिद्ध पद की आराधना कर मत्री सहित गुरूके पास चारित्र ग्रहण किया।

पीछे वह राजा अष्ट प्रवचन माता का सम्यक प्रकार से पालन करता, अप्रमत्तपणे दुष्कर तप और क्रिया कर कर्म क्लेशो का नाश करता हुआ ग्यारह अग का अध्ययन कर

गुरु महाराज की आज्ञा लेकर सम्मेद शिखर की यात्रा के लिये गया। मार्ग मे उसने यह अभिग्रह किया कि 'जब तक सिद्ध परमात्मा की मूर्ति के दर्शन न होंगे तब तक आहार नही लूगा।' ऐसा दृढ़ अभिग्रह देख इन्द्र महाराज ने मुनि महाराज की सभा मे प्रशंसा की। उसके वचन पर विश्वास न कर एक अग्निकुमार देव उस मुनि की परीक्षा के लिये वहाँ आकर अनेक प्रकार के क्लिष्ट उपसर्ग करने लगा। तीव्र भूख और प्यास की ऐसी वेदना पैदा की कि सामान्य मनुष्य तो क्षण भर में प्राण रहित होजावे। ऐसी वेदना दो माह तक सहन करने से मुनि की काया अत्यन्त क्षीण होगई फिर भी उन्हें जरा भी क्रोध नहीं आया। तब देवता ने प्रगट होकर, सारी व्यथा दूर करदी और मुनि के चरणो मे नमस्कार कर कहने लगा।—'हे महाभाग्य! हे करुणा समुद्र! समता सिंधु! मेरे सारे अपराध क्षमा करो। इन्द्र महाराज ने सभा में आपके अभिग्रह की प्रशंसा की उस पर मुझे विश्वास नही होने से मैंने आपके साथ यह कार्य किया है। अतः आप क्षमा करें।' ऐसा कह देव वापिस देवलोक मे चला गया। राजर्षि मुनि ने दो मास तक उपसर्ग सहन कर समेद शिखर पर पहुँच कर सम्पूर्ण सिद्ध प्रतिमाओं को वन्दन कर पीछे पारणा किया। इस प्रकार निरतिचार चारित्र पालकर अन्त समय में अनशन कर मंत्री तथा राजर्षि दोनों अच्युत कल्प मे देव हुए। वहां से चवकर राजा महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थंकर पदवी पाकर मोक्ष जावेंगे, और मंत्री वहाँ से चवकर उन्ही तीर्थंकर के गणधर गणधर होकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगे।

तृतीय प्रवचन पद आराधन विधि

"ॐ नमो पवयणस्स" इस पद की २० माला गिने ।

इस पद के २७ गुण होने से २७ खमासमण देवे । प्रत्येक खमासमण के पूर्व यह दोहा बोले ।

दोहा

भावामय औषधि सम, प्रवचन अमृत वृष्टि ।
त्रिभुवन जीवन सुखकरी, जय जय प्रवचन दृष्टि ॥

१ सर्वत प्राणातिपात विरताय श्री प्रवचनाय नम॰
२ सर्वतो मृषावाद विरताय श्री प्रवचनाय नम
३ सवतो अदत्तादान विरताय श्री प्रवचनाय नम
४ सर्वतो मैथुन विरताय श्री प्रवचनाय नम
५ सर्वत परिग्रह विरताय श्री प्रवचनाय नम॰
६ देशत प्राणातिपात विरताय श्री प्रवचनाय नम॰
७ देशतो मृषावाद विरताय श्री प्रवचनाय नम
८ देशतो अदत्तादान विरताय श्री प्रवचनाय नम
९ देशतो मैथुन विरताय श्री प्रवचनाय नम
१० देशत परिग्रह विरताय श्री प्रवचनाय नम
११ दिशि परिमाणव्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नम
१२ भोगोपभोग परिमाणव्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नम.

१३ अनर्थदण्ड विरताय श्री प्रवचनाय नमः
१४ सामायिकव्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नमः
१५ देशावगासिक व्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नमः
१६ पोसहोपवासव्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नमः
१७ अतिथिसंविभाग व्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नमः
१८ विधिसूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
१९ वर्णिक सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२० भय सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२१ उत्सर्ग सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२२ अपवाद सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२३ उभय सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२४ उद्यम सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२५ सर्वनय समूहात्मकाय श्री प्रवचनाय नमः
२६ सप्तभङ्गी रचनात्मकाय श्री प्रवचनाय नमः
२७ द्वादशाङ्गगणीपिटकाय श्री प्रवचनाय नमः

उपरोक्त खमासमण देकर २७ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

स्तुति

श्री जिनेश्वर परमेश्वर देवने जिसको स्थापन किया, जो साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध सघ तथा श्रीमुख से भाषित स्याद्वाद मुद्राङ्कित जो सिद्धान्त कहा तदनुकूल

श्रद्धा प्रवर्तन करे, जो श्री सघ प्रवचन कहा जाता है वह कसा है, जैसे रत्नो की खान रोहणाचल के समान गुणो की खान श्री प्रवचन है, जसे तारो का स्थान आकाश में है उसके समान गुणो का स्थान श्री प्रवचन है, जैसे कल्पवृक्ष मदा स्वग में रहता है वैसे ही सब गुण सवदा श्री प्रवचन मे रहते ह। कमलो का आकर सर के समान श्री प्रवचन गुणो का आकर है जैसे जल का अविनाशी कोप समुद्र है वैसे गुणो का खजाना श्री प्रवचन है, तेजपुञ्ज जैमे सूय है वैसे गुणपुञ्ज श्री प्रवचन है, सकल बीजोत्पत्ति के अबन्ध्य हेतु पुष्करावर्त के समान सम्यगगुण बीजोत्पत्ति का हेतु श्री प्रवचन सघ भक्ति है, जैसे अमृतपान से सर्व विष नष्ट होता है, प्रवचनामृतपान से परम मिथ्यात्व का नाश होता है, ऐमा श्री प्रवचन अपार ससार रूपी समुद्र से उतार कर शाश्वत् मुक्ति पद को प्राप्त कराता है ऐसा श्री प्रवचनजी को प्रदक्षिणा, हमारी वन्दना रहे और भव भव में श्री प्रवचन में हमारी भक्ति बनी रहे।

इस प्रकार स्तुति करके श्री सिद्धान्त का विधि पूवक कर्पूरादि सुगन्ध वास धूपादि से पूजन करे और यथाशक्ति पुस्तक का उपकरण करावे, प्रभावना करे, साधु साध्वी प्रमुख को औपध, अन्न, वस्त्र, प्रभृति, द्रव्य यथायोग्य देवे और दिन रात प्रवचन के गुण गान करे। इस प्रकार तृतीयपद के आराधन से सर्वेष्ट सिद्धि होती है।

इस पद का ध्यान उज्जवल वण से करना। इस पद की आराधना से ही जिनदत्त सेठ तीर्थंकर पद को प्राप्त हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

तीसरे प्रवचन पद पर जिनदत्त सेठ और हरिप्रभा की कथा

भरतक्षेत्र मे बसतपुर नामका एक बहुत ही रमणीक नगर था। वहां समकित धारी जिनदास नाम का एक व्यापारी रहथा था। उसके शीलवान, पतिव्रता जिनदासी स्त्री तथा रूपवान, विनयी और विवेकी जिनदत्त नामका पुत्र था। उसकी चन्द्रातप विद्याधर के स्वामी के साथ मित्रता थी। इस विद्याधर ने जिनदत्त को बहुरूपिणी विद्या सिखा दी थी।

एक दिन वे दोनों मित्र उद्यान मे गये। वहां मनोहर नाटक कराकर आनन्द से बैठे थे, इतने में एक पुरुष हाथ में चित्र लेकर जिनदत्त को प्रणाम कर, चित्र जिनदत्त को देकर एक तरफ खड़ा हो गया। जिनदत्त चित्र को देख, प्रफुल्लित हो कहने लगा—हे चित्रकार! अप्सरा के रूप को भी मात करने वाली यह युवती कौन है?' चित्रकार—हे भाग्यशाली! चंपापुरी मे परोपकारी व धनाढ्य धनावाह सेठ रहता है। उसके घर मे दो अमूल्य वस्तु है। एक बहुमूल्य मुक्ताफल का एकावली हार और दूसरी रूपवती और गुणवती हरिप्रभा कन्या है। उसके रूप गुण और सौन्दर्य का मै क्या वर्णन करूँ? वह साक्षात् रति और सरस्वती के समान चन्द्रवदनी, मृगलोचनी, हस्ति के समान गतिवाली व अप्सरा के रूप का भी पराभव करनेवाली है। उसी कन्या का यह चित्र है। मैंने देवकृपा से अपनी आजीविका के लिये बनाया है।

चित्रकार के मुख से यह सुनकर जिनदत्त ने एक लाख मूल्य वाली रत्नो से जडी हुई करधनी देकर वह चित्र खरीद लिया। चित्र की सुन्दरता देख दिग्मूढ हो घर आया। परन्तु उसका मन किसी काम में नही लगा। यहा तक कि खाना, पीना, सोना, बैठना, चलना, फिरना सब छोड दिया और रात दिन उसी चित्र पर ध्यान लगाकर बैठा रहता। इस बात का पता उसके पिता जिनदास को लगा, तो उसने आकर कहा—'बेटा! किसी धूर्त के कपट जाल में फसकर एक लाख रुपये पर पानी फेरनेवाला व काम धन्ध को छुडाने वाला चित्र क्यो लिया? द्रव्योपार्जन मे कितना परिश्रम करना पडता है उसका तुझे क्या पता? कठिन परिश्रम से एकत्र किया हुआ धन यदि इस प्रकार व्यय कर देगे तो थोड समय में दरिद्री हो जायेंगे। परन्तु तुझ विना परिश्रम के पिता से मिले हुए धन की क्या परवाह? इस तरह उलाहना देकर सेठ अपने काम पर चला गया।

उपरोक्त चुभनेवाल वचन सुन जिनदत्त चमका और मन में विचारने लगा—'अहो पिता को मुझ से अधिक प्रम धन से है' इस विचार से जिनदत्त की आखा से आसू निकलने लगे। थोडो देर इसी अवस्था में रहा और फिर सोचने लगा। "अरे इसमें पिता का क्या दोष, सारा ससार स्वार्थी है। माता भी यदि पुत्र कमाता है तो प्रीति करती है। स्त्री भी यदि पति नाना प्रकार के आभूषण लाकर देता है तो प्रेम करतो है। मित्र भी यदि स्वार्थ नही निकलता है तो उसे छोड देता

है और राजा भी धनवान की ही इज्जत करता है। वास्तव मे सव जगह स्वार्थ का ही स्नेह है जहां तक स्वार्थ होता है वहां तक ही स्नेह है इसलिये इसमें पिता का क्या दोष है ? यदि पिता को मेरे से धन अधिक प्रिय है तो मुझे आज से पिता के द्रव्य की एक कोड़ी भी काम मे नहीं लेनी चाहिए। "विदेश जाकर धन पैदाकर के ही पिता के घर में प्रवेश करूंगा।" ऐसा निश्चय कर उसी दिन रात्रि को जव सव सो रहे थे व सव जगह शान्ति का साम्राज्य था तव जिनदत्त विना किसी को कहे अकेला नगर के वाहर निकल कर चला गया। चलते चलते चंपापुरी मे धनावाह सार्थवाह के घर पहुँचा। सार्थवाह ने रात को स्वप्न मे कल्पवृक्ष देखा था इसलिये आगन्तुक को देखते ही अत्यन्त हर्ष पूर्वक आदर से जगह दी। कहा है कि—

सज्जन आव्या पाहुणा, आपे चार रत्न।
पाणी, वाणी, बेसणुं, आदरसेंती अन्न॥

खरे खर ! भाग्यशाली पुरुष जहां जहां जाता है वहां वहाँ उसका आदर सत्कार होता है। कहा है कि—

पान पदारथ सुगुण नर, वण तोल्यां बेचाय।
जिम जिम चंपे भुंमडो, त्युं त्युं मूल मोघेरा थाय॥

और भी कहा है कि—

गुणाः सर्वत्र पुज्यंते, किमायेपैः प्रयोजनं।
बिक्रियन्ते न घटामि गवि: क्षीर विर्वजिता॥

सब जगह गुणो की पूजा होती है, आडम्बरो से क्या प्रयोजन ? बिना दूधवाली गायें सिर्फ बाधने के लिये नही बिकती है ।

गुणी जन जहाँ जाता है वहा अपने गुणो से सबके हृदय को आकर्षित कर सबका प्रिय बन जाता है। जिनदत्त ने भी अपने गुणो से सार्थवाह के सारे कुटुम्ब को अर्हंत धर्म का उपदेश कर धर्म पर श्रद्धावान् बनाया । इस तरह कुछ दिन व्यतीत होने पर सार्थवाह ने जिनदत्त के गुणो से मुग्ध हो पूछा—'हे महाभाग्य ! तुमको यहाँ रहते कुछ दिन व्यतीत हो गये है परन्तु हम सबको तुम्हारे गाव, नाम और कुल का पता नही है तथा आप किस कारण से देशाटन कर रहे हो ? यदि आपको कहने में कोई आपत्ति नही हो तो हमें बता कर कृतार्थ करो ।

जिनदत्त—श्रेष्ठिवय मुझे कहने में कोई आपत्ति नही है । ऐसा कह उन्होने अपना सारा वृतान्त बताया । सार्थवाह ने उसका वृतान्त सुन हृदय में प्रसन्न हो विचारने लगा—"वास्तव मे यह उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ है और गुणवान है । इसलिये मेरी पुत्री हरिप्रभा के लिये यह योग्य वर है" ऐसा विचार कर बडे उत्साहपूर्वक जिनदत्त के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर कन्यादान में अपार धन दिया । वास्तव में पुण्यशाली पुरुष जहाँ जाता है वहा वह सुखी ही होता है । कहा है कि—

सर्वत्र वायसा कृष्णा सर्वत्र हरिता शुका ।
सर्वत्र दुखीना दु ख, सर्वत्र सुखीना सुख ॥१॥

अर्थ—जिस तरह कौए सब जगह काले और तोते सब जगह हरे होते हैं उसी तरह सुखियों को सब जगह सुख और दुखियों को सब जगह दुःख होता है।

इस तरह जिनदत्त पूर्व पुण्योदय से सुख पूर्वक श्वसुर के यहाँ कुछ समय रहकर सबकी आज्ञा लेकर अपने नगर की ओर चलने को तैयार हुआ; तब सेठ ने दहेज में अपना अमूल्य एकावली हार तथा अपार धन दिया। साथ मे नौकर रथ, पालकी आदि भी देकर हर्षपूर्वक विदा किया।

अनेक नौकरों के साथ चलते चलते मार्ग मे एक सरोवर के पास मुकाम कर सब विश्राम करने लगे। वहाँ से थोड़ी दूर वृक्षों की कुञ्ज में विद्याधर मुनि को कायोत्सर्ग में स्थिर देख दोनों स्त्री पुरुष चारण मुनि के पास आकर विनय पूर्वक वदना कर उनके सामने वैठ गये। इतने मे मुनि ने कायोत्सर्ग पूरा कर धर्म लाभ कहा और उनको योग्य समझ धर्म देशना देने लगे।

'अहो भव्य जनो, इस अनादि और दुख से भरपूर संसार समुद्र में डूबते प्राणी को धर्म सिवाय किसी का सहारा नही है। धर्म से सब प्रकार का सुख, वैभव और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उत्तम कुल मे जन्म होता है और मोक्ष भी प्राप्त होता है। धर्म कई प्रकार से होता है—जैसे १--सब जीवो पर दया करने से, २--ज्ञान व क्रिया से, ३--ज्ञान, दर्शन और चारित्र से, ४--दान, शील, तप और भावना से, ५--पंच महाव्रत से, ६--षड् आवश्यक से, ७--सप्तनय से, ८--अष्ट

प्रवचन से, ६--नव तत्व से और १०--क्षमादि दश विधि यति धर्म से, इस तरह धम के भिन्न भिन्न स्वरूप हैं। उनको आराधना करने से प्राणी सुर नर सम्बन्धी अनेक प्रकार के सुखों को प्राप्त कर अन्त में कम मल रहित हो निरजन निराकार हो परमानन्द को प्राप्त करता है।

यह देशना सुन विनय पूर्वक प्रणाम कर जिनदत्त बोला--हे भगवन्! ऐसा उत्तम प्रकार का धम किसने बताया वह कृपा कर कहो? मुनि--हे महाभाग्य! यह धम प्राणी मात्र का उपकार करने वाले श्री जिनेश्वर भगवान ने बतलाया है। जिनदत्त--हे भगवन्! ऐसे उत्कृष्ट पद का लाभ किस पुण्य के उदय से प्राप्त किया जा सकता है? मुनि--सौभाग्यशाली! त्रैलोक्यवद्य तीर्थंकर पद की प्राप्ति के लिये अरिहंतादिक बीस स्थानक को निज शक्तिनुसार आराधना करने और उसमें भी तीसरे पद--अर्थात् श्री सघ की भक्ति भावपूर्वक करने से उत्कृष्ट पद प्राप्त होता है। इसलिये कहा है कि--

गुणानामिह सर्वेषा, रत्नानामिव रोहण ।
श्रीमान् श्रमणसघो, आधार परमो भुवि ॥

अर्थ--जैसे इस पृथ्वी पर सब रत्नो का आधार स्थान रूप रोहणाचल है वैसे सब गुणो का आधार रूप श्री श्रमण सघ है।

इसे तीर्थंकर भगवान भी धर्मोपदेश समय 'नमो तित्थस' कहकर नमस्कार करते है। श्री सघ की भक्ति परम पद को देनेवाली है। श्री सघ की भक्ति करनेवाले विशाख नाम के

जीवित नहीं रह सकूँगा। अतः हे कृपासिन्धु ! योग्यायोग्य का विचार किये विना मेरी प्रार्थना को अस्वीकार न कर एकावली हार मुझे देगें--ऐसी आशा है।'

इस प्रकार के करुणामय वचन सुनकर जिनदत्त ने कहा--'हे स्वामी ! यह सब द्रव्य स्वधर्मियों के लिये ही है, मैं तो सिर्फ उसका खर्च करने वाला हूँ। ऐसा कह तुरन्त अत्यन्त मूल्यवान एकावली हार निकाल कर उसके सुपुर्द किया। उसकी ऐसी उदारता देख देव प्रसन्न हो अपने असली रूप मे प्रगट हो उसके सिर पर फूलों की वृष्टि कर उसकी स्तुति करने लगा--'हे सेठ आपको धन्य है, आपने श्रावक धर्म का यथार्थ पालन किया है तथा प्रवचन की और श्री सघ को भक्ति कर जिन शासन की प्रभावना की और अपने कुल को उज्ज्वल किया है इस प्रकार स्तुति कर चिन्तामणि रत्न देकर देव अपने स्थान को लौट गया। चिन्तामणि रत्न के प्रभाव से जिनदत्त श्री संघ के इच्छित कार्य पूरे करने लगा। फिर चार ज्ञान को जानने वाले रत्नप्रभु गुरू के पास अपनी भव स्थिति पूछी। तव गुरू ने कहा, 'हे देवानुप्रिय ! तू यहाँ से मृत्यु पाकर पहले देवलोक मे देवता होगा, वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थंकर पद प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करेगा।' इस प्रकार गुरू के वचन सुनकर अत्यन्त हर्ष पूर्वक सात क्षेत्रो मे खूब द्रव्य खर्च करता हुआ शुभ भावना पूर्वक अपनी स्त्री और दूसरे वहुत श्रावकों सहित गुरू महाराज के पास से चारित्र लिया। मुनि अवस्था में भी उल्लास पूर्वक प्रवचन

की भक्ति करता, मुनियों को गोचरी लाकर देता और यथाशक्ति वैयावच्च करता हुआ निरतिचार चारित्रपालन कर काल धर्म पा प्रथम ग्रैवेयक देवलोक में ऋद्धि वाला देव हुआ, वहा से आयु पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र में आगामी चौवीसी में तीर्थंकर हो मोक्ष प्राप्त करेगा। हरिप्रभा भी उन्ही तीर्थंकर की गणधर हो मोक्ष प्राप्त करेगी।

चतुर्थ आचार्यपद आराधन विधि

"ॐ नमो आयरियाणं" इस पद की २० माला गिने।

आचार्य के ३६ गुण होने से ३६ खमासमण देवे। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे।

दोहा

छत्तीस छत्तीसे गुण, युगप्रधान मुणींद।
जिनमत पर मत जाणता, नमो नमो ते सूरीन्द॥

१ प्रतिरूपगुणधराय श्री आचार्याय नमः
२ तेजस्वीगुणधराय श्री आचार्याय नमः
३ युगप्रधानागमाय श्री आचार्याय नमः
४ मधुरवाक्यगुणधराय श्री आचार्याय नमः
५ गम्भीरगुणधराय श्री आचार्याय नमः
६ सुबुद्धिगुणधराय श्री आचार्याय नमः
७ उपदेशतत्पराय श्री आचार्याय नमः
८ अपरिश्राविगुणधराय श्री आचार्याय नमः
९ चन्द्रवत्सौम्यस्वगुणधराय श्री आचार्याय नमः
१० विविधाभिग्रहमतिधराय श्री आचार्याय नमः
११ अविकथक गुणधराय श्री आचार्याय नमः
१२ अचपल गुणधराय श्री आचार्याय नमः
१३ संयमशीलगुणधराय श्री आचार्याय नमः

१४ प्रशान्त हृदयाय श्री आचार्याय नम
१५ क्षमागुणधराय श्री आचार्याय नम
१६ मार्दवगुणधराय श्री आचार्याय नम
१७ आर्जवगुणधराय श्री आचार्याय नम
१८ निर्लोभतागुणधराय श्री आचार्याय नम
१६ तपोगुणयुक्ताय श्री आचार्याय नम
२० सयमगुण युक्ताय श्री आचार्याय नम
२१ सत्यधर्म युक्ताय आचार्याय नम
२२ शौचगुण युक्ताय श्री आचार्याय नम
२३ अकिञ्चन गुणयुक्ताय श्री आचार्याय नम·
२४ ब्रह्मचर्य गुणयुक्ताय श्री आचार्याय नम
२५ अनित्य भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
२६ अशरण भावना भाविताय श्री आचार्याय नम
२७ ससार भावना भाविताय श्री आचार्याय नम
२८ एकत्व भावना भाविताय श्री आचार्याय नम
२६ अन्यत्व भावना भाविताय श्री आचार्याय नम
३० अशुचि भावना भाविताय श्री आचार्यायनम
३१ आश्रव भावना भाविताय श्री आचार्याय नम
३२ सवर भावना भाविताय श्री आचार्याय नम·
३३ निर्जरा भावना भाविताय श्री आचार्याय नम
३४ लोकस्वभाव भावना भाविताय श्री आचार्याय नम

३५ बोधिदुर्लभ भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
३६ धर्मसाधक अरिहंत दुर्लभ भावना भाविताय
श्री आचार्याय नमः

उपरोक्त खमासमण देकर ३६ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना ।

स्तुति

श्री आचार्य, परमेष्ठी, सकल मुनि श्रेष्ठ, गुणगणी ज्येष्ठ, शाश्वत, धीर, प्रवचन, प्रकाशक, प्रवचनाधार, साधनैकचक्षु-भूता आलम्बन भूत, मेढी भूत, सारण, वारण, चोयण, पडिचोयणा कुशल, तीर्थकरोपम, बहुश्रुत, क्रियाधार, धर्माधार, स्वपर समयज्ञ, परहृदयाकृतज्ञ, द्रव्य-क्षेत्र-भाव-कालज्ञ, [1]कुत्तियावण समान सूरिमन्त्रधारी, गणधर, गणी, गच्छस्तम्भपद-धारी, निर्दम्भ, श्रेष्ठ सुगुरु गणि, पिटकधारी, शासनोन्नतिकारी, शासनोद्योतकारी, अर्थधर, सूत्रधर, सद्दानुयोगधर, शुद्धानियोधर, ज्ञानभोगी, अनुभव योगी, अनुद्वार प्रवचनोद्धार, आज्ञाऐश्वर्यधर, भट्टारक, भगवान, महामुनि, मुनिसेव्य, मुनिनायक, गच्छभार धुरन्धर, मार्गदर्शी, निश्यानुभव स्पर्शी, अक्रोधी, जगप्रतिबोधी, अमानी, नित्य शुद्धध्यानी, अमायिक, रत्नत्रय साधक सहायी, अलोभी, अक्षोभि, शुद्धभाषी, गुणगणालङ्कृत ॥

ऐसे आचार्य भगवान को हमारी त्रिकाल वन्दना है, हमारे सम्यगाराधन से सहाय शरण त्राण मति गति श्री आचार्य पूज्य है ।

१—जिस दुकान में सर्व वस्तु मिले उसके समान ।

इस पद के आराधन में दिन रात पौषध चौविहार उपवास करना चाहिये। पीछे यथाशक्ति पारणा, अतिथि-संविभाग करे तथा मुनि को अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, औषध, पुस्तक, उपकरण, प्रभृति मे प्रतिलाभ करावे। आचार्य सेवा से ही सुलभ बोध होता है। इस तरह से चतुर्थ पद का आराधन करने से अभिमत सिद्धि होती है।

इस पद का ध्यान पीतवर्ण मे करना। इस पद की आराधना से पुरुषोत्तम राजा तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

चौथे आचार्यपद की भक्ति पर पुरुषोत्तम राजा की कथा

इस भरतक्षेत्र में पद्मावती नाम की नगरी थी। वहा इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् पुरुषोत्तम राजा निष्कटक हो प्रजा का पालन करते हुए सुख पूर्वक राज्य करते थे। उसके बुद्धिमान तत्वातत्व का जाननेवाला, समयक्त्व श्राद्ध गुणो से विभूषित, अर्हंत धर्म को माननेवाला सुमति नाम का मत्री था। एक दिन राजा सर्व सामन्त, सेठ और मत्री सहित सभा में बैठा हुए थे कि इतने में एक कपटी, रौद्र नाम का कपाली योगी राजा को आशीर्वाद देकर सभा में आकर बैठ गया। राजा ने आदर पूवक कुशल क्षेम पूछ, आने का कारण पूछा। योगी बोला—हे नरेन्द्र तेरे प्रताप से तेरी सम्पूण प्रजा सुख से रहती है तो फिर मुझ योगी की कुशलता का क्या पूछना? अर्थात्

मैं आनन्द पूर्वक हूँ। परन्तु आज छः माह से एक विद्या सिद्ध कर रहा हूँ किन्तु वह उत्तर साधक बिना सिद्ध नही होती। इसलिये हे परोपकारी पुरुषोत्तम नरेन्द्र मेरे पर अनुग्रह कर मेरा उत्तर साधक बन विद्या सिद्ध करने में सहायता कर मेरे श्रम को सफल कर, यही मेरी प्रार्थना है।'

योगी की बात सुन राजा ने कहा—'योगीन्द्र!' मैं खुशी से आपका उत्तर साधक बनूंगा, इसमे जरा भी शका मत करना। आप अन्य होम की सामग्री तैयार करो, मैं आपके साथ आता हूँ।' राजा की यह बात सुनकर सम्यकत्व को जाननेवाला मंत्री कहने लगा—हे नृपति! वीतराग धर्म को जाननेवाले को मिथ्यात्वी का साथ नहीं देना चाहिये क्योंकि शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, पाखण्डी की प्रशसा और उनका साथ ये समकित के पांच अतिचार है। इससे समकित मलीन होता है और समय पर भ्रष्ट होने की सभावना है। इसलिये जिनेश्वर ने इन पॉच अतिचार का त्याग करने को कहा है।'

राजा—मंत्रीश्वर! आपका कहना सत्य है, परन्तु इस क्षण भगुर देह से यदि किसी का उपकार नही हुआ तो यह जीवन किस काम का? क्योंकि अन्त मे तो देह भस्मीभूत होने वाला है। मेरा कुछ भी हो, उसको मुझे कोई चिता नहीं। यदि मेरे कारण इसका कार्य सिद्ध हो जायगा तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

इस प्रकार मंत्री के मना करने पर भी योगी के साथ

तलवार लेकर राजा सूर्यास्त होने पर भयकर वन में योगी के स्थान पर पहुँचा। तब योगी ने कहा हे राजा एक मनुष्य क शव को ला ताकि मै जाप शुरू करूँ। तुरन्त राजा श्मशान भूमि की तरफ रवाना हुआ। मार्ग में चारो दिशाओ में देखता हुआ चला जाता है। इतने में एक वृक्ष की शाखा में एक योगी का शव लटकता हुआ देखा। उसे देख राजा तलवार से रस्सी काटने लगा परन्तु रस्सी कटी नही और शव भी नीचे नहीं गिरा। तीन बार तलवार से काटने पर भी शव नही गिरा। इसलिये राजा ने वृक्ष के ऊपर चढकर रस्सी को खोलकर शव को नीचे उतारा। इतने म राजा की कुलदेवी प्रगट हुई और कहने लगी हे परोपकारी राजेन्द्र! मेरी बात सुन। जिस योगी का तू उत्तर साधक बना है वह कपटी योगी तेरे को ही मारकर सुवर्ण पुरुष बनाना चाहता है। अत तू बराबर सावधान रहना और मन में ॐकार शब्द का जाप करते रहना। इस जाप के प्रभाव मे जब तू योगी के कपाल में धूम्र का प्रकाश देखे तब मेरा स्मरण करना तब मैं प्रगट हो जाऊँगी। एसा कह देवी अदृश्य होगई और राजा शव लेकर योगी के पास गया। योगी के कहने पर शव को स्नान करा उसकी पूजा कर बाय हाथ में तलवार लेकर अग्नि कुण्ड के पास राजा बैठ गया। कपटी योगी मौन लिए हुए एक सौ आठ बार विद्या मन्त्र का जाप करता हुआ पापमय वस्तु का होम करने लगा। उस समय राजा शव के चरणो का काटने लगा और मन में ॐकार मन्त्र का जाप तत्परता से करने

लगा। इतने मे योगी के कपाल में धूम्र का प्रकाश दिखने लगा और राजा ने कुलदेवी को स्मरण किया। कुलदेवी के प्रभाव से और राजा के पुण्योदय से शव उछलकर कुण्ड में गिरा। ऐसा देखकर योगी सोचने लगा कि क्रिया करने में कोई कमी रह गई मालूम होती है, इसलिये फिर जाप करूँ। ऐसा विचार कर फिर जप करने लगा तब भी शव ही पुनः गिरा। इससे क्रोधित हो राजा को मारने के लिये विद्या देवी का ध्यान करने लगा। इतने मे राजा की कुलदेवी ने उसी योगी को उठाकर अग्निकुण्ड मे फेक दिया और वह तुरन्त सुवर्ण पुरुष बन गया। वास्तव मे जो दूसरो का बुरा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वह अपना ही नुक्सान करता है। कहा है कि—

द्रुह्यन्ति ये महात्म्येभ्यो, द्रह्यन्त्यात्मन एव ते।
सूर्येन्दुद्रोहकृद्राहुः, शोर्षशेषोऽभवन्नकिं ॥

अर्थः—जो महात्मा का बुरा चाहता है वह स्वयं अपना ही बुरा करता है। सूर्य चन्द्र से द्वेष करने से क्या सिर्फ राहु का मस्तक ही नही रहा? अर्थात् राहु ने सूर्य चन्द्र का बुरा चाहने से धड़ चला गया और सिर्फ मस्तक ही रहा।

यह आश्चर्यजनक घटना देख राजा हृदय में हर्ष और विषाद पूर्वक सोचने लगा कि विद्या का कैसा प्रभाव है? फिर उस सुवर्ण पुरुष को उठा कर गुप्त स्थान में रख दिया और अपने महल मे आकर सो गया। प्रातःकाल रात्रि की सारी घटना मंत्री को कही और सुवर्ण पुरुष को महल में मंगवाया।

वाद मे अनेक दुखी मनुष्यो के दारिद्र को दूर करके उनको धनवान बनाया। फिर एक सुन्दर जिन चैत्य बना उसमें सुवर्ण को प्रतिमा स्थापन कर खूब धन व्यय विया।

एक दिन राजा चतुदशी का उपवास कर रात्रि को सुख पूर्वक सो रहा था उस समय उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न मे उसने किसी एक नगरी में रहनेवाली रत्नादेवी नाम की तापसी के पास अत्यत रूपवान, लावण्यमयी राजकन्या को शास्त्राभ्यास करते देखा। ऐसी अनुपम सौन्दर्यमयी सुन्दरी को देखकर राजा का स्वप्न भंग हो गया और वह जग गया। प्रात काल मन्त्री को बुलाकर अपनी जिज्ञासा वतलाई। यह सुनकर मत्री ने कहा हे राजा स्वप्न में देखी हुई वस्तु का क्या विश्वास ? क्योकि वात, पित्त, कफ और चिंता से तथा सुनी हुई वात से आया स्वप्न व्यथ होता है। इस पर एक मूर्ख तापस की कथा कहता हू उसे आप सुनिये —

वैभवशाली धनपुर नाम का एक सुन्दर गाव था। वहा बचपन से तपस्या करनेवाला एक तापस रहता था। उसने एक दिन स्वप्न में अपने मठ को केशरिया लड्डुओ से भरा हुआ देखा। सवेरे प्रसनता से जागृत होकर अपने शिष्यो से कहने लगा कि आज इस गाव के सब लोगो को बुलाकर केशरिया लड्डुओ का भोजन कराओ। गुरू की आज्ञा से शिष्यो ने गाँव के सब लोगो को मठ के समीप इकट्ठा किया। पीछे मठ में जाकर शिष्यो ने देखा वहा कोई भोजन की सामग्री नही तो गुरु के पास आकर कहने लगे कि महाराज

सब लोग आ गये है परन्तु मठ में भोजन की कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिये अब वे लोग रूकें या जावें ? तापस ने कहा अरे मूर्खो मैंने रात्रि को स्वप्न मे लड्डू से भरा हुवा अपना मठ देखा था इसलिये आये हुए सब लोगों को लड्डू का भोजन करा उनकी भक्ति करो। जब लोगों ने यह वात सुनी तो वे तापस की मूर्खता पर हंसते हुए भूखे ही घर गये। इसलिये हे राजन ! स्वप्न की वात कदापि सच्ची नही होती इसलिये यह विचार मन से दूर कर दीजिये। परन्तु कहा है कि स्त्री, वाल, नृप और मूर्ख ये चारों अपनी हठ को नही छोड़ते। मंत्री ने राजा को वहुत समझाया परन्तु किसी तरह भी राजा ने अपनी हठ नही छोड़ी। तब बुद्धिमान मत्री ने विचार कर एक अनुपम दानशाला वनाई, उसमे राजा ने जैसा स्वप्न में देखा उसके अनुसार दो तपस्वियो के पास एक सुन्दर राजकन्या अभ्यास कर रही है ऐसा चित्र बनवाया और वह ऐसे स्थान पर रखा कि आनेवाले सब लोगों की दृष्टि उस पर पडे। इसके अलावा दानशाला मे जो कोई परदेशी आता उसे भोजन करा कर मत्री उससे देश परदेश में देखी हुई नई २ बाते सुनता। इस प्रकार कई दिन व्यतीत होने पर दो परदेशी पंडित उस दानशाला मे आये। मंत्री ने उनको भोजन कराया। भोजन करते २ उन पंडितों की आंखों से अश्रुप्रवाह होने लगा। यह देखकर मंत्री ने शांत और मधुर वचन से कहा हे प्रियजनों ! किस कारण आपकी आंखों से आंसू निकल रहे हैं ? क्या भोजन

में आपको कोई इच्छित वस्तु नही मिली या किसी ने अपमान किया है ? जो बात हो वह मुझे सच सच कहो। परदेशी ने कहा हे मत्रीवर ! आपके भोजन में कोई कमी नही है और न किसी ने हमारा अपमान किया है परन्तु इस चित्र से हमको हमारी नगरी और कुटुम्ब का स्मरण हो आया है। इसीलिये हमारे नेत्रो से आसू निकले हैं। हे मत्री ! बहुत वर्षो तक विदेशो में घूमने पर अपनी जन्मभूमि अथवा परिचित पदार्थ को देख कर किसके हृदय को चोट नही पहुँचती ? हमारे अश्रुप्रवाह का कारण सिर्फ यह चित्र ही है।

पडित से वृतान्त सुनकर मत्री ने पूछा कि यह तुम्हारी नगरी कहा है और वहा कौन राज्य करता है ?

पडित—हे मत्रीवर ! यहा से उत्तर दिशा में देवनगरी के समान प्रियकरा नगर है। वही हमारी जन्मभूमि है। वहा महीपाल राजा सुख पूर्वक राज्य करता है। उसे अत्यत सुन्दर लावण्युक्त, गुणवान पद्मश्री नाम की पुत्री है। वह राजकुमारी दो तपस्विनियो के पास विद्याभ्यास कर सब कलाओ मे कुशल हो गई है। पडितो से वृतान्त सुनकर मत्री ने हर्षित होकर राजा को सम्पूर्ण वृतान्त सुनाया। राजा तुरन्त राजकाय मत्री के सुपुर्द कर अकेला ही उस नगरी को रवाना हुआ। कुछ दिनो बाद राजा प्रियकरा नगरी के उद्यान में पहुँचा। वहा उसने उद्यान में एक महल देखा। उसमें दो तपस्विनियो के पास एक अपसरा के समान रूपवाली राजकन्या को देख के अत्यत हर्षित हो प्रियमूर्ति के दर्शन कर अपने

को धन्य मानने लगा। इसके बाद राजा ने घोड़े को एक वृक्ष के नीचे बांध तपस्विनियों के पास जाकर विनय पूर्वक प्रणाम कर बैठ गया। इतने मे तापसी बोली हे भाग्यशाली ! तुम कौन हो ? कहां रहते हो ? और यहां कैसे आना हुआ है? यदि आपत्ति नहीं हो तो मुझे बतलाओ।

राजा—देवी मैं पद्मावती नगरी मे रहता हूँ। तीर्थयात्रा करने निकला हूँ। यहां आकर आपकी कीर्ति सुनकर आपके दर्शन करने आया हूँ।

राजा के मधुर और विनय युक्त वचन सुनकर तपस्विनी बहुत प्रसन्न हुई। फिर राजा को भोजन करा उद्यान मे मंद २ शीतल पवनयुक्त वृक्षों के कुञ्ज मे आराम करने को कहा। राजा को वहां जाकर सोते ही नींद आगई। इतने में कोई विद्याधर उधर होकर निकला और उसकी दृष्टि सोते हुए राजा पर पड़ी। उसे देखकर वह विचारने लगा कि इस कामदेव समान पुरुप को देखकर कहीं मेरी स्त्री आसक्त न हो जाय। ऐसा विचार कर राजा के दूसरे हाथ मे कोई जड़ी बांध दी जिससे वह मनोहर स्त्री रूप मे बदल गया। इसके बाद थोड़ी देर मे विद्याधर की स्त्री वहां आई उसने इस सुन्दरी को देखकर सोचा कि कहीं मेरा पति इसे देखकर इस पर मोहित न होजाय। ऐसा सोच उसने राजा के दूसरे हाथ पर कोई जड़ी बांध दी जिससे वह स्त्री फिर युवान कामदेव समान रूपवाला पुरुष बन गया। इसके

बाद राजा ने जागृत हो अपने हाथ में बधी हुई एक जडी खोली और वह पीछा विद्याधर को बधी हुई जडी के प्रभाव से स्त्री रूप में हो गया। ऐसा आश्चय देखकर दूसरी जडी दूसरे हाथ से खोली तो फिर वह असली रूप में हो गया। जडियो का यह अपूर्व प्रभाव देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उन जडियो को गुप्त रख राजा तापसणी के पास आया। तब उसने पूछा हे वत्स तू देखने में राजा के समान मालूम होता है इसलिये बिना किसी शका व भय के जो सत्य बात हो वह बतला दे।

राजा—देवी! आपका आग्रह है तो मै सत्य बात बतलाता हूँ। मै पद्मावती नगरी का पुरुषोत्तम राजा हू। एक दिन स्वप्न में आपकी शिष्या राजकुमारी को देखकर बडे प्रयत्न से पता लगाकर आपके पास आया हू। राजा की बात सुनकर तापसी ने कहा भाग्यशाली भूपाल तुम जिस आशा से आये हो वह पूरी होना कठिन है क्योंकि यह राजकन्या पुरुष द्वेषिणी है और अपना कदाग्रह छोडती नही।

राजा—हे माता! मै स्त्री रूप में होकर उसका कदाग्रह दूर कर अपने पर आसक्त कर लूगा परन्तु इसमें आपकी खास जरूरत पडेगी। तापसो ने पूछा आप किस तरह स्त्री रूप म हो जायगे? राजा ने कहा देवी! मेरे पास एक अनुपम जडी है उसके प्रभाव से नवयौवना स्त्री हो सकता हू। ऐसा कह वह जडी तापसी को बताई, जिससे वह आश्चय-चकित हो गई। पीछे राजा ने वह जडी अपनी भुजा पर

बांधी और तत्काल वह नययौवना स्वरूपवान स्त्री हो गई। दूसरे दिन सवेरे राजकुमारी तापसी के पास अभ्यास करने आई, उस समय लावण्यमय सुंदरी को देखकर वह तापसी से पूछने लगी हे देवी यह वैठी हुई सुंदरी कौन है वताओ। तापसी ने कहा वेटा यह मेरे भाई की सुलोचना नाम की पुत्री है और यह पद्मावती नगरी मे रहती है। मेरे पर इसका अत्यधिक स्नेह होने से मुझ से मिलने आई है। एक-दो दिन रहकर वापस अपने घर चली जायगी।

राजकुमारी—माता ! इसे देखकर मेरे हृदय मे स्नेह उमड़ता है इसलिये यह ज्यादा दिन मेरे पास रहे ऐसा उपाय करो।

तापसी—वेटा इसे इसके घर पर भी काम है इसलिये अधिक नहीं रुक सकेगी।

राजकुमारी—माता जैसे भी वने इसे रोको। थोड़े दिन रखकर फिर जाने दूंगी। कृपा कर मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजिये।

तापसी—पुत्री ! यदि तेरा इतना आग्रह है तो रोकूंगी। बेटी सुलोचना ! (राजा) राजकुमारी का तेरे पर वहुत स्नेह है इसलिये तू थोड़े दिन इनके पास रहकर पीछे घर जाना।

सुलोचना—(राजा) जैसी आपकी आज्ञा। इसके वाद स्त्री रूप राजा और राजकुमारी महल में गये। वहां नाना प्रकार की बात चीत करते कुछ दिन व्यतीत हुए। दोनों के

दिल दूध और मिश्री की तरह एक हो गये । इसीलिये कहा है कि—

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ता पुरा तेऽखिला,
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥
गतुं पावकमुन्मनस्तद भवद् द्रष्टा च मित्रापद,
युक्त तोयजलेन शाम्यति पुनर्मैत्री सतामीद्रशो ॥१॥

अर्थ – पहले दूध ने अपने अदर के उज्जवलनादि सब गुण अपने साथ मिले हुए पानी को दिए, पीछे दूध को जलता देख पानी ने अपने अग को जलाया। इस तरह मित्र की आपत्ति देखकर दूध अग्नि के पास जाने को तैयार हुआ। (अर्थात उबलने लगा) फिर पानी से ही वह शात हुवा। इसीलिये सज्जन पुरुषो की मित्रता दोनो तरह की होती है ।

एक दिन रात्रि को बातचीत करते समय राजा ने राजकुमारी को पूछा कि तू पुरुषद्वेषिणी होकर अपने यौवन को क्यो निष्फल करती है ?

राजकुमारी—हे सखी ! मुझे जातिस्मरण ज्ञान होने से पुरुष पर द्वेष करनेवाली हुई हूँ।

राजा—जातिस्मरण कैसे हुआ ? तब राजकन्या लज्जित होती हुई कहने लगी। किसी को मैथुन करते देखकर जातिस्मरण हुआ। यह सुनकर राजा ने कहा—सखी यह बात मुझे सविस्तार बतला। इसलिये कुमारी कहने लगी एक जगल में हस्ती का जोडा बडे स्नेहपूर्वक रहता था। एक बार

उस जंगल में दुर्भाग्य से महा भयंकर दावाग्नि लगी, जिससे सब पशु इधर उधर भागते हुए जहां हस्ती का जोड़ा था वहाँ जाकर इक्ट्ठे होने लगे । उन जीवों पर दया आने से वह हाथी का जोड़ा वहां से दूसरी जगह चला गया। वहां भी दावग्नि पहुंच गई। इसलिये हाथी हथिनी को छोड़ कर कही और चला गया और हथिनो पुरुष जाति को धिक्कारतो हुई अनुकंपा के भाव से जल कर मैं यहां राजकन्या हुई हूं। हे सखी ! इस कारण मै पुरुप के स्वार्थी स्नेह को विचार व्याह नही करना चाहती।

इस प्रकार राजकुमारी के पूर्व भव को सुन राजा को भो जाति स्मरण हुआ। पीछे थोड़ी देर दूसरी बातचीत कर सुलोचना रूप राजा ने तापसी के पास आकर सारा वृतान्त कहा। पीछे राजा के कहने से तापसी ने राजकन्या और राजा के पूर्वभव का चित्र तैयार किया जिसमे एक जंगल मे भयंकर दावानल लगा हुवा है, बहुत से जंगलो जीव इधर उधर भागते हुए अग्नि में जल कर मर रहे है। इनमें एक हाथी का जोड़ा था जिसमें हथिनी अग्नि की ज्वाला से तड़फ रही है और हाथी नजदीक के सरोवर से अपनी सूंड से शीतल जल लाकर बार २ डालता है। परन्तु अंत में वह मर जाती है। स्नेह के कारण हाथी भी अग्नि मे गिर कर मर जाता है। इस प्रकार का चित्र एक आदमी के हाथ में देकर नगर मे भेजा। उस चित्र को देखकर जो उसके बारे मे पूछता तो वह इस प्रकार कहता कि पद्मावती नगरी के राजा पुरुषोत्तम

को जाति स्मरण हुआ है और अपने पूर्वभव की पत्नि को प्राप्त करना चाहता है, उसी का यह चित्र है।

उस आदमी को नगर में घूमते हुए राजकुमारी ने देखा इसलिये उसको बुलाकर सब हाल पूछा। उस आदमी न पहले के अनुसार सारी बात कह सुनाई। इससे पुरुप द्वेप राजकुमारी के मन से दूर हो गया और पुरुपोत्तम राजा स अनुराग करने लगी। यह बात राजकुमारी के पिता को मालूम हुई जिससे उसने खुश होकर विवाह की तैयारी कर बहुत से मनुष्यो के साथ पद्मावती नगरी भेजने का प्रबध किया। राजकुमारी माता पिता व तापसो को प्रणाम कर सब का आर्शीवाद लेकर पद्मावती नगरी को चल दी। अब पुरुपोत्तम राजा भी तापसो को नमस्कार कर अपनी मनोकामना पूर्ण हुई जान स्त्री रूप मे ही राजकन्या के साथ अपन नगर को रवाना हुआ। कुछ ही दिनो में वे पद्मावती नगरी के उद्यान में आकर ठहरे। वहा से सध्या को चुपचाप स्त्री वेप छोड-कर पुरुपोत्तम राजा महल में गया। राजा के आगमन की सूचना मिलने पर नगर के सेठ, सामत, मत्री वगैरह नमस्कार करने आये। पीछे राजा ने सारा वृतान्त मत्री को बतलाया और शुभ मुहुत देख उत्तम लग्न में राजकुमारी पद्मश्री के साथ बडे ठाठबाट के साथ शादी की।

कुछ समय आनन्द सहित विपय सुख भोगते हुए राणी ने सिंह स्वप्न सूचित गर्भ धारण किया। नौ मास पूरे होने पर पुत्र हुवा। राजा ने बडे हर्प पूर्वक जन्मोत्सव किया।

पुत्र का नाम पुरुपसिंह रखा। बड़े लाड़ प्यार से पालित विद्याभ्यास कर सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर यौवन अवस्था मे पहुचा। इसलिये राजा ने उत्साह से आठ राजकुमारियों के साथ राजकुमार की शादी कर दी। इस प्रकार राजा अपने आपको सुखी मानने लगा परन्तु सब की स्थितो कभो एक समान नही रहती है। अब धीरे २ राजा का भाग्य चक्र उलटा चलने लगा। पूर्व कर्मवश राणी के शरीर में दाहज्वर की महावेदना उत्पन्न हुई। उसी वेदना से राणी की मृत्यु हो गई। राणी पर अधिक स्नेह होने के कारण खाना पीना, राजकाज छोड़कर रातदिन रोने लगा। उस समय उस नगरी के उद्यान में चार ज्ञान को धारण करने वाले परमोपकारी श्रीदेव मुनिश्वर पधारे। उनको नमस्कार करने के लिये नगर के सब लोग जाने लगे। राजा भी मंत्री सहित आकर गुरु वंदन कर विनय पूर्वक उचित स्थान पर बैठ गया। उस समय करुणा सागर मुनिराज धर्मदेशना देने लगे।

'हे भव्यजीवों! मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और धर्मश्रवण का योग मिलने पर भी जो प्राणी अनन्त सुख देनेवाले धर्म मे चित नही लगाता वह वारवार दुःख से भरे चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण करता है। ससार में एक भी ऐसो योनी नहीं है जिसमे यह जीव अनन्त बार जन्मा व मरा न हो। यह जीव कर्म वश मनुष्य जन्म प्राप्त कर पौद्‌ग-लिक सुख को इच्छा में आसक्त होकर मनुष्य जन्म ऐसे ही खो देता है। इस जीव ने पौद्‌गलिक सुख को अनन्तबार

भोगा है फिर भी इसको तृप्ति नही। वास्तविकता मे इस पौद्‌गलिक सुख को सच्चा सुख नही कह सकते क्योकि जिस तरह किंपाक का फल खाने में मीठा होता है परन्तु अन्त में दारुण दुःख देनेवाला होता है। ऐसे दुखगर्भित सुख मे गुणीजन क्यो आसक्त होता है? सासारिक सुख क्षणिक और असार है इसलिये उसका त्याग कर अनन्त सुख को देने वाले जैन धर्म में रुचि रखना चाहिये। धर्म दो प्रकार का है—एक पच महाव्रत रूप श्रमण धर्म जिससे मोक्ष सुख प्राप्त होता है। दूसरा सम्यकत्व मूल श्रावक के बारह व्रत रूप धर्म है जिससे उत्कृष्ट बारहवें देवलोक का सुख प्राप्त होता है। इस तरह अनेक भवोपार्जित कर्म का नाश कर अक्षयसुख को देनेवाले धम का चिंतन करो।"

गुरु की धर्म देशना श्रवण कर राजा को प्रतिबोध हुवा और कहने लगा—हे करुणानिधि! इस अनन्त ससार में भ्रमण कर अनेक जन्म मरण के दुःख से भय पाकर मै आपकी रण में आया हू इसलिये मुझे इस दुःख से मुक्त करनेवाला चारित्र ग्रहण करने की आज्ञा दो।

गुरु—हे देवानुप्रिय! तुमको जिससे सुख मिले वैसा करो।

पीछे गुरु की आज्ञा लेकर नृपति राजमहल में आकर सातो क्षत्र में खूब द्रव्य व्यय कर पुरुषसिंह राजकुमार को राज गद्‌दी पर स्थापन कर मत्री सहित महोत्सव पूर्वक देव मुनिश्वर से चारित्र लिया। गुरु के पास सब क्रिया सीख समिति-

गुप्तयुक्त निरतिचार से चारित्र पालन कर नव पूर्वधर हुए ।

एक दिन अप्रमत्त राजर्षि मुनि शुभ ध्यान में रहकर इस प्रकार विचार करने लगे—अहो ! सम्यगज्ञान रूप चक्षु को देनेवाले, दुर्गति से तारने वाले गुरू से करोड़ उपाय करने पर भी उऋण नही हो सकते । माता, पिता, पुत्र, मित्र और स्त्री वगैरह तो सिर्फ इस भव में अपने स्वार्थ के खातिर ही उपकार करते है परन्तु गुरू महाराज तो निःस्वार्थ भाव से उपकार करनेवाले है इसलिये सच्चे माता पिता तो गुरु महाराज है । इस प्रकार विचार कर अपने मन में अभिग्रह धारण किया कि आज से मुझे नित्य गुरूजन की भक्ति करना । ऐसा अभिग्रह लेकर निरंतर अस्खलित भाव से गुरू की तैतोस अशातना टालकर गुरू के छत्तीस गुणों का चितन कर अपने मुंह से दूसरों के सामने गुरू के गुणों का कीर्तन करते हुए उत्कृष्ट पुन्योपार्जन कर तीर्थंकर नाम कर्म का वंध किया ।

एक दिन देवसभा मे इन्द्र महाराज ने पुरुषोत्तम मुनि की प्रशंसा कर कहा कि—वर्तमान संसार में भरतक्षेत्र में मुनि गुणों मे विभूषित पुरुषोत्तम राजर्षि के समान गुरू भक्ति करनेवाला दूसरा नही है । इस प्रकार मुनि की प्रशंसा सुन कोई इर्षालु मिथ्या दृष्टि देव उन मुनि को परीक्षा करने के लिये मुनि का रूप धारण कर पुरुषोत्तम मुनि के पास आकर उनके अनेकों दोष बताने लगा और कटु वचन से वाक्य प्रहार कर भर्त्सना करने लगा। फिर भी समता

सिंधु राजर्षि मुनि जरा भी खेद नही करते हुए अपनी निंदा करते हुए गुरूभक्ति भाव से जरा भी विचलित नहीं हुए। इस प्रकार दृढ चित्तवाले मुनि को देख देव प्रगट होकर मुनि को तीन प्रदक्षिणा नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा माग देवलोक में वापिस गया। राजर्षि मुनि अभिग्रह का पालन करते हुए अन्त मे एक मास का अनशन कर अच्युत कल्प में महा समृद्धिवाले देव हुए। वहा से चव कर महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

पंचम स्थविर पद आराधन विधि

"ॐ नमो थेराणं" इस पद को २० माला गिने।

इस पद के १० खमासमण देवे। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे।

दोहा

तजि पर परणति रमणता, लहे निज भाव स्वरूप।
स्थिर करता भविलोक ने, जय जय स्थविर अनूप ॥

१ श्री लौकिक स्थविर देशकाय लोकोत्तर स्थविराय नमः
२ श्री देशस्थविर देशकाय लोकोत्तरस्थविराय नमः
३ श्री ग्रामस्थविर देशकाय लोकोत्तरस्थविराय नमः
४ श्री कुलस्थविर देशकाय लोकोत्तरस्थविराय नमः
५ श्रीलौकिक कुल स्थविर देशकाय लोकोत्तरस्थविराय नम.
६ श्री लौकिक गुरु स्थविर लोकोत्तर देशकाय स्थविराय नमः
७ श्री लोकोत्तर श्री संघ स्थविराय नमः
८ श्री लोकोत्तर पर्याय स्थविराय नमः
९ श्री लोकोत्तर श्रुत स्थविराय नमः
१० श्री लोकोत्तर वय स्थविराय नमः

उपरोक्त खमासमण देकर १० लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

जगत में स्थविर दो प्रकार के होते ह एक लौकिक, दूसरे लोकोत्तर, उसमें देश वृद्ध नगर वृद्ध, ग्राम वृद्ध कुल वृद्ध, माता, पिता, प्रमुख लौकिक स्थविर हैं। उनका विनय प्रतिपत्ति इस लोक में यशवृद्धि का कारण है। परलोक में भी पुण्य का हेतु है जिससे तीर्थंकरादि भी माता पिता प्रभृति के विनय से नही चूकते। इससे लौकिक स्थविर को भी व्यवहार में नमस्कारादि करना योग्य है। दूसरा लोकोत्तर स्थविर, धर्मगुरु तथा श्री सघ है, जो तीन प्रकार का है १ पर्याय स्थविर, २ वय स्थविर, ३ श्रुत स्थविर। जिनको दीक्षा लिए २० वष हो गये हो उनका पर्याय स्थविर कहते हैं। जिनकी उम्र ६० वप से अधिक हो उनको वय स्थविर कहते ह। जो समवायङ्गसे ऊपर तक आगम पढ हो उनको श्रुत स्थविर कहते हैं। ये तीनो प्रकार के स्थविर शासन की शोभा, गण के भूषण, समस्त आचार विचार के सूय के समान प्रकाशक है, जिस कारण से उपाध्याय प्रवर्तक गणावच्छेदक रत्नाधिक का प्रवर्तन कराते है। जो माग से शिथिल होते साधुओ को शिक्षा देकर स्थिर करते हैं, उत्साह को बढाते ह, क्रियादिक में पुष्ट करते हैं, जिनको पद प्राप्त नही है उनको पद प्राप्त कराते हैं और स्थिर रखते हैं। जैसे लोक नीति में बिना वृद्ध घर, लश्कर, समुदाय, ग्राम, नगर, राजा, सभा कुल पञ्चायत, बरात, जाति वगरह शोभा नही देते इसी तरह स्थविर बिना गच्छ शोभा नही देता। श्रीसिद्धातजी

में भी श्रुतादि स्थविर को समुद्र, मेरु पर्वत, केवली, चक्रवर्ती राजा की उपमा दी गई है । इस कारण से स्थविर भी वहुमान विनय करके पढते पढ़ाते है। उन स्थविरो से विनय की वृद्धि होती है, क्रिया मे कैसे है उन्ही से क्रिया की पुष्टि की हुई है, तथा वहुत प्रकार के श्रुतधारी, क्रियाधारी संयमधारी देखे जाते है। उन्ही से गुणदोप का आदरत्याग परिणति परिणाम भी पुष्ट होता है, तीनों वृद्धि पुष्ट होती है। स्थविरों को उत्पादि की वृद्धि भी होती है क्योंकि वे जिनमार्ग के धुरन्धर है। श्री गौतमस्वामी भी श्रीकेशीकुमार आदि स्थविरों को वड़ा मानकर आप उनके स्थान पर गए और श्री केशीकुमार ने श्रीगौतम को श्रुत स्थविर समझकर वहुमान प्रतिपत्ति करके और प्रश्न गोष्ठी करके पञ्चविधि धर्म अंगीकार किया। ऐसे जो परमोपकारी स्थविर मुनिराज है उन स्थविरों को नित्यप्रति त्रिकाल बन्दना हो, और वे स्थविर हमारे मुक्ति साधन के सहायक होवें।

इस प्रकार स्तुति कर चन्दन तैलादि का विलेपन करे और इस पद में भी यथाशक्ति दिन-रात पौषध करे। इस पद की भक्ति के विषय मे स्थविर साधुओं को आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, कम्बल, औषध प्रभृति से बहुत विनय करे, हाथ जोड़ कर वन्दना करे, सुखशाता पूछे, साधर्मियों की भक्ति कर, माता पिता आदि गुरुजनों की यथायोग्य विनय भक्ति करे।

इसकी आराधना गौर वर्ण से करे। इस पद की आराधना से पद्मोत्तर राजा तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है ।

पांचवें स्थविर पद पर पद्योत्तर राजा की कथा

भरतक्षेत्र में महान् समद्धिशालो वाणारसी नगरी थी। वहा सूय समान प्रतापी, स्वरूपवान पद्योत्तर राजा न्याय-युक्त सुख पूवक राज्य करते थे। यहा से कुछ दूर अतिशय मनोहर शुभापुरी नगरी में जयराज राजा राज्य करता था। उसके देवागना के समान रूपवतो पद्मिनो और कुमुदिनी दो सर्वगुणसम्पन्न पुत्रिया थी। गजपुर नगर में सिंहरथ राजा राज्य करता था। उसके भी भोगावती और विभ्रमवती दो पुत्रिया थी। इन चारो राजकुमारियो ने किसी चित्रकार के पास पद्योत्तर राजा का चित्र देख उससे अनुराग करने लगी। माता पिता की आज्ञा से एक साथ पद्योत्तर राजा के साथ व्याह किया। राजा भी उनक साथ स्नेहपूर्वक सुख भोगते हुए समय व्यतीत करने लगा।

एक बार कौशल देश के सुग्रीव नाम के राजा ने पद्योत्तर राजा को चारो रानियो के अद्भुत रूप की प्रशसा सुनकर उस दुर्बुद्धि कामाध राजा ने दूत भेज कर पद्योत्तर राजा को कहलाया कि महाराज सुग्रीव तुम्हारी रानियो पर मोहित हो गया है इसलियें उनकी आज्ञानुसार अपनी रानियो को कौशलाधिपति के सुपुर्द कर उनके कृपाभाजन वनो। दूत की यह वात सुनकर पद्योत्तर राजा क्रोधित हो कहने लगा—हे दूत यहाँ से चला जा। तेरे निर्लज्ज दुर्बुद्धि राजा को तो

कहलाते शर्म नही आई परन्तु तुझे भी ऐसा कहते मृत्यु का डर नहीं लगा ? तू दूत होने के कारण अवध्य है इसलिये जीता छोड़ता हूँ। तू जाकर तेरे कामान्ध अविवेकी राजा को कहना कि सोते सिंह को छेडकर क्यो अपने प्राण गवाता है। है। कामान्ध होने के कारण वह विचारा हृदय से भी शून्य हो गया मालूम होता है और इसीलिए उसने ऐसा अयोग्य प्रस्ताव रखा है। इसीलिये वह दया का पात्र है। उसे कहना कि वह अपनी मूर्खता की क्षमा मांग ले नही तो इस मूर्खता का फल उसे भोगना पड़ेगा।

इस प्रकार पद्मोत्तर राजा के वचन सुन दूत ने अपने स्वामी के पास आकर सारा हाल कह सुनाया। दूत के द्वारा उत्तर सुनकर सुग्रीव राजा क्रोधान्ध हो अपनी सेना लेकर पद्मोत्तर राजा पर चढ़ाई करदी। पद्मोत्तर राजा भी अपनी सेना लेकर लड़ने आया। विशाल मैदान में दोनो सेनाओं मे घोर युद्ध हुआ। अंत मे सुग्रीव राजा हार कर भाग गया। पद्मोत्तर राजा विजय प्राप्त कर बड़े महोत्सव पूर्वक अपने नगर में आकर सुखपूर्वक रहने लगा।

एक दिन राजा राज्य सभा में बैठा हुआ था, उस समय इन्द्र शर्मा नाम का इन्द्रजालिया मनोहर देव समान रूपधारण कर साथ में एक अनुपम स्वरूपवान लावण्यमयी नवयौवना युवती को लेकर सभा मे आया और प्रणाम कर खड़ा रहा। उसको राजा ने आदर पूर्वक कहा—हे वीर पुरुष! तू कौन है? तेरे साथ यह सुन्दरी कौन है? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है?

इन्द्रजालिया सिर झुका कर कहने लगा—हे नरनाथ ! मे मणिप्रभ विद्याधर हूँ और यह प्राणों से अधिक प्रिय मेरी पत्नि है । यह एक दिन अपनी सखियो के साथ क्रीडा करने जा रही थी उस समय मेरे शत्रु वज्रदाह विद्याधर ने इसका हरण किया । मुझे खबर होते ही उसके साथ युद्ध कर अपनी स्त्री को लेकर यहा आया हू । परन्तु वह दुष्ट फिर अत्यन्त क्रोधित हो मेरे को मारने के लिये आरहा है । इसलिये मै अपनी स्त्री को आपकी शरण में देने आया हूँ । लोगो के मुह मे सुना है आप पर नारी सहोदर हे इसलिय आपके पास छोडने आया हूँ । मे जबतक दुश्मन को जीतकर पीछा आऊँ तब तक आप इसकी रक्षा करेंग ऐसी आशा हे । मैं थोडी ही देर में आपकी कृपा से अपने शत्रु को मार कर आ जाऊँगा । ऐसा कह क्षण में वह आकाश मार्ग से अदृश्य हो गया और स्व सभासद विस्मित हो उसकी तरफ देखते ही रह गये ।

थोडी देर मे आकाश से एकदम दो कटे हुए पैर राज सभा में आकर गिरे । इसके बाद दो हाथ कटे हुए गिरे । इस तरह शरीर के सब अवयव कटे हुए गिर पडे । यह देखकर सब विस्मय करने लग । उन अवयवो को पहचान कर विद्याधर की स्त्री जोर जोर से रुदन करती हुई बोली—हाय! हाय ! नाथ ! मुझ अभागी के लिये आपने निदयी शत्रु से लडकर प्राण त्याग किये । अरे नाथ ! दुष्ट के साथ लडने से तो मुझ हत-भागिनी का ही नाश होने देते तो अच्छा होता । हे प्राणपति ! अब मै आपके विना जीकर क्या करूँ ? मैं भी

आपके पीछे पीछे आती हूँ। इस तरह रोती हुई राजा से कहने लगी—महाराज ! मैं भी पति के साथ सती होना चाहती हूँ। क्योकि कुलीन और सती स्त्री का पति के बाद जीना व्यर्थ है। इसलिये मेरे पति के अंग के साथ मेरा भी अग्नि संस्कार करो जिससे मै जल्दी अपने पति से जाकर मिलूं। राजा आदि सभासदो ने उसे वहुत समझाया परन्तु उसने अपनी हठ नही छोड़ी। इसलिये राजा ने सबकी सलाह से अवयवों के साथ स्त्री का अग्नि संस्कार कर शोकपूर्ण हृदय से सभा में आकर वैठा। इतने मे आकाश से प्रफुल्लित होता हुआ पूर्वोक्त विद्याधर (इन्द्रजालिया) राजसभा में आकर राजा को नमस्कार कर कहने लगा। हे सत्यमूर्ति नराधीश ! मै आपके प्रताप से मेरे शत्रु का नाश कर निर्विघ्नता से आपके पास आया हूँ। अब आप मेरी सुख की देवी मेरी प्राणप्रिया सुलोचना को वापिस लेजाने को आज्ञा दीजिये। इन्द्र-जालिया को अचानक आया देख व उसके पूर्वोक्त वचन सुन राजा स्तब्ध हो कुछ भी उत्तर दिये विना भूमि की तरफ दृष्टि कर वैठा रहा। राजा को इस प्रकार वैठे देखकर पुनः इन्द्र-जालिया वोला—हे नरपति! आप विना कुछ कहे उदास होकर क्यों वैठे हो ? क्या मेरी सुन्दर स्त्री को देखकर तुम्हारे मन मे पाप पैदा होगया है ?

ऐसे कटु वचन सुनकर राजा मस्तक ऊंचा कर वोला—हे विद्याधर ! आप ऐसा न कहे। आपकी स्त्री मेरी वहिन के समान है। वह स्त्री आपके कटे हुए अवयवों को देखकर उनके साथ जलकर भस्म हो गई है

राजा की बात सुन पुन मर्म भेदी वचन कहने लगा—हे नृपति ! सत्पुरुष प्राणान्त कष्ट होने पर भी सत्य से विचलित नही होता । यह पृथ्वी सत्यवान पुरुषो के सत्य पर ही टिकी हुई है । लोग आपको सत्यवादी कहते हैं । क्या आप अपन सत्य से भ्रष्ट हो गये हो ? अरे स्त्री को देखकर कौन चलायमान नही होता ? राजा आपकी बुद्धि भ्रष्ट होगई है । आप सत्य से भ्रष्ट हो गये हो ।

इन्द्रजालिया के तीक्ष्ण तीर समान वाक्य सुनकर राजा का दिमाग घूमने लगा और मस्तक के हाथ लगा नैन बन्द कर चिन्ता करने लगा । इस तरह राजा को शोक पूर्ण देखकर जली हुई स्त्री अचानक प्रगट होकर अपन पति के पास खडी हो गई । उसे अचानक प्रगट हुई देखकर सब विस्मित होगये । तब राजा ने इन्द्रजालिया से कहा कि आपने यह सब हमको दु खी करने के लिये क्यो किया । तब उसने जवाब दिया कि हे राजा तेरे को प्रतिबोध देने के लिये इस इन्द्रजाल की रचना की थी । जैसे यह सब इन्द्रजाल असत्य है वैसे ही ये सारे पदार्थ जो दिखाई देते है वे सब क्षण भगुर और नाशवान ह । यह विशाल राज्य, अनुपम सौन्दर्य वाली मनोहर स्त्रिया सब नाशवान हैं । सब भोगो का त्याग ही सुख को देनेवाला है । यदि हम इनको नही छोडते तो ये किसी समय हमको छोडकर दु ख देंगे । इसलिये इन पर मोह करना व्यर्थ है । इन्द्रजालिया के ऐसे बचन सुन राजा को ज्ञान हुआ और उसे एक करोड सोना मोहर देकर विदा किया ।

दूसरे दिन उसी नगरी के उद्यान में देवप्रभ आचार्य बहुत मुनियों के साथ पधारे। नगर मे खबर होते ही सब पुरवासी राजा वगैरह गुरु को वन्दना करने गये। उद्यान मे आकर राजा विनय सहित तीन प्रदक्षिणा दे गुरु को वन्दना कर उचित स्थान पर बैठ गया। पीछे गुरु महाराज ने धर्म देशना शुरू की।

'हे भव्य आत्मा! जो कोई प्राणी लज्जा, भय, तर्क वितर्क, मात्सर्य, स्नेह, लोभ, हठ, अभिमान, विनय, शृंगार, कीर्ति, दुःख, कौतुक, आश्चर्य. व्यवहार, भाव, कुलाचार, और वैराग्य से धर्म का सेवन करता है, उसे अपार फल की प्राप्ति होती है। यदि धर्म श्रवण करा हो, देखा हो, किया हो, कराया हो और अनुमोदन किया हो तो अपार सुख प्राप्त करता है। इसलिये हे भव्य प्राणियों धर्म मे रुचि रखो।'

गुरु की देशना सुन राजा को वैराग्य भावना पैदा हुई और दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुका गुरू से बोला—'हे करुणा निधान! मुझे यह राज्य, मनोहर स्वरूपवान स्त्रियाँ और प्रताप किस पुण्य के प्रभाव से प्राप्त हुए है कृपा कर बतलाइये। गुरू ने कहा—हे राजा तू पूर्व भव में नन्दनपुर नगर में शङ्ख नामक सेठ के यहाँ नन्दन नाम का नौकर था। एक दिन तू मनोहर खिला हुआ कमल लेकर सेठके घर जारहा था कि इतने में किन्ही चार कुमारियों ने उस कमल को देखकर कहा कि ऐसा सुन्दर फूल तो वास्तव मे जिनेश्वर की पूजा के योग्य है। कन्याओं के ऐसे वचन सुन प्रसन्न होता हुआ कन्याओं से बोला

कि जो तुम कहती हो वह सत्य है। यह कमल जिनेश्वर की पूजा के योग्य ही है। ऐसा वह स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन अत्यन्त भाव पूर्वक श्री देवाधि देव परमात्मा की पूजा कर वह कमल का फूल चढाया। इसीलिये कहा है कि—

श्रेयस्तनोति दुरितानि निराकरोति,
लक्ष्मीकरोति, शुभ सचय मातनोति ।
पूज्यत्व मानयति कर्मरिपून्निहन्ति,
पूजा जिनस्य रचिता जिनभावमार ॥

अर्थ—अपनी उत्कृष्ट भावना से करी गई श्री जिनेश्वर की पूजा कल्याण करनेवाली है, पापों को दूर करने वाली है, लक्ष्मी की वृद्धि करनवाली है, पुण्य सचय में वृद्धि करती है, पूज्यता बढाती है और कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करती है। इस तरह भाव पूर्वक भगवान की पूजा अनेक उत्तम फल को देने वाली है। उन चारों कन्यायों ने भी जिनेश्वर भगवान की पूजा का अनुमोदन किया। उस पुण्य के प्रभाव से तू वहाँ राजा हुआ और वे सारी कुमारियां तेरी रानियाँ हुई।

गुरू से पूर्व भव सुनकर राजा को जातिस्मरण हुआ और वैराग्य भावना लेकर राजमहल में आकर अपने पुत्र पद्मशेखर को राजगद्दी दे नगर के सारे जिन चैत्यों में अट्ठाई महोत्सव कर चारों स्त्रियों के साथ गुरू से चारित्र अङ्गीकार किया। धीरे धीरे राजर्षि मुनि ने विधि सहित गुरू से ग्यारह अगों का अध्ययन किया। एक दिन गुरू के मुह से वृद्धों की भक्ति का

षष्ठ उपाध्याय पद आराधन विधि

"ॐ नमो उवज्झायाणं" इस पद की २० माला गिने।

उपाध्याय के २५ गुण होने से पहले नीचे लिखे २५ खमासमण देवें। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे।

दोहा

बोध सूक्ष्म बिणु जीव ने, न होय तत्त्व प्रतीत।
भणे भणावे सूत्र ने जय जय पाठक गीत॥

१ श्री आचाराङ्गश्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
२ श्री सुयगडाङ्गश्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
३ श्री ठाणाङ्गश्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
४ श्री समवायाङ्गश्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
५ श्री भगवती श्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
६ श्री ज्ञाता धर्मकथा श्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
७ श्री उपासकदशांग श्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
८ श्री अन्तगडदशांग श्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
९ श्री अनुत्तरोववाई अंग श्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
१० श्री प्रश्न व्याकरणांग श्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
११ श्री विपाकांग श्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः
१२ श्री उववाइउपांग श्रुत पाठकाय उपाध्याय नमः

१३ श्री रायपसेणीउपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
१४ श्री जीवाभिगमउपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
१५ श्री पन्नवणाउपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
१६ श्री जम्बूद्वीपपन्नत्तिउपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
१७ श्री चन्द्रपन्नत्तिउपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम०
१८ श्री सूरपन्नत्ति उपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
१९ श्री निरयावली उपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
२० श्री कप्पिश्रा उपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
२१ श्री पुप्फिश्रा उपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
२२ श्री पुप्फ चूलिया उपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
२३ श्री वन्हिदशा उपाङ्गश्रुत पाठकाय उपा० नम
२४ श्री द्वादशाङ्गीश्रुत पाठकाय उपा० नम
२५ श्री द्वादशाङ्गीश्रुतार्थ श्रध्यापकाय उपा० नम

उक्त खमासमण देकर २५ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

श्री उपाध्यायप्रभुजी ज्ञान दर्शन चारित्र के निधान, श्री श्राचार्यजी के धर्म राजधानी के प्रधान, सकल नयनिक्षेपाप्रमाण गर्भित द्वादशागी जाननेवाले, सुविहितगच्छप्रवृत्ति के मण्डन, समस्त परमपद के साधक, मुनि वृन्द के सूत्रधार, सर्व जनो से श्रधिक बुद्धिमान, दुर्बोध शिष्य को सुबोध करने में कुशल, जाड्य ग्रन्थि को चुण करने में वज्र मूशल के समान श्रवारित,

किंपाक फल को खाकर मनुष्य मरता है वैसे ही सुन्दर स्त्रियों का संग करने से अनेक बार मर कर महान् दुःख भोगने पड़ते है। यदि राजा ही अनीति के रास्ते पर चले तो दूसरों को कैसे रोका जा सकता है। इसलिये हे राजा! दोनों लोको मे दुःख देनेवाली पर स्त्री संग का विचार छोड़ दो। इस तरह बहुत समझाने पर भी राजा ने अपना हठ नही छोड़ा। इसलिये मंत्री ने राजा का हित चिंतन कर राज्य की अधिष्ठायिका देवी का स्मरण किया जिससे देवी प्रगट हुई। मंत्री ने उसे सारा हाल बताया। तब देवी ने कहा कि जब यह अपने पाप का पश्चाताप करे उस समय मेरा स्मरण करना। मै उसे शांत कर दूंगी। ऐसा कह राजा के शरीर में व्याधि प्रगट कर देवी अदृश्य हो गई। पीछे व्याधि से व्याकुल हुआ राजा विलाप कर सोचने लगा कि वास्तव में मुझे मेरे दुष्कृत्य ही पीड़ा दे रहे है। मन से किये गये पाप से ही इतना कष्ट हो गया है तो जो पाप सेवन करता है उसका तो क्या हाल होता होगा। इस प्रकार मन मे पश्चाताप कर फिर कभी पाप कार्य नही करने की प्रतिज्ञा कर व्याधि की शांति के लिये प्रार्थना करने लगा। मंत्री ने सोचा कि अब राजा पूरी तरह पछता रहा तो उसने देवी का स्मरण किया और देवी ने व्याधि को शांत कर दी और राजा स्वस्थ हो गया। पीछे राजा ने मंत्री से पूछा कि मुझे जो मानसिक पाप लगा उसकी शुद्धि कैसे हो? मंत्री ने कहा पंडितों को बुलाकर पूछो ताकि वे पाप निवारण करने का उपाय बतावेगे। राजा ने मंत्री के कहने से दूसरे दिन सवेरे पंडितों को बुलाकर पाप से मुक्त होने का

उपाय पूछा। पडितो ने अलग २ रीतिया बताई। किसी ने कहा गगाजल पीने से पाप दूर होता है। किसी ने कहा अडसठ तीथ की यात्रा कर नर्मदा की मिट्टी का शरीर पर लेप करने से पाप दूर होता है। किसी ने कहा हवन कर वेद पुराण की कथा सुनने से पाप का नाश होता है। किसी ने कहा ब्राह्मणो को दान देने मे किये पापो का नाश हो जाता है। इस प्रकार पडितो ने पाप निवारण के उपाय बताये परन्तु राजा को इनमें से कोई भी पसन्द नही आया। उस समय नगर के बाहर उद्यान में श्रीषेण मुनिश्वर पधारे। राजा उनकी वदना करने परिवार सहित गया। गुरु की विनय पूर्वक वन्दना कर दोनो हाथ जोड बोला—हे करुणानिधि! मन के पाप की शुद्धि किस प्रकार की जाय, इसका उपाय बताओ।

गुरु ने कहा शुद्धि दो प्रकार की है, बाह्य और अभ्यन्तर। जलादिक से शरीर की बाह्य शुद्धि होती है और ज्ञान, ध्यान तथा तप से अभ्यन्तर की शुद्धि होती है। जिसका चित्त काम वश स्त्री के मोह में फसा हुवा है ऐसे मनुष्यो की जलादिक से कभी भी शुद्धि नही हो सकती। अन्तर की शुद्धि तो ज्ञान और क्रिया से ही हो सकती है ऐसा जिनेश्वर ने कहा है। कहा भी है कि—

आलोचया निंदनगर्हणाभि , सम्यक क्रिया बोध तपो भिरुग्रै।
तत्पापकर्मा स्रजतस्त्रिधापि, स्मार्हुविशुद्धि खलु दुष्कृताना॥

अर्थ—मन, वचन और काया इन तीनो से पाप करनेवाले मनुष्य के दुष्कर्मो की शुद्धि आलोचना, निंदा और गर्हा तीन

प्रकार से और सम्यक् क्रिया, ज्ञान व उग्र तप से दुष्कृत्यों की शुद्धि होती है ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं।

गुरु की ऐसी देशना सुनकर प्रधान के भाई श्रुतशील को वैराग्य हुवा और उसने चारित्र ग्रहण किया।

श्रुतशील के चरित्र लेने से राजा को गुरु पर द्वेष हुआ। गुरु राजा को प्रतिवोध देकर वहां से विहार कर गये। पीछे एक वार उसी नगर के उद्यान में निर्दोष चारित्र का पालन करने वाले श्रुत केवली श्री समंतभद्राचार्य वहुत से साधुओं के साथ वहां आये। उस समय सब पुरवासी और राजा उनको वंदना करने आये। तव गुरु महाराज ने देशना दी।

'हे भव्यजनों! मदोन्मत्त हाथी, प्रचंड वेगवान घोड़े, विशाल राज्य लक्ष्मी, सुन्दर रूप, उत्तम वीर्य, मृगलोचनी सुन्दर स्त्री आदि भोगोपभोग्य वस्तुओं की प्राप्ति धर्म के प्रभाव से ही प्राप्त होती है। जो सुज्ञ शिरोमणि जिनेश्वर के कहे धर्म में रुचि रख दूसरों को भी प्रेरणा देता है वह प्राणी सुख सम्पदा को प्राप्त करता है; और जो मूढ आत्मा जिनेश्वर के धर्म को माननेवाले का अनादर कर उन पर द्वेष करता है वह अनेक प्रकार के दुःखों को प्राप्त करता है। इसलिये जहां तक यह देह निरोग है, इन्द्रियां काम करती है, जरावस्था दूर है वहां तक धर्म कार्य में लगे रहने का यत्न करो।

— ऐसी वैराग्य पूर्ण गुरु देशना श्रवण कर राजा ने जयन्तकुमार को राजसिंहासन पर वैठा मंत्री सहित गुरु के पास से चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ गुरु के पास रहकर ग्यारह अंग

का अध्ययन किया। एक दिन गुरुमुख से बीस स्थानक की आराधना सम्बन्धी देशना श्रवण करते हुए ऐसा सुना कि बीस स्थानकों में से एक भी स्थानक की सम्यक प्रकार से आराधना करने से तीर्थंकर पदवी मिलती है। वह गुरु वचन सुनकर राजर्षि मुनि ने अभिग्रह लिया कि जहा तक जीऊगा वहाँ तक बहुश्रुत की सेवा करूगा। ऐसा अभिग्रह लेकर बहुश्रुत मुनियो की औषध भेषज आदि से वैयावच्च करते हुए अभिग्रह का दृढता से पालन करने लगा।

एक दिन देवसभा म इन्द्र महाराज ने उन मनि की प्रशसा की। उस पर शकित हो धनददेव जहा मुनि थे उस नगरी में आ सेठ बनकर रहने लगा। उस समय वे राजर्षि मुनि किसी बीमार साधु के लिये कोलापाक की तलाश में कपट रूप सेठ के घर आ धर्म लाभ देकर खडे हुए। मुनि को देख कपटी सेठ खडा होकर प्रणाम कर मीठे वचनो से बोला कि आज मेरा धन्यभाग्य है कि आपने पधार कर मेरा घर पवित्र किया। हे पूज्य कहिये आपको क्या चाहिये ?

मुनि ने कहा—हे महाभाग मुझे कोलापाक की जरूरत है। यदि तुम्हार पास हो तो दो।

सेठ ने कहा महाराज मेरे घर में कोलापाक जितना चाहिये उतना है। आप ठहरिये म अभी लाता हूं। ऐसा कह अन्दर से कोलापाक लाकर मुनि को देने लगा। मुनि ने उसे अनिमेष नेत्रवाला देख सोचा कि यह तो कोई मायावी देव है और देवपिंड मुनि ग्रहण करते नही। ऐसा सोच पाक लिए बिना

वहां से दूसरी जगह चले गए। इससे वह देव क्रोधित हो जहां २ मुनि जाते वहां २ पाक को अशुद्ध कर देता। फिर भी मुनि को खेद नहीं हुवा। वहुत घर फिरते २ सूर सार्थवाह के यहां मुनि गये। वहां उसे शुद्ध पाक मिला। वहां से पाक लेकर मुनि अपने स्थान पर गये। इस तरह मुनि को अपने अभिग्रह मे निश्चल देख देव ने प्रगट हो मुनि को स्तवन कर सूर सार्थवाह के घर रत्नों की वृष्टि कर अपने स्थान पर गया। वहुश्रुत को भाव पूर्वक सम्यक प्रकार से सेवा करने से मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहां से काल धर्म प्राप्त कर नवमे देवलोक मे देवता हुए। वहां से चव महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थंकर पद पाकर मोक्ष प्राप्त करेगे। श्रुतशील मुनि का जीव उन्ही तीर्थंकर के गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार महेन्द्रपाल नृपति का चरित्र श्रवण कर हे भव्यजीवो तुम भी वहुश्रुत की भक्ति करने के लिये प्रयत्न करो।

सप्तम साधु पद आराधन विधि

"ॐ नमो लोए सव्वसाहूण' इस पद की २० माला गिने।

साधु के २७ गुण होते है इसलिये इस पद के २७ खमासमण नीचे लिखे माफिक देना। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा बोलना।

दोहा

स्वाद्‌वादगुण परिणम्यो, रमता समता सग।
साधे शुद्धा नन्दता, नमो साधु शुभ रग॥

१ पृथ्वीकाय रक्षकेभ्य सर्व साधुभ्यो नम
२ अपकाय रक्षकेभ्य सर्व साधुभ्यो नम
३ तेजकाय रक्षकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नम
४ वायुकाय रक्षकेभ्य सर्व साधुभ्यो नम
५ वनस्पतिकाय रक्षकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नम
६ त्रसकाय रक्षकेभ्य सर्व साधुभ्यो नम
७ सर्वत प्राणातिपात विरतेभ्य सर्व साधुभ्यो नम
८ सर्वत मृषावाद विरतेभ्य सर्व साधुभ्यो नम
९ सर्वतोऽदत्तादान विरतेभ्य सर्व साधुभ्यो नम
१० सर्वतो मैथुनात् विरतेभ्य' सर्व साधुभ्यो नम
११ सर्वत परिग्रहात् विरतेभ्य- सर्व साधुभ्यो नम
१२ सर्वतो रात्रि भोजनात् विरतेभ्य सर्व साधुभ्यो नमः

मधुकर वृति, आत्मोपासक मुक्तमान. महर्षि शान्त, दान्त, अवधूत, शुद्धदेशी शुद्धलेशी, अकामी, पूर्ण ब्रह्मचारी, जागरिक-तीर्थी, पूर्णकाम, अध्यात्मवेदी, जिनज्येष्ठमृत, उर्द्धरेता, अनुभवी तारक, त्रियोगी, महाशय, भद्रक, तत्वज्ञानी, वाचंयम, मोहजयी ऋषि, अलुब्ध, अकिञ्चन, सव संहृत प्रतिकर्मा श्रमण समभय पण्डित पुरोग अमृत क्रियाविलासी वचन, धर्मऋषि, शुक्ल शुक्लाभिजाति, अनुत्तरयोगी, मं. अतीन्द्रिय, मुद्रितकरण, अकर्मा, महाबुद्धि, महाविचक्षण, महासाधक, परब्रह्मनेता, इत्यादि अनेक गुणरत्न मुनिराज भवसमुद्र तरण के जहाज, समस्त लोक के मित्र। इस प्रकार दो हजार कोडी साधुजी है उनको हमारी प्रतिदिन त्रिकाल वन्दना है। वह घडी, दिवस, समय, क्षण धन्य है कि दिल मे पूर्वोक्त साधुजी के दर्शन सेवन मेरेको प्राप्त होवे। ऐसे साधु महाराज हमारे मुक्तिसाधन के समय होवे इत्यादि से स्तुति करे। इस पद के भक्ति विषय में छट्ठ, अट्ठम, दशम, मास क्षमण, प्रमुख दुष्कर तप करने में तत्पर साधु तपस्वी का गौरव विवेक सहित करना चाहिए, साधु को वस्त्र पात्रादि १४ उपकरण की सहाय करे, साधु को पुस्तक देवे, पुस्तक का उपकरण देवे, तपस्वी साधु की वैयावच्च करे, तपस्वी साधु का अङ्ग विलेपन करे, उपाश्रय बनावे, वृद्ध रोगी साधुओं को औषध प्रभृति देवे, दीक्षामहोत्सव करे और अठारह शीलाँगरथ गाथा की साधु वन्दना पढ़े इत्यादि सप्तम पद के आराधन से प्राणी अभिमत फलों को प्राप्त करता है ॥

इस पद की आराधना श्याम वर्ण से करना। इस पद को

आराधना से श्री वीरभद्र तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

सातवें तपस्वी स्थानक पद आराधना पर वीरभद्र की कथा

अवन्ती देश में अलकापुरी के समान विशाला नाम की नगरी थी। उस नगर मे धनाढ्य वृषभदास सेठ रहता था। उसके रूपवती व गुणवान वीरमती स्त्री तथा वीरभद्र पुत्र था।

बालक वीरभद्र धीरे २ सब कलाओ मे कुशल होकर यौवनावस्था में पहुँचा। वीरभद्र के रूप और गुण की प्रशसा पद्मिनी खड पत्तन में रहनेवाले पुण्यात्मा सेठ सागरदत्त ने सुनी। इसलिये उसने अपनी पुत्री प्रियदशना का विवाह उसके साथ करने के लिये एक आदमी भेजा। सेठ ने उचित घर समझ प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बाद मे शुभ मुहूर्त में उत्साह पूवक प्रियदर्शना के साथ लग्न कर दिया। कुछ दिन श्वसुर के घर आनन्द पूर्वक रहने के बाद वीरभद्र ने अपने घर जाने की आज्ञा मागी। तब सेठ ने कहा कि मुझे अपनी पुत्री प्रियदशना से अधिक प्रेम है इसलिये आप अपने साथ आए हुए आदमियो को भेज दो और आप यही रहो। ससुर की बात सुन उसने अपने साथ आए हुए आदमियो को बिदा किया और कहा कि मैं कुछ दिना बाद अपनी स्त्री सहित आऊँगा क्योंकि सेठ का बहुत आग्रह है और म उनके दिल को दुखाना नही चाहता। कुछ दिन बीतने पर वीरभद्र ने सोचा कि जो

पुरुष सुसराल मे और स्त्री पीयर में ज्यादा रहते हैं वे अपनी शोभा व लाज खोते है। इसलिये अब मुझे यहां ज्यादा नही रहना चाहिये। परदेश जाकर द्रव्य संचय कर पिता के घर जाना ज्यादा अच्छा है। यह विचार उसने अपनी स्त्री को बताया और कहा कि तुझे छोड़कर जाना मुझे अच्छा नहीं लगता है परन्तु विना काम श्वसुर के घर रहना भी मुझे अच्छा नही लगता। इसलिये परदेश धन कमाकर आऊँ तब तक तू पिता के घर रह। मै थोड़े दिन में आकर अपने पिता के घर ले जाऊँगा। इस प्रकार समझाकर और उसकी स्वीकृति ले अपने भाग्य की परीक्षा करने निकल पड़ा। घूमते २ वह सिहल द्वीप पहुँचा। वहाँ किसी दिव्य गुटिका के प्रभाव से रूप बदल कर नगर मे नाना प्रकार की कलाएँ करता हुवा घूमने लगा जिससे नगर के लोग उसे प्यार करने लगे।

एक दिन घूमते २ वीरभद्र उस नगर के शंख सेठ की दुकान पर जाकर बैठा। सेठ उसे गुणवान, रूपवान, और बलवान देख आदर पूर्वक घर लाया और पुत्र की तरह रखा। अब वीरभद्र सुख पूर्वक रहने लगा।

उस नगर के रत्नाकर राजा की महा गुणवान, सब कलाओं मे निपुण, अत्यत रूपवती अनंगसुंदरी पुत्री थी। उसकी सेठ की पुत्री के साथ मित्रता थी। उससे राजकुमारी की प्रशंसा सुन वीरभद्र की इच्छा उसे देखने की हुई इसलिये उसने सेठ की पुत्री से कहा। सेठ की पुत्री ने कहा कि वहां स्त्रियों के सिवाय किसी को जाने का हुक्म नहीं है इसलिये कैसे बताऊँ।

वीरभद्र ने कहा इसमें क्या है ? ऐसा कह गुटिका के प्रभाव से वह सुन्दर नव यौवना कन्या बन गई। इस प्रकार रूप परिवर्तन कर सेठ की पुत्री के साथ राजमहल में राजकन्या के पास आया। नई स्वरूपवान अपरिचित महिला को देख राजकुमारी बोली हे सखी तेरे साथ देव सुन्दरी समान यह कन्या कौन है।

सेठ की पुत्री ने कहा—बहिन यह मेरे मामा की पुत्री है। हमारे घर थोडे दिन के लिये मिलने आई है। इसे वीणा बजाना बहुत अच्छा आता है इसलिये मैं तुम्हारे पास लाई हू। तुम अपनी वीणा इसे दो। देखो यह कैसा मधुर गाती है। राजकन्या ने अपनी वीणा उसे दी। कृत्रिम कन्या ने वीणा हाथ में लेकर इस तरह बजाई कि उसके सगीत, ताल, आलाप को सुनकर राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न हो कहने लगी कि बहिन तुम निरन्तर मेरे पास ही रहो तो ठीक है, क्योंकि तुमको देख मेरे मन में अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है।

राजकन्या के आग्रह से कृत्रिम कन्या वहा आनन्दपूर्वक विविध प्रकार से विनोद करती हुई रहने लगी। इस तरह दोनों का मन एक हो गया।

एक दिन कृत्रिम कन्या ने राजकुमारी से कहा कि हे सखी तू नव यौवनावस्था में पहुँच गई है इसलिये यदि तुझे तेरे रूप गुण समान पति मिल जाय तो अच्छा है।

राजकुमारी ने कहा—हे सखी सब को अच्छे वर की इच्छा होती है। कोई बुरे को नहीं चाहता। परन्तु इसमें अपनी

इच्छानुसार होना कठिन है क्योंकि यह सब अपने २ शुभाशुभ कर्म के अधीन है। कृत्रिम कन्या ने कहा कि हे सखी तेरा कहना सत्य है परन्तु तेरे रूप गुण के योग्य एक कुलवान पुरुष है। यदि तुझे पसन्द हो तो बताऊँ।

राजकुमारी ने कहा यहां कैसे बतायगी ?

कृत्रिम कन्या ने कहा—अरे यहां ही बताऊँगी। देख यह रहा। ऐसा कह अपना असली रूप प्रगट किया। यह देख राजकुमारी आश्चर्य चकित हो विचारने लगी कि यह क्या कोई देवमाया है या इन्द्रजाल है। राजकन्या को भय में पड़ी देख वीरभद्र बोला हे नृप कुमारी! आप किस विचार मे हो? क्या यह पुरुष तुमको पसन्द है?

राजकुमारी लज्जित हो सिर नीचा कर धैर्य पूर्वक बोली कि हे कुमार कृपा कर अपनी सच्ची पहिचान बताओ जिसे सुनकर मै भाग्यशाली होऊँ। वीरभद्र ने अपना परिचय दिया जिसे सुन राजकुमारी खुश हो अपनी माता को बुला अपना अभिप्राय बतलाया। रानी ने राजा से कहा। राजा ने खुशी से उत्साहपूर्वक शुभ दिन देख पुत्री का विवाह कर दिया। वीरभद्र उसके साथ सुख भोगता हुवा वहाँ रहने लगा। एक दिन वह एकान्त मे बैठ विचारने लगा कि—

उत्तमाः स्वगुणैः ख्याता मध्यमाश्च पितुर्गुणैः :
अधमा मातुलैः ख्याता, श्वसुरेस्त्वधमाधमः ॥१॥

अथ —अपने गुणो से जो विख्यात है वह उत्तम, पिता के गुणो से जो प्रसिद्ध है वह मध्यम, मामा के गुणो से जो जाना जाता है वह अधम और जो श्वसुर के कारण ख्याति पाता है वह अधमाधम है ।

ऐसा विचार कर राजा को व शेख सेठ की आज्ञा ले अपने देश जाने की तैयारी की । शुभ मुहुर्त व अच्छे शकुन देख बहुत मनुष्यो के साथ नाव में बैठा । पीछे नाव समुद्र मे चलने लगी । कुछ दिनो बाद नाव समुद्र बीच पहुँची । इतने में दुर्दैववश दसो दिशाओ में प्रचड आधी आई, आकाश मेघो से आच्छादित हो गजन करने लगा, बिजली चमकने लगी और समुद्र हिलोरे लेने लगा । इससे नाव डावाडोल होने लगी । नाव के मनुष्य व्याकुल हो इप्टदेव का स्मरण करने लगे । प्रचण्ड तूफान के कारण अन्त में नाव के टुकडे २ हो गये और सब मनुष्य समुद्र में गिर गये । सत्कर्म के कारण राजपुत्री अनगसुन्दरी के हाथ में लकडी का पटिया आया । उसके आधार से तैरती २ तीन दिन में समुद्र के किनारे जा पहुँची । वहा एक तापस दया कर उसे अपने आश्रम मे ले गया और पुत्री की तरह रखने लगा । अनग सुन्दरी की सुन्दरता देखकर तापस विचारने लगा कि ब्रह्मचारी को स्त्री सग लाभदायक नही है । इसलिये कहा है कि—

मदिराया गुणा ज्येष्ठा, लोकद्वय विरोधिनी ॥
कुरुते द्रष्ट मात्रापि, महिला ग्रहिल जगत् ॥१॥

उत्साहपूर्वक व्याह कर गगन गामिनी तथा आभोगिनी विद्या सिखलाकर विद्याधर बनाया। सच है पुण्यशाली को जगह २ संपत्ति और सुख प्राप्त होता है।

कुछ समय बीतने पर एक दिन आभोगिनी विद्या के प्रभाव से निर्मल शीलयुक्त अपनी पूर्व की दो पत्नियों को सुव्रता साध्वी के पास पद्मिनी खड नगर में शास्त्राभ्यास करती देखी। वह अपनी नव विवाहिता पत्नी को लेकर उस नगर मे आया। वहां आकर स्त्री को सुव्रता साध्वी के उपाश्रय के पास छोड़ खुद मल त्याग के बहाने वहां से चला गया। कुछ समय व्यतीत होने पर जब पति वापिस नही आया तो रत्नप्रभा चिंता करती हुई वहां से उठकर सुव्रता साध्वी के उपाश्रय में जहां पूर्वोक्त दो स्त्रियां पढ़ती थी चली गई। उनके पास बैठकर अपना हाल सुनाया। उन्होंने उसे भी अपने पास रख ली। अब तीनों किसी अन्य पुरुष से बात किए बिना निरन्तर देवपूजा, प्रति-क्रमण पौषध आदि धर्म क्रिया करने लगी।

वीरभद्र अपनी स्त्री को छोड़ वामन रूप धारण कर सुलक्षण नाम धारण कर विविध प्रकार के कौतुक कर लोगो को प्रसन्न करता हुआ घूमने लगा। एक दिन इस प्रकार घूमता २ राजा की सभा मे चला गया। वहां उस सभा मे कोई पुरुष यह कह रहा था कि अपने नगर में सुव्रता साध्वी के उपाश्रय मे अप्सरा के रूप के समान तीन सती स्त्रियां हैं वे ऐसी दृढ़ नियमवाली है कि पर पुरुष के सामने भी नही देखती

तो फिर उनके साथ वातचीत करना तो दूर की बात है । वे सती स्त्रिया नवयौवना होने पर भी जितेन्द्रिय हैं ।

ऐसी वात सुन राजा आश्चर्यान्वित हो बोला कि जो कोई पुरुष उन तीन स्त्रियो से वातचीत करेगा वह मेरा कृपा भाजन बनेगा ।

राजा की आज्ञा सुनकर सभा में बैठे हुए किसी भी आदमी ने कुछ नही कहा । इतने में वहा आये हुए वामन पुरुष ने प्रणाम कर कहा कि महाराज मै अपनी कला से उनसे वात कर सकूँगा ।

वामन की वात सुन राजा बोला कि चलो, अभी चलो । पीछे सब सभासदो सहित राजा वामन को ले सुव्रता साध्वी के उपाश्रय में आकर आर्या की वदना कर सब लोग अपने २ उचित स्थान पर बैठ गये । पीछे राजा की आज्ञा ले वामन बोला कि हे सभासदो मैं एक आश्चर्यजनक कहानी कहता हूँ सो सुनो । यह कह निम्न प्रकार कहना शुरू किया ।

विशालापुरी में रहनेवाले वृषभदास सेठ के वीरभद्र पुत्र था । उस वीरभद्र ने पद्मिनी खण्ड नगर में रहने वाले सागरदत्त सेठ की कन्या प्रियदर्शना के साथ शादी की । कुछ दिन उसके पास रह उसे वही छोडकर परदेश चला गया । ऐसा कह वह चुप होगया । अपने पति की वात सुन प्रियदर्शना बोली बताओ पीछे वे कहा गये ।

प्रियदर्शना को बोलती देख वामन बोला तीन में से एक स्त्री तो बोली अब बाकी बात कल कहूँगा ।

कुछ हलु कर्मी जीव सर्व विरति हुए और कुछ देश विरति हुए। देशना पूर्ण होने पर भगवान के चरणों में नमस्कार कर सागरदत्त सेठ बोला हे करुणा निधान ! लोकालोक प्रकाशक, अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले ! मिथ्यायत्व रूप अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान! हे जगतबन्धु! आप कृपा कर यह बताइये कि वीरभद्र ने पूर्वभव में क्या सुकृत्य किया था ?

भगवान ने कहा हे सेठ तू वीरभद्र का पूर्व भव सुन। रत्नपुर नगर में निर्धन होते हुए भी व्यवहार से आजीविका चलानेवाला जिनदास श्रावक था। उसके यहां एक दिन चौमासी तप के पारणे के निमित्त भगवान अनन्तनाथ पधारे। उसने उन्हें भक्तिपूर्वक बड़े आदर से शुद्ध आहार दिया। उस आहार के प्रभाव से उसके घर देवो ने बारह करोड़ सोना मोहरों की वृष्टि की। इससे वह धनवान हुवा। दानार्जित पुण्य के प्रभाव से वहां से मृत्यु पाकर वह जिनदत्त ब्रह्मलोक में महान् संपत्तिवाला देव हुवा। वहां से चव यह वीरभद्र रूप मे उत्पन्न हुआ। थोड़ा भी श्रद्धापूर्वक सुपात्र को दिया हुवा दान बहुत प्रकार के फल को देनेवाला होता है।

अपने पूर्व भव को सुन वीरभद्र दोनों हाथ जोड़ बोला हे त्रैलोक्य तारण कृपासिंधु अब मेरा आयुष्य कितना बाकी है यह कृपा कर बताओ।

जिनेश्वर ने कहा हे वीरभद्र अभी तू दान के प्रभाव से

तीन सौ वर्ष तक नाना प्रकार के सुख भोगेगा। फिर भोग कर्म का अन्त होने पर तेरे को चारित्र का उदय आवेगा।

जिनेश्वर के वचन सुन वीरभद्र वीतराग को नमस्कार कर सास श्वसुर सहित घर आया। बहुत दिना तक नाना प्रकार के भोग भोगता, देव पूजा, स्वामी वात्सल्य आदि धर्म कार्य करता वही रहने लगा। पीछे सब की आज्ञा ले अपनी तीनो स्त्रियो और अन्य परिवार सहित अपने नगर में आया। माता पिता पुत्र को तीन वधुओ और अपार धनराशि सहित कुशलक्षेम आया देख बडे हर्ष पूर्वक मिले और दीर्घकाल के वियोग को भूल गये। वीरभद्र ने माता पिता के चरण छुये। बहुओ ने भी सास को नमस्कार किया। सास ने आशीर्वाद दिया। दीर्घकाल के वियोग दूर होने से सारा कुटुम्ब आनन्दित हुवा। घर पर आने के बाद वीरभद्र ने माता पिता को अष्टापद, सम्मेदशिखर, आदि तीर्थों की यात्रा कराई। समय पाकर उसके माता पिता अनशन कर देवलोक गये। वीरभद्र ने अनेक दुखियो के कष्ट दूर कर द्रव्य का सदुपयोग किया। नगर में एक विशाल और सुन्दर जिन चैत्य बनवाया। इससे सब जगह उसकी कीर्ति फैल गई। नगर के राजा ने भी उसे नगर सेठ की पदवी प्रदान की। कुछ दिन बीतने पर तीनो स्त्रियो के एक २ पुत्र हुआ। उनके वीरदेव, वीरदत्त, और वीरचद नाम रखे। चन्द्रकला की तरह तीनो यौवनावस्था में पहुँचे। अब वीरभद्र के भोगावली कर्म पूर्ण होने से उसने अपनी तीनो स्त्रियो और दूसरे पाच सौ सेठो के साथ चद्र-

गुरू से यह सुन देव प्रसन्न हो देवलोक को चला गया। पीछे वीरभद्र मुनि ने आकर गुरू को आदरपूर्वक पारणा कराया। इस तरह निरन्तर तपस्वियों की भक्ति कर वहां से काल धर्म पा बारहवे अच्युत कल्प में महा समृद्धिवान देव हुए। वहां से चव महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थंकर पद प्राप्त कर अनेक जीवों का उपकार कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

अष्टम ज्ञान पद आराधन विधि

"ॐ नमो नाणस्स" इस पद की २० माला गिने।

इस पद के ५१ खमासमण नीचे लिखे माफिक देना। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा बोलना।

दोहा

अध्यात्म ज्ञाने करी, विघटे भव भ्रम भीति।
सत्य धर्म ते ज्ञान छे, नमो नमो ज्ञान नी रीति॥

१ श्रोतेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
२ चक्षुरिन्द्रय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
३ घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
४ रसनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
५ स्पर्शनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
६ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
७ चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
८ घ्राणेन्द्रियअर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
९ रसनेन्द्रिय अर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
१० स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नम
११ श्रोत्रेन्द्रिय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नम
१२ चक्षुरिन्द्रय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नम
१३ घ्राणेन्द्रिय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नम.

१४ रसनेन्द्रिय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१५ स्पर्शनेन्द्रिय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१६ मन इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१७ श्रोत्रन्द्रियापाय सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१६ घ्राणेन्द्रियापाय सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
२० रसनेन्द्रियापाय सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
२१ स्पर्शनेन्द्रियापाय सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
२२ मनोउपाय सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
२३ श्रोत्रेन्द्रिय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२४ चक्षुरिन्द्रय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२५ घ्राणेन्द्रिय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२६ रसनेन्द्रिय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२७ स्पर्शनेन्द्रिय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२८ मनो धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२९ अक्षरश्रुत ज्ञानाय नमः
३० अनक्षरश्रुत ज्ञानाय नमः
३१ संज्ञिश्रुत ज्ञानाय नमः
३२ असंज्ञि श्रुतज्ञानाय नमः
३३ सम्यक्श्रुत ज्ञानाय नमः
३४ मिथ्यात्वश्रुत ज्ञानाय नमः
३५ सादिश्रुत ज्ञानाय नमः

३६ अनादिश्रुत ज्ञानाय नम
३७ सपर्यव सितश्रुत ज्ञानाय नम
३८ अपर्यव सितश्रुत ज्ञानाय नम
३९ गमिकश्रुन ज्ञानाय नम.
४० अगमिकश्रुत ज्ञानाय नम
४१ अङ्गप्रविष्टश्रुत ज्ञानाय नम
४२ अनङ्गप्रविष्ट श्रुत ज्ञानाय नम -
४२ आनुगामिक अवधि ज्ञानाय नम
४३ अनानुगामिक अवधि ज्ञानाय नम
४५ वर्धमान अवधि ज्ञानाय नम
४६ हीयमान अवधि ज्ञानाय नम
४७ प्रतिपाति अवधि ज्ञानाय नम
४८ अप्रतिपाति अवधि ज्ञानाय नम
४९ ऋजुमति मन पर्यव ज्ञानाय नम
५० विपुलमति मन पर्यव ज्ञानाय नम
५१ लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञानाय नम

उपरोक्त खमासमण देकर ५१ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

जगत में ज्ञान के विना अनादि काल की (अज्ञानता) भूल नही मिटती । देवत्व की भूल (अज्ञान)—

अज्ञानता के वस कुदेव को देवतुल्य मानते हैं जैसे कि राग द्वेष से भरे भुवनपति प्रभृति देवों को हो साधारणजन मुक्ति दायक मानते है। किन्तु विचारने की वात है कि जो देव स्वयं मुक्ति नही पाता वह दूसरो को मुक्ति कैसे दे सकेगा इसलिये जो मुक्ति को प्राप्त है और जो काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेष, मोह, अज्ञान रहित है, वे हो आराधनीय देव है। भुवनपति प्रभृति देवों में काम, क्रोधादिक दोष भरे है इसलिये इनकी मुक्ति कहां से हो सकती है। देव वह है जो अठारह दोष को नाश करे और अठारह गुण को प्रगट करे। अनन्त गुणों का आकर राग द्वेष अज्ञान से रहित यथार्थवादी चौसठ इन्द्रो द्वारा पूज्य हो, वह देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा मुक्तिदायक देव है। ऐसी भूल (अज्ञानता) सम्यग् ज्ञान के विना नही मिट सकती। यह देवतत्व की भूल हुई ॥ १ ॥ गुरुतत्व भूल दिखाते है—जो सकल जीव को हित ग्रहण करावे, शुद्ध मार्ग दिखलावे, शुद्ध प्रवृत्ति का आदर करावे, निराम्भवृत्ति से वर्ते, कंचन कामिनि के त्यागी, पादचारो, लकड़ो की नौका के समान अपनी तरह दूसरों को भो तारे वह गुरू कहलाने योग्य है। कुगुरू जो हृष्ट पुष्ट, मस्त, विषय कषाय से आसक्त है और अठारह पापस्थान का सेवन करनेवाला, कंचन कामिनि का भोगी, पाप स्थान का उपदेश करनेवाला, पौद्गलिक स्वार्थ की वात बनानेवाला, लोह नाव के समान अपने डूबते हुए दूसरों को भी भव समुद्र में डुबोने वाला गुरू है वह कुगुरु है। ऐसों को गुरु

मानना भल है जो सम्यग् ज्ञान विना नही मिट सकती ॥ २ ॥ धम की भी भूल (धर्मतत्व) दुगति में पडते प्राणो को धारक, सपूर्ण जगत के जोवा को हितकारक, जीवदया मूल वस्तु स्वभाव का निरूपक जो होवे वह धम है, न कि मद्यपान, मांसभक्षण, पर स्त्री सेवन, पशु वध, (हिसा) कन्द-मूल प्रभृति अनन्तकाय भक्षण, ससार तरु का बीजरूप शादो, (कन्यादान) यज्ञ इत्यादि अशुद्ध क्रिया अधम है । इसको धर्म मानना बडो भूल है । यह भ्ल सम्यग् ज्ञान के विना नही मिटती । तथा करणीय अकरणीय की भूल—जिससे अज्ञानो प्राणी आगमोक्त निर्जरा के कारण जन्म मरण मिटाने के समय को करणोय कहते ह । और जो ससार वृद्धि का पुष्ट हेतु आश्रव हैं उसको अकरणीय कहते हैं । यह भल भो सम्यग् ज्ञान के विना नहीं मिट सकती । गुण की भूल—जा आत्मिक भाव का निवारण कारक और शेष आवरणी कर्म के निजरा का कारण हो वह गुण है किन्तु अज्ञानी मनुष्य कम का मुख्य हेतु शस्त्र चलाना वगैरह भूतादि दमन, रसग्रन्थ का पठन, विविध मन्त्रादि का चमत्कार दिखाना, विविध प्रकार का अवसरोचित ससारानुवन्धि वचन रचना करना, हाथी, घोडा, व्याघ्र प्रमुख का दमन करना, विविध औषध से रोगादि का दमन करना, अनेक प्रकार से राजा को प्रसन्न करना, अनेक प्रकार का स्वाङ्ग बनाना, अदृश्य पदार्थो को देखना, इत्यादि कलावालो को भी गुणी कहते ह यह बडो भूल है और वह सम्यग् ज्ञान के विना नही मिटती । जो अपने को कुमार्ग से छुडावे,

आठवें ज्ञान पद के आराधन पर जयन्तदेव की कथा

कौशाम्बी नगरी में महाप्रतापी जयन्तदेव राजा राज्य करता था। वह एक दिन रानियों के साथ उद्यान मे क्रीड़ा करने गया। नाना प्रकार की क्रीड़ा कर राजा हाथी पर सवार हो वापिस नगर लौट रहा था तब रास्ते मे उसने सुवर्ण कमल पर विराजमान सुरासुरसेवित केवलज्ञान भास्कर यशोदेव मुनि महाराज को धर्मदेशना देते देखा। वह हाथी से उतर विनयपूर्वक वन्दना कर गुरू सन्मुख दृष्टि रख अमृतमय देशना सुनने को बैठ गया। गुरू ने निम्न प्रकार कहना शुरू किया—

'हे भव्यजनो ! दुःख से प्राप्त होनेवाले इस मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और निरोगी काया को पाकर ज्ञान की तरफ ध्यान लगाओ। ज्ञान से निरतिचार संयम पाला जा सकता है, आत्मा निरन्तर पवित्र होती है। इससे अस्थिरपन स्थिर होता है और अनन्त अव्याबाध मोक्ष प्राप्त होता है। जो ज्ञानवान होता है उसका इस लोक मे भी आदर होता है और अज्ञानी तो आंखो के होते हुए भी अन्धा ही होता है क्योकि वह करने और नही करने योग्य काम को नही जानने से और कर्मो मे लिप्त होने से चौरासी लाख योनियों मे भ्रमण करता है जिसमे जन्म मरण के भयंकर दुःख भोगता है। ऐसा समझ हे भव्यात्माओ तुम ज्ञान की आराधना करने का प्रयत्न करो।'

यह सुनकर राजा खडा हो हाथ जोड बोला 'हे प्रभु मैं ज्ञानी हू या अज्ञानी ?

गुरु ने कहा हे नरेन्द्र तू तो क्या प्राय देव भी अज्ञानी होते है क्योकि जो मृत्यु पाए हुओ को, मृत्यु होने वालो की और बुढापा एवम् व्याधि से दु ख पानेवालो की देह को देख दु खी नही होते उनको ज्ञानी कैसे कहा जाय ? विषय कषाय वगैरह अगर ज्ञानी में हो तो फिर ज्ञानी और अज्ञानी में क्या फर्क ?

इस प्रकार गुरु के वचन सुन राजा वैराग्य भावना लेकर राजमहल में गया। राजकुमार जयवम को राज्यारुढ कर राजा ने उत्साहपूर्वक गुरू के पास चारित्र लिया। पीछे निरतिचार से चारित्र का पालन, कठिन तपश्चर्या, पारणे पर निरस भोजन, गुरू सेवा आदि करते हुए धीरे २ ग्यारह अङ्ग का अर्थ सहित अध्ययन किया।

एक वार मोहनीय कर्म के उदय से मुनि शातागारव में लुब्ध हुवा जिससे चारित्र में शिथिलता और अस्थिरता आई। इस तरह शिथिल होते देख गुरू ने कहा हे मुनि प्रमाद का त्याग करो, क्योकि चौदह पूर्वधर श्रुत केवली मन पर्यव ज्ञान को धारण करनेवाले महामुनि भी प्रमाद के वश होने से ससार की चारो गतिणो में भ्रमण करते हैं। ऐसा समझ प्रमाद को दूर करो। यह सुन गुरु के उपदेश से तुरन्त प्रमाद का त्याग किया। इसीलिए कहा है कि —

एक २ आत्मप्रदेश में अनन्त कर्मवर्गणी, एक २ वर्गणी में अनन्त परमाणु और एक २ परमाणु में अनन्त गुण पर्याय श्री जिनेश्वर ने बताये हैं। इस प्रकार निगोद का स्वरूप सुन इन्द्र प्रसन्न हो तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार कर मुनि के गुरु के पास गया और विनयसहित नमस्कार कर पूछा हे गुरु! जयन्त को ज्ञानोपयोग से क्या फल मिलेगा। गुरु ने कहा देवेन्द्र! यह मुनि तीर्थङ्कर पद प्राप्त करेगा। यह सुन देवेन्द्र हर्ष पूर्वक पुनः प्रणाम कर अपने स्थान पर गया। जयन्त मुनि ज्ञानोपयोग से निर्मल चारित्र का पालन कर महाशुक्र देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां से चव कर महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

✦✦✦

नवम् दर्शन पद आराधन विधि

"ॐ नमो दसणस्स" इस पद की २० माला गिने ।-

' सम्यकत्व के ६७ भेद होने से नीचे लिखे ६७ खमासमण देना । प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहना ।

दोहा

लोकालोकना भाव जे, केवली भाषित जेह ।
सत्यकरो अवधार तो, नमो नमो दर्शन तेह ॥

१ तत्त्वश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नम
२ बहुमानादररूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नम
३ कुलिंगि सगवर्जन सम्यग्दर्शन गुणधराय नम
४ मिथ्यादर्शनि ससग वर्जनरूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नम
५ जिनागम श्रवण परम इच्छारूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नम
६ धर्मकरणे तीव्रइच्छारूपश्रीसम्यग्दर्शन गुणधराय नम
७ वैयावृत्यकरणतत्पररूपश्रीसम्यग्दर्शनगुणधराय नम
८ श्री अरिहृत विनयकरण रूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नम
९ श्रीसिद्धविनयकरणरूपश्रीसम्यग्दर्शनगुणधराय नम
१० जिनप्रतिमाविनयकरणरूप श्रीसम्यग्दर्शनगुणधरायनम

४५ अन्यदर्शनिगृहित जिनप्रतिमा नमन त्याग रूप
सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

४६ मिथ्यादर्शनिसह संलाप त्याग रूप सम्यग्दर्शन
गुणधरायनमः

४७ मिथ्यादर्शनिसह आलाप त्याग रूप सम्यग्दर्शन
गुणधराय नमः

४८ मिथ्यादर्शनिनां आहारदान त्याग रूप सम्यग्दर्शन
गुणधराय नमः

४९ मिथ्यादर्शनिनां वारंवार आहारादिदान त्यागरूप
सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

५० रायाभियोगेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधरायनमः

५१ बलाभियोगेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

५२ गणाभियोगेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

५३ देवाभियोगेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

५४ गुरुनिग्गहेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

५५ वित्तिकांतारेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

५६ धर्मरूप वृक्षस्य मूलभूत सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

५७ मोक्षरूप नगरस्य द्वारभूत सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

५८ धर्मरूप वाहनस्य पीठभूत सम्यग्दर्शन गुणधरायनमः

५९ विनयादि गुणस्य आधार भूत सम्यग्दर्शन गुण-
धराय नमः

६० धर्मरूप अमृतस्य पात्रभूत सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६१ रत्नत्रयिणा निधानभूत सम्यग्दर्शन गुणधराय नम
६२ अस्ति आत्मा इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नम
६३ नित्यानित्य आत्मा इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६४ जीवकर्मणः कर्त्ता इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६५ जीव कर्मणो भोक्ता इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६६ अस्ति जीवस्य मोक्ष इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नम
६७ मोक्षस्य अस्ति उपायः इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

उक्त खमासमण देकर ६७ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे ।

स्तुति

जगत् में सब साधक जीवो को अपने साध्य के सिद्ध करने मे श्री दर्शन गुण ही उपकारी है । सम्यक् दर्शन बिना कोई भी साधन सिद्धिदायक नही है । सार्द्ध नवपूर्व पयत श्रुतपाठी हो लेकिन दर्शन न हो तो वह अज्ञानी है और सामान्य नवकार आवश्यक मात्र श्रुतधारी को यदि दशन

नवमें दर्शन पद आराधन पर हरिविक्रम राजा की कथा

भरत क्षेत्र मे हस्तिनापुर नगर था। वहां जिनाज्ञा का पालन करने वाला व न्यायी हरिषेण राजा राज्य करता था। उसके शीलवान व स्वरूपवान रानी थी। उसके हरिविक्रम नाम का गुणवान पुत्र था। यौवनावस्था मे पहुंचने पर राजा ने उसका छत्तीस राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया। वह उनके साथ सुख भोगता हुआ दिन व्यतीत करने लगा।

दुर्भाग्यवश पूर्व पापोदय से कुमार के शरीर में एक ही साथ आठ प्रकार का कोढ़ उत्पन्न हो गया। उसकी तीव्र वेदना से कुमार व्याकुल होने लगा। उसकी बत्तीसों स्त्रियां उसको देख अत्यन्त दु:ख से रोने लगी। अनेक चतुर वैद्यों की औषधि देने पर भी कुमार का रोग जरा भी शांत नही हुआ। उस नगर में धनंजय यक्ष की काफी प्रसिद्धि थी इसलिए उसने मन में कहा कि हे दीनवत्सल धनंजय देव! आपकी जगत् मे बड़ी महिमा है, इसलिए मेरा निवेदन है कि यदि मेरा रोग दूर हो जायगा तो मै तुम्हारी यात्रा करके पीछे मुह में अन्न डालूंगा और आपकी भली प्रकार पूजा तथा उत्सव कर आपके भोग लगाऊंगा। इस तरह व्याधि से पीड़ित राजकुमार ने पुण्य पाप का विचार किये बिना मिथ्यात्व को ग्रहण किया।

उसी समय नगर के उद्यान में परम उपकारी केवल ज्ञान रूपी सूय से जगत् को प्रकाश करनेवाले केवली मुनि पधारे। देवकृत सुवर्ण कमल पर आरूढ हो केवली भगवान समस्त जीवो को देशना देने लगे। हरिषेण राजा को खबर होते ही वह भो बडे उत्साह से अपने पुत्र को लेकर वहा आया। केवली गुरू के दशन करते ही कुमार की सर्व व्याधि इस तरह दूर हो गई जिस तरह सिंह को देखकर हिरण भाग जाता है। कुमार ने हप पूर्वक गुरू को प्रणाम किया और अपने उचित स्थान पर बैठ गया। पीछे गुरू महाराज ने देशना आरम्भ की—

'हे भव्यजनो! दुःख से भरपूर इस संसार समुद्र म घुमाने वाले पाप कर्मों से दूर रहो क्योंकि जैसे कर्म इस भव म करते है वैसे ही पर भव में उदय आते है। जिस समय जैसे परिणाम से कर्म किया हो वैसा फल वह देता है। पाप कम से अनेक प्रकार की तीव्र व्याधि और दुःख सहने पड़ते है। ऐसा समझकर पापकर्म से विरक्त हो दान, दया, संयम और जिन सेवा रूपी सत्कर्म करना चाहिये।'

उस समय राजकुमार हरिषेण हाथ जोड विनय सहित बोला हे प्रभु! मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौनसा महापाप किया था जिससे इस युवावस्था में असह्य वेदना मुझे उठानी पडी।

गुरू ने कहा हे कुमार! तेरा पूर्व भव सुन! पूर्व महाविदेह में श्रीपुर नगर में समस्त अधर्मों का अधिपति पद्म राजा था। वह निरन्तर शिकार करने जाता और

कुमार ! अपनी की हुई मान्यता के अनुसार मुझे पाड़े का भोग लगा नही तो मैं तुझे मार डालूंगा।

कुमार ने बड़े धैर्य से कहा हे यक्ष ! सब जीवों को अपना जीव प्यारा है। कोई भी मरना नही चाहता। जैसे अपने को जीने की इच्छा होती है वैसे दूसरे जीवों को भी होती है। इसलिये मै तो कभी भी जीव हिंसा करके तुझे तृप्त करने को तैयार नही। तेरे देवत्व और ऐश्वर्य को भी धिक्कार है कि तू दुर्गति को देनेवाली महादुःख के हेतु रूप हिंसा करने व करवाने मे स्नेह करता है। उसी को धन्य है और वही गुणगान के योग्य है जिनका हृदय करुणा पूर्ण है। तू मेरे से भोग मांगता है यह भी मिथ्या है क्योंकि मेरी व्याधि तो गुरू के दिव्य दर्शन से नष्ट हुई है न कि तेरे से।

कुमार के ऐसे वचन सुन यक्ष ने अतिशय क्रोधित हो कुमार पर जोर से मुगदर का प्रहार किया जिससे कुमार मूर्छित हो जमीन पर गिर पड़ा। थोड़ी देर में शीतल पवन से चैतन्य हो होश मे आया। फिर यक्ष दयापूर्ण हृदय से, विस्मित हो बोला हे कुमार ! मै तेरे धैर्य से खुश हुआ हू। अब मुझे पाडे के मांस की इच्छा नहीं है परन्तु सिर्फ मुझे नमस्कार कर अपने घर जा नही तो तेरा नाश कर दूंगा।

कुमार ने कहा हे यक्ष ! जो देव हिसा करने व कराने में योग देता है ऐसे मिथ्यादृष्टि देव को कभी नमस्कार नही करूंगा। यह मस्तक तो सब दोषों से रहित वीतराग

परमात्मा के सिवाय किसी के सामने नहीं झुकेगा। जिसने अमृत का स्वाद लिया है उसकी खारे नमक पर कैसे रुचि हो सकती है? परन्तु जो तू दया धर्म को ग्रहण कर वीतराग की आज्ञा का पालन करे तो तुझे स्वधर्मी समझ तेरी बड़े आदर से सेवा कर सकता हू।

हरिविक्रम कुमार के ऐसे वचन सुन यक्ष को परम शांति मिली और जीव हिंसा का त्याग कर मिथ्यात्वरहित हो सम्यगदृष्टि बना। इस तरह सम्यगदर्शन के प्रभाव से शत्रु भी मित्र बन अनुचर की तरह उसकी सहायता करने लगा। पीछे कुमार राजा हुआ और अपने पराक्रम से अनेक राज्यों को जीत अपने आधीन किये और न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। उस समय कलिङ्ग देश का यमराज समान क्रूर और महापराक्रमी यमराज राजा ने अपने भुजबल के अभिमान से हरिविक्रम राजा की आज्ञा की अवहेलना की। जिससे हरिविक्रम ने बड़ी सेना लेकर कलिङ्ग देश पर आक्रमण किया और कहलाया कि आज से मेरी आज्ञा का पालन कर नहीं तो युद्ध करने को तैयार हो जा। यह सदेशा सुन यमराज क्रोधित हो अपनी सेना ले उसके सामने आया। दानो ओर के सैनिक वीरता से लड़ने लगे। देखते २ दोनों सेनायें एकमेक हो गई और भयङ्कर मारकाट होने लगी, रुधिर की नदी बहने लगी। अनेक सैनिकों के धड़ और मस्तक गिरने लगे। उस समय धनजय यक्ष हरिविक्रम की मदद करने को आ पहुँचा। देव के प्रभाव से हरिविक्रम के

सैनिको में अतुल पराक्रम पैदा हो गया जिससे शत्रु की सेना हारने लगी, और दसो दिसाओं में भागने लगी। यह दशा देख यमराज भी भाग गया। अब हरिविक्रम ने उसके देश को अपने आधीन किया। वहां से विजय प्राप्त कर अपनी राजधानी मे आकर दूपण रहित निश्चल समकित का पालन करने लगा। पीछे एक अतिशय रमणीय जिन चैत्य बनवाकर उसमें चन्द्रकांतमणि की श्रीऋषभदेव स्वामी की मनोहर प्रतिमा स्थापित कर खूब द्रव्य व्यय कर सिद्धाचल आदि तीर्थो की भाव पूर्वक यात्रा कर समकित निर्मल किया।

एक दिन राजा एकान्त मे बैठ विचारने लगा कि अरे! अनेक पापयुक्त आरम्भ समारम्भ वाले राजसुख को बहुत समय तक भोगा परन्तु फिर भी आत्मा तृप्त नहीं हुई बल्कि विशेष तृष्णावत हो दुर्गति की भागी बनी है। इसलिए अब मुझे ऐसा काम करना चाहिये जिससे आत्मा को परम शान्ति और तृप्ति मिले। ऐसी शांति और तृप्ति तो सब जीवों के निष्काम बन्धु, सन्मार्ग का उपदेश करने वाले सद्गुरु के पास पंचमहाव्रत ग्रहण करने पर ही प्राप्त हो सकती है। राजा इस प्रकार के विचार करता है इतने में नगर बाहर उद्यान में अनेक साधुओं सहित चन्द्रमुनि महाराज पधारे। यह खबर मिलते ही हर्ष पूर्वक गुरू की वंदना करने आया। विनय भक्ति सहित गुरू को वदना कर उचित स्थान पर बैठा। इतने मे गुरू महाराज ने संसाररूप व्याधि का नाश करने वाली धर्म देशना शुरू की—

'हे भव्यजनो ! इस अनादि अनन्त ससार की चारो गति में यह जीव अनन्त वार जन्म व मर कर अनन्त दुख भोग चुका है। नरक गति में अतिशय आरम्भ और परिग्रह के वश से छेदन, भेदन, ताडन वगैरह असह्य दुख सहने पडते है। तियन्च गति में परवशता से क्षुधा, तृषा, आदि अनेक प्रकार के दुखो का अनुभव करना पडता है। यह मनुष्य जन्म बडो मुश्किल से प्राप्त होता है। यदि यह प्राप्त भी हो जाय तो उत्तम कुल और जिनोदित धर्म मिलना कठिन है। कदाचित पूव पुण्य से यह प्राप्त भी हो जाय तो आगम श्रवण और उन पर श्रद्धा होना कठिन है, क्योकि धमरूपी धन को चुरान वाले तेरह काठिये निशाचर की तरह निरन्तर प्राणियो के धमरूपी धन को लूट लेते ह। इसलिये अधर्मी प्राणी ससार मे भ्रमणकर अनेक प्रकार की व्यथा का अनुभव करता है। शुभ कमवशात् यह जीव मनुष्य और देवगति के उत्तम प्रकार के सुखो को प्राप्त कर उसी में फम सच्चा सुख मान लेता है यह उसकी अज्ञानता है क्योकि ऐसे पौद्गलिक सुख तो यह जीव अनन्तवार भोग चुका है, फिर भी उसे तृप्ति नही हुई क्योकि कल्पित सुख में वास्तविक सुख हो भी नही सकता और वास्तविक सुख विना आत्मा की तृप्ति के हो नही सकता। एसो तृप्ति तो सब आशा तृष्णा का त्याग कर समतारस म लीन होने पर ही होती है। इसलिये समस्त ममता का त्याग कर समभाव मे चित्त लगाओ।'

इस प्रकार गुरू की देशना सुन वैराग्य पूर्ण हृदय से राजा

ने हाथ जोड़कर पूछा—हे प्रभु ! मै इस संसार से भयभीत हो आपकी शरण ले व्रत ग्रहण करना चाहता हू । गुरु ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा । गुरु को वदन कर राजमहल में जा अपने पुत्र विक्रमसेन को राजसिंहासन दे सब की आज्ञा लेकर महोत्सवपूर्वक संसाररूपी समुद्र को पार करनेवाली दीक्षा ग्रहण की । पीछे निरतिचार से दूषण रहित चारित्र का पालन करते हुए बारह अङ्ग का अध्ययन किया ।

एक दिन गुरु से बीसस्थानक तप की महिमा सुनी । उसमें नवमे दर्शन पद की महिमा सुन उस पद की आराधना का नियम लिया और निरन्तर शंका रहित अष्टाचार युक्त दृढ़ चित्त से शुद्ध सम्यक्त्व का पालन करने लगा ।

एक बार गुरु के साथ हरिविक्रम मुनि श्रीपुर नगर मे पधारे । उस समय भरतक्षेत्राधिपति देवसभा मे राजर्षि हरिविक्रम मुनि के गुणों की प्रशसा करने लगे । उस समय एक देव शंकित हो उनकी परीक्षा लेने श्रीपुर नगर में समृद्धिशाली सार्थवाह बन देवमाया से सुन्दर महल बनाकर रहने लगा ।

एक बार हरिविक्रम मुनि इर्यापथिकी ढूंढते गोचरी के लिये उस सार्थवाह के यहां आकर धर्मलाभ दे खड़े रहे । मुनि को देख सार्थवाह आदरपूर्वक प्रणामकर मधुर वचन से बोला हे मुनिपति ! व्यर्थ कष्ट देनेवाली आर्हत् दीक्षा का त्याग कर इस मेरी देवांगना समान पुत्री का पाणिग्रहण करो । घर २ भटक भिक्षा मांग उदरपूर्ति करने से तो दिव्य वैभव भोग

कर मनुष्य जन्म सफल करो। इसके सिवा कष्ट ज्यादा और फल कम देनेवाले आर्हत् धर्म का त्याग कर थोड़ा कष्ट और विशेष फल देनेवाले बौद्ध धर्म को ग्रहण करो। इस प्रकार बहुत लालच देने पर भी मुनि जरा भी विचलित नहीं हुए। तब देव ने अपनी माया को समेट प्रगट हो मुनि को प्रणाम कर कहने लगा। हे महाभाग! आपको धन्य है। क्योंकि मैंने अनेक प्रकार से आपको विचलित करने का प्रयत्न किया परन्तु आपकी आर्हत धर्म पर ऐसी दृढ श्रद्धा देख मैं अत्यन्त हर्षित हुआ हूं। इस प्रकार मुनि की स्तवना कर देव अपने स्थान पर गया।

हरिविक्रम मुनि ने निश्चल समकित पालन कर जिन नाम कर्म का बन्ध किया। यहां से काल धर्म पा विजय विमान में बत्तीस सागरोपम आयुष्यवाले देव हुए। वहां से चव पूर्व विदेह में तीर्थंकर पदवी प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

२१ शुद्धागमोक्त क्रियाकारकस्य अनाशातना रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२२ शुद्धागमोक्त क्रियाकारकस्य भक्ति करण रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२३ शुद्धागमोक्त क्रियाकारकस्य बहुमान करण रूप
विनयगुण प्राप्तेभ्यो नमः

२४ शुद्धागमोक्त क्रियाकारकस्य स्तुतिकरण रूप
विनयगुण प्राप्तेभ्यो नमः

२५ श्रीजिनोक्त धर्मस्य अनाशातना रूप विनयगुण
प्राप्तेभ्यो नमः

२६ श्री जिनोक्त धर्मस्य भक्तिकरण निपुण रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२७ श्री जिनोक्त धर्मस्य बहुमान करण रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२८ श्री जिनोक्त धर्मस्य स्तुति करण रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२९ ज्ञानगुण-प्राप्तस्य अनाशातना रूप विनयगुण
प्राप्तेभ्यो नमः

३० ज्ञानगुण-प्राप्तस्य भक्तिकरणरूप विनयगुण
प्राप्तेभ्यो नमः

३१ ज्ञानगुण-प्राप्तस्य बहुमान करणरूप विनयगुण
प्राप्तेभ्यो नमः

३२ ज्ञानगुण-प्राप्तस्य स्तुति करण रूप विनयगुण प्राप्तेभ्यो नम.
३३ ज्ञानस्य अनाशातना रूप विनयगुण प्राप्तेभ्यो नम
३४ ज्ञानस्य भक्तिकरण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
३५ ज्ञानस्य बहुमान करणरूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम.
३६ ज्ञानस्य स्तुति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
३७ श्री मदाचार्यस्य अनाशातना रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम
३८ श्री मदाचार्यस्य भक्ति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम
३९ श्रीमदाचार्यस्य बहुमान करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम
४० श्री मदाचार्यस्य स्तुति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम
४१ स्थविर मुनिनां अनाशातना रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम
४२ स्थविर मुनिना भक्तिकरण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम
४३ स्थविर मुनिना बहुमान करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम
४४ स्थविर मुनिना स्तुति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम

४५ श्री मदुपाध्यायस्य अनाशातना रूप विनयकरण
प्राप्तेभ्यो नमः

४६ श्री मदुपाध्यायस्य भक्ति करणरूप विनयकरण
प्राप्तेभ्यो नमः

४७ श्री मदुपाध्यायस्य बहुमान करण विनयकरण प्राप्तेभ्यो
नमः

४८ श्री मदुपाध्यायस्य स्तुति करण रूप विनयकरण
प्राप्तेभ्यो नमः

४९ श्री गणावच्छेदकस्य अनाशातना रूप
विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः

५० श्रीगणावच्छेदकस्य भक्ति करण रूप विनयकरण
प्राप्तेभ्यो नमः

५१ श्रीगणावच्छेदकस्य बहुमान करण रूप विनयकरण
प्राप्तेभ्यो नमः

५२ श्रीगणावच्छेदकस्य स्तुति करण रूप विनयकरण
प्राप्तेभ्यो नमः

उक्त खमासमण देकर ५२ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

विनय से अष्टविधकर्म का नाश होता है क्योकि जिनागम मे कहा है कि सर्व धर्म का मूल विनय है, और विनय का फल सुश्रुषा, सुश्रुषा का फल श्रमण और श्रमण का

फल ज्ञान, ज्ञान का फल विरति, विरति का फल आश्रव, आश्रव का फल सवर, सवर का फल तप है, तप का फल निर्जरा, उसका फल क्रिया निवृत्ति, उसका फल अयोगित्व, अयोगीपने का फल भवसततिक्षय, भवसततिक्षय का फल मुक्ति है। इसलिये सर्व कल्याण का भाजन विनय है। जैसे वृक्ष का मूल दृढ सरस होने से स्कन्ध, शाखा, प्रशाखा, दल, पुष्प, फल प्रमुख सब सुलभ होता है वैसे ही विनय गुणवाला पृच्छक प्राणी श्रुत शील के तत्व को प्राप्त होता है, पाप का नाश करता है और सिद्ध को प्राप्त होता है। जैसे सुवर्ण में नरमी बहुत है, नमाने से नम जाता है कालिमा नही है, अग्नि में तपाने से अधिक उज्वल होता है, इसीसे सातो धातु में सुवर्ण अधिक श्रेष्ठ कहा जाता है और पवित्र माना जाता है वैसे ही विनय सब गुणो में श्रेष्ठ है। विनय-गुणसपन्न प्राणी मान, जय, मृदुता को प्राप्त करता है। मिथ्यात्व के कठिन हट का परित्याग करता है, कृष्णलेश्या-रूप कालिमा नही रहती और सबसे अधिक माननीय होता है। इससे मोक्षार्थी प्राणी को विनय बिना किसी गुण की प्राप्ति नही होती। विनय गुण लौकिक लोकोत्तर भेद से दो प्रकार का है। लौकिक विनय से इहलोक में सब सानुकूल रहता है और यश कीर्ति होती है, सज्जन कहलाता है। लोकोत्तर विनय से प्राणी इहलोक परलोक में परम सुख को प्राप्त करता है, और इहलोक में विराधक भाव में साधकता को प्राप्त होता है, श्री सघ में प्रसशनीय

आचार्य उपाध्यायादि पदवी को पाता है, श्रीसंघ में मुख्य होता है, चतुर्विधि संघ का मान्य पूज्य होता है, परभव में सकल कर्म का नाश करता है, आदि सब तरह कल्याण का अनुभव करता है। इसलिए अरिहन्तादि १३ पद का विनय करना हमारा परम साधन है, हमारा मनोरथ वृक्ष का अवन्ध्यवीज है। मेरे को जन्म जन्म मे अरिहन्तपद का विनय प्राप्त हो यही हमारी आन्तरिक प्रार्थना है। इस प्रकार से स्तुति करके विनयपद के उद्यापन मे २३ पद की अनाशातना सम्यक्त्व है अतः यथाशक्ति अरिहन्त की पूजा करे, मन्दिर वनवावे, मन्दिर का जीर्णोद्धार करावे, वासन मांजे, विनय पूर्वक उत्तम द्रव्य से प्रतिमाजी को साफ करे, पुस्तक लिखावे, पहले की लिखी पुस्तकों का संरक्षण करे-करावे, पढ़े-पढ़ावे, आवश्यकादि क्रिया विधि वहुमान से करे, क्रिया का फल औरों से कहे, दूसरों को क्रिया सिखलावे, स्थविर साधु को विनय से, औषध प्रमुख का निमन्त्रण करे, प्रशंसा करे, वहुमान विनय से सघभक्ति, स्वामिवात्सल्य करें। इस प्रकार दशम पद का आराधन करे ॥

इस पद का ध्यान उज्ज्वज वर्ण से करे। इस पद की आराधना से धन सेठ तोर्थङ्कर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

✦✦✦

दसवें विनय पद पर धन सेठ की कथा

भरतक्षेत्र में मृतिकावती नगरी थी। वहा महान् प्रतापी यशस्वी जितारी राजा राज्य करता था। वह अपनी प्रजा का पालन पुत्रवत् करता था। उसी नगर में श्राद्धगुणो से विभूषित निमल समकितधारी सुदत्त सेठ रहता था। उसके धन और घरण दो पुत्र थे। इन दोनो में धन ने अपने उत्तम गुणो के कारण यश प्राप्त किया और घरण निर्दयी, क्रूर और इर्षालु होने से सब जगह उसकी अपकीर्ति हुई।

जब धन का यश अधिक फैलने लगा तो इर्षालु घरण अपने ज्येष्ठ बधु धन को मार डालने का उपाय सोचने लगा। परन्तु किसी तरह उसे अवसर नही मिला। तब एक दिन धन के पास जाकर कहने लगा कि हे भाई अब हम वडे हो गये है इसलिए कोई उद्यम कर द्रव्य प्राप्त करना चाहिये। अभी तक पिता के द्रव्य से ही सुख भोग रहे है परन्तु स्वपरिश्रम से पैदा किए धन से सुख भोगना ही उत्तम होता है। इसलिए परदेश जाकर कर भाग्य की परीक्षा करना चाहिये।

इस प्रकार घरण के कहने और उसकी कुटिलता को नही समझने से धनदेव माता-पिता की आज्ञा ले भाई के साथ परदेश रवाना हुआ। मार्ग में चलते २ घरण ने धनदव से कहा कि हे भाई! ससार में सुख धर्म से होता है या पाप से।

धनदेव ने कहा भाई सुख धर्म से ही होता है और सुख का कारण रूप धर्म का महत्व बताने मे कौन समर्थ है। धर्म इच्छित अर्थ और भोग देनेवाला है तथा अन्त में स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है।

धरण ने कहा—भाई ! तेरा कहना झूठा है क्योंकि लोग अधर्म से सुखी होते है यह बात प्रत्यक्ष है। इस प्रकार विवाद करते हुए दोनो भाइयों ने यह शर्त की कि हम दोनों की बात किसी से पूछने पर जिसकी बात सच बतावे वह दूसरे की आंख निकाल ले। यह शर्त कर एक गांव में जाकर किसी अज्ञानी आदमी से पूछा कि प्राणियों को जो सुख होता है वह धर्म से होता है या अधर्म से। अज्ञानी ने उत्तर दिया कि अधर्म से सुख होता है। धर्म तो केवल भोले लोगों को ठगने के लिए प्रपंच मात्र है। इस प्रकार धनदेव शर्त हार गया। इसलिए पापात्मा धरण ने निर्दयता से उसकी दोनों आंखें निकाल ली। पीछे दोनों वहां से चले। रास्ते में एक भयंकर जंगल आया वहां धनदेव को छोड़ धरण चुपचाप घर आया और माता-पिता को रुदन करते हुए कहने लगा कि हम दोनों भाई रास्ते में जङ्गल आने से वहां विश्राम करने को ठहरे वहां एक विकराल बाघ ने आकर धन का भक्षण कर लिया और मै भय से वापिस यहां चला आया।

इस तरह धरण के मुंह से धनदेव की मृत्यु की बात सुन माता-पिता और धनदेव की स्त्री हृदय विदारक विलाप करने लगे। पुत्र मोह से माता मूर्छित हो गई। धनदेव की

स्त्री भी इस प्रकार विलाप करने लगी कि वज्र समान हृदय वाले मनुष्य का दिल भी पिघल जावे। इस तरह सब स्वजन धनदेव के वियोग से दुखी हुए। परन्तु दुष्ट धरण को तो प्रसन्नता ही हुई।

पुण्यात्मा धनदेव को जगल के वनदेवता ने पुण्यात्मा समझ उस पर प्रसन्न हो दिव्य अजन से उसके नेत्र निर्मल किए जिससे हर्षित हो धनदेव वनदेवता की स्तुति करने लगा। वनदेवता ने वह दिव्याजन उसको देकर कहा कि यह अजन किसी भी अधे की आख में लगाने से उसके नेत्र निर्मल हो जायेंगे। ऐसा कह वह देव अदृश्य हो गया। पीछे वहा से धनदेव सुभद्रपुर नगर में आया। वहा अरविन्द राजा की देवाङ्गना समान प्रभावती नाम की पुत्री पूव पाप कम के सयोग से मस्तक में व्याधि होने से दोनो नेत्रो से अन्धी हो गई थी। अनेक प्रकार की औषधिया करने पर भी उसके नेत्र ठीक नही हुए। तब राजा ने नगर म घोषणा की कि जो कोई पुरुष राजकुमारी की आखें ठीक करेगा उसे राजकुमारी सहित आधा राज्य दिया जावेगा। यह घोषणा सुन धनदेव राजा के पास आकर बोला कि मैं राजकुमारी के नेत्र ठीक कर दूगा। राजा ने कहा तो मैं घोषणा के अनुसार अपने वचन का पालन करूगा। पीछे धनदेव न दिव्य अजन से राजकुमारी के नत्र ठीक कर दिये। राजा ने हर्षित हो राजकुमारी के साथ उसका विवाह कर आधा राज्य कन्यादान में दिया। इस प्रकार धनदेव ने पुण्य व सत्य से राज्य प्राप्त

किया। वास्तव में पुण्यात्मा को पग-पग पर सम्पदा प्राप्त होती है।

धनदेव को राज्य मिला इसकी सूचना उसके माता-पिता वगैरह स्वजनों को मिली इसलिए धरण सिवाय सबको खुशी हुई और धरण खेद पूर्वक विचारने लगा कि मै तो उसे जङ्गल में नैत्र विहीन कर छोड़ आया था और उसे इतना बड़ा विशाल राज्य कैसे मिल गया ? अब पुनः किसी उपाय से उसका नाश करूं तभी मेरे मन को शान्ति होवे। ऐसा विचार कर नीच अपने पिता से कहने लगा कि हे तात! आपके पुण्य प्रताप से मेरा भाई जीवित रहा और इतनी विशाल ऋद्धि मिली अतः अब आप आज्ञा दे तो मै अपने प्रिय भाई से मिलने जाऊ। इस प्रकार पिता से आज्ञा ले भाई से मिलने के बहाने उसे मारने के लिये रवाना हुआ।

धीरे २ जिस नगरी मे उसका भाई धनदेव था वहां आया। धरण को देख धनदेव पहले की बात भूलकर आनन्द से खड़े हो स्नेह पूर्वक मिला और कुशलक्षेम पूछी। माता-पिता आदि कुटुम्बियों की कुशल पूछी। धरण ने कहा सब कुशल हैं। मेरे को तेरे बिना एक मिनिट भी चैन नही पड़ता इसलिए दुःखी रहता था। तेरी यहां सुख पूर्वक रहने की सूचना मिलते ही माता-पिता की आज्ञा ले मिलने आया हूं।

धन ने कहा भाई तेरे आने से मै आनन्दित हुआ हूं। अब यहां सुख से रह और आनन्द भोग। यह राज्य तेरा ही है

ऐसा समझ। इस तरह बडे स्नेह से धरण को रखा। राजा भी धरण को अपने जमाई का भाई होने से आदर करने लगा परन्तु वह नीच तो निरन्तर धनदेव को मारने का उपाय साचने लगा। परन्तु जिसका आयु बलवान है उसको कौन मार सकता है ?

एक दिन धरण राजा के पास जा एकान्त म कहने लगा कि हे महाराज आपने जिसको जमाई बनाया है वह हमारे गाव का रहनेवाला चान्डाल है।

धरण की बात सुन राजा को क्रोध आया और बोला कि ठीक है अब म इसका उपाय करूगा। ऐसा कह धरण को विदा किया और एकान्त मे बैठ विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिये। यदि खुलम खुल्ला मरवाता हू तो लोक में निन्दा होगी और पुत्री को भी दुख होगा। इसलिए किसी आदमी के द्वारा गुप्त रीति से मरवा डालना चाहिये। ऐसा विचार कर दूसरे दिन मध्यरात्रि को धनदेव को बुलाया और हत्या करनेवाले को कह दिया कि कह जब रास्ते में आवे तब उसे बिना कुछ पूछे मार डालना।

राजा के सकेत के अनुसार रात्रि को राजा का आदमी धनदेव को बुलाने आया। तब धरण ने कहा हे भाई तू यही रह म ही राजा के पास जाता हू। ऐसा कह धनदेव की आज्ञा ले धरण हर्ष पूर्वक राजा के पास जाने को निकला। मार्ग में हत्यारे ने बिना कुछ पूछे उसे मार डाला। मर कर वह सातवी नरक में गया। कहा है कि—

षड्भिमसैस्त्थापक्षैः षड्भिरेव दिने किलः ।
अत्युग्रपुन्यपापांना-मिहैव जायते फलं ॥ १ ॥

अर्थ—इस जगत में अति उग्र पुण्य पाप का फल छः माह तथा छः पक्ष या छः दिन में ही मिल जाता है ।

वाद में घनदेव को सारी हकीकत मालूम हुई इसलिए उसे संसार से वैराग्य हुआ और चारित्र लेने को तैयार हुआ। पीछे माता-पिता को वुला सवसे हर्ष पूर्वक मिल मलयकेतु पुत्र को पिता के सुपुर्द कर भुवनप्रभ मुनि के पास चारित्र लिया। धीरे २ सब अङ्ग उपाङ्ग पढ़ क्षाम्यादि गुणों से विभूषित हो गुरू के पास विनयपूर्वक रह ग्राम नगरादि में विचरने लगा ।

एक दिन धनदेव मुनि ने गुरू से देशना सुनी कि जो कोई सर्व गुणों में प्रधान विनय गुण से गुरूजनों को संतुष्ट करता है उसे शाश्वत सुख प्राप्त होता है, क्योंकि विनय से ज्ञान और ज्ञान से शुद्ध समकित की प्राप्ति होती है, उससे सम्यक् चारित्र, चारित्र से संवर, संवर से तपस्या, तपस्या से निर्जरा, निर्जरा से अष्ट कर्म का नाश, कर्मनाश से केवलज्ञान और उससे अनन्त अव्यावाध मोक्ष प्राप्त होता है ।

धनमुनि ने इस प्रकार गुरू से विनय की महिमा सुन गुरू आदि पंच परमेष्ठी का त्रिकरण शुद्धि से विनय करने का नियम लिया ।

एक बार गुरू महाराज के साथ विहार करते २ सांकेतपुर

नगर के उद्यान मे आये। वहा आदित्य चत्य मे त्रैलोक्य बन्धु श्री जिनेश्वर की प्रतिमा को वन्दन करने धनदेव गये। वहा विनयपूर्वक शुद्ध भाव से स्थिर हो भगवान् की स्तुति करने लगे। उस समय धरणेन्द्र वहा भगवान् के दर्शन करने आया। उसने मुनि को निश्चल ध्यान से भगवान् की स्तुति करते देख परीक्षा करने के लिये अनेक सर्प पैदा कर मुनि के शरीर पर लिपटा और कटवा कर कई उपसर्ग करने लगा। फिर भी मुनि अपने ध्यान से चलायमान नही हुए। तब धरणेन्द्र प्रगट हो मुनि की स्तुति करने लगा। पीछे अपने किए उपसर्ग की क्षमा माग, धरणेन्द्र आचार्य महाराज के पास जा वन्दन कर पूछने लगा कि हे महाराज! धन मुनि ने जिन और जिन चैत्य की उत्तम विनय स क्या पुण्य उपार्जन किया ? गुरू ने कहा हे धरणेन्द्र इस विनय से मुनि ने जिन नाम कर्म का बन्ध किया है। इस प्रकार विनय का अत्युत्तम फल सुन धरणेन्द्र अपने स्थान को लौट गया।

इसके बाद धनमुनि काल धर्म पा सहस्त्रार देवलोक में उत्पन्न हुए। वहा से च्यव महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष जायेंगे।

एकादश चारित्र पद आराधन विधि

"ॐ नमो चारित्तस्सः" इस पद की २० माला गिनें।

चारित्र के ७० भेद होने से ७० खमासमण देना। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा बोलना।

दोहा

रत्नत्रयी विनु साधना, निष्फल कही सदिव।
तव रमण नुं निधान छे, जय जय संयम जीव ॥

१ सर्वतः प्राणातिपात विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
२ सर्वतः मृषावाद विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
३ सर्वतः अदत्तादान विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
४ सर्वतः मैथुन विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
५ सर्वतः परिग्रह विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
६ सम्यक् क्षमा गुणधराय श्री चारित्राय नमः
७ सम्यग् मार्दव गुणधराय श्री चारित्राय नमः
८ सम्यगार्जव गुणधराय श्री चारित्राय नमः
९ सम्यग् मुक्ति गुणधराय श्री चारित्राय नमः
१० सम्यग् तप गुणधराय श्री चारित्राय नमः
११ सम्यग् संयम गुणधराय श्री चारित्राय नमः

१२ सम्यग् सत्य गुणधराय श्री चारित्राय नम
१३ सम्यग् शौच गुणधराय श्री चारित्राय नम
१४ सम्यग् अकिंचन गुणधराय श्री चारित्राय नम
१५ सम्यग् ब्रह्मचर्य गुणधराय श्री चारित्राय नम
१६ विगत प्राणातिपाताश्रवाय श्री चारित्राय नम
१७ विगत मृषावादश्रवाय चारित्राय नम
१८ विगत अदत्तादानाश्रवाय चारित्राय नम
१९ विगत मैथुनाश्रवाय चारित्राय नमः
२० विगत परिग्रहाश्रवाय चारित्राय नम
२१ श्रोतेन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नम.
२२ घ्राणेन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नम
२३ चक्षुरिन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नम
२४ रसनेन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नम
२५ त्वगिन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नमः
२६ विजित क्रोधाय चारित्राय नम
२७ विजित मान दोषाय चारित्राय नम
२८ विजित माया दोषाय चारित्राय नम
२९ विजित लोभ दोषाय चारित्राय नम
३० मनोदण्ड रहिताय चारित्राय नम
३१ वचनदण्ड रहिताय चारित्राय नम
३२ कायादण्ड रहिताय चारित्राय नम

स्तुति

सच्चिदानन्द पद का मुख्य कारण अनन्त चारित्र गुण है। चक्रवर्ती प्रमुख पदवी चारित्र के पालने से आमोसही विप्पोसही प्रमुख अनेक लब्धि उत्पन्न होती है। चारित्र ज्ञानानन्द स्वरूम परम अनुभव स्वरूप है। वर्ष पर्यन्त शुद्ध चारित्री अनुत्तर देवता के सुख को अतिक्रमण करता है, चारित्री को राजभय चोरभय नही होता, चारित्री सब का हितकारी जगद्वन्द्य होता है, परलोक मे स्वर्ग अथवा मुक्ति को पाता है, चक्रवर्त्ती प्रभृति भी चारित्र के रहस्य को समझकर छ खण्ड की प्रभुता को तृणवत परित्याग करके बड़े उत्साह से चारित्र अङ्गीकार करते हैं, जिससे देवेन्द्र नरेन्द्र को भी पूजनीय होता है। एक दिन भी शुद्ध चारित्र पा ले तो मुक्ति होती है, कदाचित मुक्ति न हो तो भी वैमानिक देव तो अवश्य होता ही है। आठ कर्म की जो अनादि परम्परा संचित है उसको नाश करता है, ऐसा चारित्र यथार्थ है, विना चारित्र कोई मुक्ति नही पाता। ऐसा सर्वश्रेष्ठ चारित्र धर्म जिस दिन प्राप्त हो वह दिन हमारा सफल और धन्य है, जिन्होने चारित्र धर्म पाया है वही हमारे पूज्य है, व ऐसे चारित्र गुण को नित्य हमारी वन्दना है। इस प्रकार से स्तुति करे। पारणा के दिन मुनि को प्रतिलाभ करावे। यथाशक्ति श्रावकों को भोजन करावे, अमारी का पटह वजावे, चारित्र का उपकरण ओघा, मुंहपत्ती, पात्र, कंबल, दांडा, सथारा, आसन प्रमुख साधु योग्य, और चरवला मुंहपत्ती

प्रभृति श्रावक योग्य बनावे, दीक्षा का महोत्सव करे, दीक्षा कल्याणक का महोत्सव करे, छ काय की जयणा करे, औरो को भी चारित्र गुण का प्रेमी बनावे ।

इस पद की आराधना उज्ज्वल वर्ण से करें । इस पद की आराधना से अरुणदेव जिनवर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है ।

ग्यारहवें आवश्यक पद की आराधना पर अरुणदेव की कथा

भरतक्षेत्र में शोभायमान विशाल मणिमन्दिर नगर में मणिशेखर राजा राज्य करता था । उसके शीलवान मणिमाला रानी थी । सर्व कला कुशल पराक्रमी अरुणदेव पुत्र था । कुमार यौवनावस्था मे आया तब एक दिन प्रधान के पुत्र सुमति के साथ उद्यान म वसन्त क्रीडा करने गया । उस समय वहा विविध प्रकार को खिली हुई वनस्पति से चित्त में प्रफुल्लित हो उठा । प्रसन्न चित्त से उद्यान की प्राकृतिक सुन्दरता देखते २ कुमार ने उद्यान के एक भाग में वृक्षो की शीतल छाया मे पेड की डाल पर बँधे हुए झूले पर झूलती हुई एक अनुपम सौन्दर्यशालिनी युवति को देखी । उस सुन्दरी को देख कुमार काम पीडित हो स्थिर दृष्टि से अतृप्त इच्छा से उसकी तरफ देखने लगा । इतने में एक विद्याधर ने आकाश मार्ग से आकर कुमार और उसके मित्र को वहा से उठाकर किसी अरण्य में छोड दिया । वहाँ उस विद्याधर के

भरे हुए नन्दनवन समान एक मनोहर जंगल देखा। उसमें देवभवन समान विशाल सुवर्णमय श्री शांतीनाथ भगवान का चैत्य भी देखा। उसे देख आकाश से उतर निर्मल जल से स्नान कर सुवासित पुष्प ले उल्लसित हृदय से विधि सहित भावपूर्वक भगवान की पूजा की। पीछे एकाग्र चित्त से भगवान की स्तुति करने लगा—

'हे चिदानन्दमय प्रभो ! विश्वसेन नरपति के पुत्र आकाश के सूर्य समान श्री शान्ति-जिनेश्वर ! आपकी जय हो ! जगत के जीवो के मनोवाँछित पूरे करने वाले कल्पवृक्ष समान हो ! हे प्रभो ! जो प्राणी आपकी आज्ञा को भावपूर्वक धारण करता है उस प्राणी की आज्ञा अनेक सुरासुर और मनुष्य मानते है और दुःखवर्जित अनन्त भोगमय संपत्ति का स्वामि होता है। हे प्रभु ! विशेष क्या कहूं ? जो प्राणी क्षीर नीर की तरह आपके ध्यान में तल्लीन हो जाता है वह उसी भव में सिद्धि प्राप्त कर आपके समान हो जाता है। इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान की स्तुति कर रहा था इतने में मंडप मे कुमार ने भारती देवी के दर्शन किये। देवी के दर्शन होते ही नमस्कार कर सरस्वती देवी की स्तुति करने लगा। हे भारती ! हे सरस्वती ! हे हंस वाहनी देवी ! तेरी दया से कविजन गम्भीर अर्थयुक्त काव्य कर विश्व मे प्रसिद्धि प्राप्त करते है। हे महा माता ! तेरी कृपा से मूर्ख लोग भी पंडित हो ज्ञान प्राप्त करते है। हे जननी ! विशेष क्या कहूं ? सुर, असुर, विद्याधर और

मनुष्य सब कोई तेरा ही गुणगान करते हैं। इस प्रकार स्तुति सुन सरस्वती देवी प्रसन्न हो बोली है—वत्स ! मैं तेरे पर प्रसन्न हो वरदान देती हू कि तू शातिमति नाम की सुन्दर कन्या के साथ व्याह कर विद्याधरो का स्वामि हो सुखपूवक जीवन यापन करेगा। यह वरदान दे देवी अन्तर्धान हो गई। पीछे मित्र सहित चैत्य से बाहर निकला। बाहर निकलते ही अनुपम सौन्दयशालिनी सुर कन्या को देखी। उसे देखते ही कुमार को याद आया कि यह वही सुन्दरी है जिसे मैंने जङ्गल मे झूलती हुई देखी थी और यही शान्तिमति कन्या होनी चाहिये। कुमार यह विचार कर रहा था इतने में सुन्दरी की दृष्टि भी कुमार पर पडी। कुमार को देखते ही उस सुन्दरी को रोमाच हो आया और एकटक उसे देखने लगी। थोडी देर इस तरह देखन के बाद उद्यान से विविध प्रकार के सुवासित पुष्प ले अपने हाथ से एक सुन्दर माला तैयार कर उसके साथ एक पत्र लिख अपनी धाय के साथ कुमार के पास भेजी। धाय ने कुमार के पास जा आदर पूर्वक वह माला कुमार के गले में पहना, पत्र उसे दिया और उत्तर के लिए एक तरफ खडी रही।

कुमार ने उल्लसित हृदय से पत्र पढा। उसम निम्न प्रकार का भाव था।

'आय पुत्र! मै क्या लिखू समझ में नही आता। फिर भी लिखने की इच्छा होने से अनुचित भी लिख दू तो आप ध्यान नही देंगे। दूसरा कुछ लिखू इससे पहले तो म अपना परिचय दू यही ठीक रहेगा। वैताढ्य पवत की दक्षिण श्रेणी में शिव

मन्दिर नाम के विशालनगर में वज्रवेग विद्याधर की वजवेगा राणी से उत्पन्न हुई उनकी में शान्तिमति प्रिय पुत्री हूं। मेरे पिता की आज्ञा से इस वन में ही मे हमेशा रहती हूं और इस चैत्य में भगवान् शान्तिनाथ व सरस्वती देवी की निरन्तर सेवा करती हूं। किसी नैमित्तिक के कहने के अनुसार आज मेरे पूर्व पुण्योदय से आपके दर्शन हुए। अब मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि आप कृपाकर आज की रात यही रहें। प्रातःकाल मेरे पिता विवाह की सब सामग्री ले यहां आवेंगे।

मनइच्छित पत्र पढ़ कुमार को बड़ा हर्ष हुआ और प्रेम की निशानी के रूप में अंगूठी कुमारी के पास भेजी। पीछे वह दिन उसने विचार मे ही व्यतीत कर दिया।

दूसरे दिन प्रभात मे वजवेग राजा वहां आया। वह आदरपूर्वक कुमार को नगर में ले गया। पीछे वहुत उत्साह से शान्तिमति के साथ उसका विवाह कर दिया। कन्यादान में अपार धन दिया। विवाह के वाद कुमार वहीं रहने लगा।

एक वार नाट्योन्मत नाम के विद्याधर ने कुमार के मित्र का हरण किया इसलिए अरुणदेव कुमार ने प्रज्ञप्ति आदि विद्या के प्रभाव से विद्याधर के साथ युद्ध कर अपने मित्र को छुडाया। पीछे अपने पराक्रम से सव विद्याधरों की श्रेणी का राजा हुआ। सच है पुण्यशाली को पग पग पर सम्पदा और विजय मिलती है।

एक वार जयन्तस्वामि मुनि को धर्मदेशना सुन उसने मित्र और स्त्री सहित समकित मूल वारह व्रत ग्रहण किये। फिर सब शाश्वत और अशाश्वत जिनालयों में जिनविम्बों की

वन्दना कर समकित निर्मल करने लगा। कुछ समय आनन्द-पूर्वक निगमन कर विद्याधर की श्रेणी का राज्य वज्रवेग के सुपुर्द कर मित्र और पत्नि सहित दिव्य विमान में बैठ आकाश मार्ग से मणिमन्दिर नगर में आया। माता-पिता को खबर मिलते ही उन्होने हर्ष व उत्साह पूर्वक नगरी में प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता-पिता को नमस्कार किया। शान्तिमति ने भी विनयपूर्वक सास श्वसुर के चरण स्पर्श किए। माता-पिता पुत्र की सम्पदा को देख हर्षित हुए।

पीछे अरुणदेव को राज्यसिंहासन दे राजा ने मुनिप्रभ गुरु के पास चारित्र लिया। अरुणदेव न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। कुछ समय बाद राणी के पद्मशेखर पुत्र उत्पन्न हुवा।

एक दिन अरुणदेव बाहर उद्यान में घूमने निकले। इतने में उन्होने लीलोद्यान उद्यान में शातमुद्रा युक्त श्री मणिशेखर राजर्षि को देखा। उनको देखते ही राजा को जातिस्मरण ज्ञान हुआ जिससे उन्होने अपना पव भव निम्न प्रकार देखा।

शुक्तिमति नगरी में कोई महापापारभी वैद्य रहता था। वह लोगो की अनेक प्रकार की चिकित्सा करता था। उसके यहा कोई एक तपस्वी मुनि औषध लेने आये। उसने उनको औषध दी जिससे उन कृपालु मुनि ने उसे धर्मोपदेश देते हुए कहा कि—

गृहिणा गृहधर्मस्य, सारमेतत्पर स्मृतम्।
यथाशक्ति सुपात्रेभ्यो, दान यच्छुद्धवस्तुन ॥१॥

अर्थः—गृहस्थी के गृहस्थाश्रम धर्म का यही परम सार रूप फल बताया है कि शुद्ध वस्तु का यथाशक्ति दान देना। सारांश यह है कि सुपात्र को शक्ति अनुसार वस्तु का दान देना। यह गृहस्थों का गृहस्थधर्म का परम साररूप कर्त्तव्य बताया है।

इस तरह वह मुनि उस वैद्य को हमेशा उपदेश देते जिससे वह वैद्य मुनि को निरन्तर शुद्ध भाव से शुद्ध औषध देता और उनका बहुत आदर करता। पीछे वह वैद्य आर्तध्यान से मर कर जङ्गल मे पांच सौ वानरियों का स्वामि हुवा।

एक बार अरण्य मे क्रीड़ा करते उस वानर ने एक मुनि के पैर मे तकलीफ देखी। उन्हें देखते ही वानर को पूर्व भव याद आया। पूर्व के अभ्यास से सब व्याधियों की औषधियों को जानने लगा। फिर उसने जङ्गल की किसी वनस्पति को मुख से चबाकर पैर मे बॉधी। थोड़ी देर में मुनि का दर्द दूर हो गया। मुनि ने उसे योग्य जीव समझ उपदेश दिया। इसलिये वानर को समकित हुवा और तीन दिन तक सामायिक व्रत व अनशन कर तीन पल्योपम की आयुष्यवाला सौधर्म कल्प में देव हुआ। वहां से चव कर, अरुणदेव कुमार हुआ। इस प्रकार अपना पूर्व भव जान अरुणदेव ने राजर्षि को प्रणाम किया। इतने में मुनि ने कायोत्सर्ग पूरा कर धर्म लाभ दिया। फिर राजा उनके सामने बैठा और मुनि ने देशना आरंभ की।

'हे राजा! अत्यन्त कष्ट से प्राप्त यह मानव देह और उसमे भी निरोग शरीर, उत्तम कुल, और जैन धर्म का

मिलना महा दुर्लभ है। इसमें भी देवादि तीन तत्व पर श्रद्धा होना और भी कठिन है। उन तीन तत्वों का स्वरूप यह है। चौंसठ इन्द्रों से सेवित चौतीस अतिशययुक्त सर्वज्ञ जिनेश्वर देव, पंच महाव्रतयुक्त, नवविध ब्रह्मचर्य पालने वाले, सावद्य व्यापार से विराम पाए हुए गुणवंत गुरु तथा जिनोदित क्षमादि दस विध धर्म। इन तीनों को यथार्थ भाव पूर्वक ग्रहण करे तब संसार की अल्पता के हेतुरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। इसके पीछे चारित्र का उदय होता है। चारित्र दो प्रकार का है, एक देशविरति और दूसरा सर्व विरति। देशविरति से स्वर्ग सुख प्राप्त होता है और सर्व विरति से मोक्ष प्राप्त होता है।

गुरु की धर्मदेशना सुन वैराग्य पूर्ण हो गुरु को नमस्कार कर राजमहल में आया। वहां सर्व प्रधान वर्ग और सामन्तादि को बुला कुमार पद्मशेखर का राज्यासन दे आठ दिन तक जिनालय में महोत्सव कर श्री प्रभाचार्य के पास चारित्र ग्रहण किया। शान्तिमति ने भी चारित्र ले लिया। राजर्षिमुनि अमरदत्त ने द्वादशांगी का अध्ययन किया। निरतिचार से चारित्र का पालन कर अभीष्ट कर्मों का नाश करने लगा।

एक बार गुरु से बीस स्थानक की महिमा सुनी। उसमें ग्यारहवें आवश्यक पद के बारे में सुना कि जो मनुष्य सामायिकादि छः आवश्यक की तीन करण शुद्ध शुद्ध उपयोग से आराधना करता है वह जिन नाम कर्म का उपार्जन करता।

द्वादश ब्रह्मचर्य व्रत धारी पद आराधन विधिः

"ॐ नमो वंभवय धारिणं" इस पद की २० माला गिने।

इस पद के १८ खमासमण देवे । प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे ।

दोहा

जिन प्रतिमा जिन मन्दिरा. कंचन ना करे जेह ।
ब्रह्मव्रत थी बहुफल कहे, नमो नमो शीयल सुदेह ॥

१ मनसा औदारिक विषय असेवनरूप ब्रह्मचर्य धराय नमः
२ मनसा औदारिक विषय असेवाननरूप ब्रह्मचर्य धराय नमः
३ मनसा औदारिक विषय अननुमोदनरूप ब्रह्मचर्य धराय नमः
४ वचसा औदारिक विषय असेवनरूप ब्रह्मचर्य धराय नमः
५ वचसा औदारिक विषय असंवाननरूप ब्रह्मचर्य धराय नमः
६ वचसा औदारिक विषय अननुमोदनरूप ब्रह्मचर्य धराय नमः
७ कायेन औदारिक विषय असेवनरूप ब्रह्मचर्य धराय नमः
८ कायेन औदारिक विषय असेवाननरूप ब्रह्मचर्य धराय नमः

९ कायेन औदारिक विषय अननुमोदनरूप ब्रह्मचर्य धराय नम

१० मनसा वैक्रिय असेवनरूप ब्रह्मचय धराय नम.

११ मनसा वैक्रिय विषय असेवाननरूप ब्रह्मचर्य धराय नम

१२ मनसा वैक्रिय विषय अननुमोदनरूप ब्रह्मचर्य धराय नम

१३ वचसा वैक्रिय विषय असेवनरूप ब्रह्मचर्य धराय नम

१४ वचसा वैक्रिय विषय असेवाननरूप ब्रह्मचर्य धराय नम

१५ वचसा वैक्रिय विषय अननमोदनरूप ब्रह्मचर्य धराय नम

१६ कायेन वैक्रिय विषय असेवनरूप ब्रह्मचर्य धराय नम

१७ कायेन वैक्रिय विषय असेवाननरूप ब्रह्मचर्य धराय नमः

१८ कायेन वैक्रिय विषय अननुमोदनरूप ब्रह्मचर्य धराय नम॰

उपरोक्त खमाखम के बाद १८ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

सब व्रतो में ब्रह्मचर्य बडा है। ब्रह्मचय की रक्षा के लिए नववाड प्ररूपण किया है। और व्रता के भङ्ग से एक ही व्रत भङ्ग होता है परन्तु ब्रह्मचयव्रत के भङ्ग से पाचो व्रत भङ्ग होते हैं। जिसने चतुर्थ व्रत का पालन किया उन्होने पाचो व्रत पालन किये। समुद्र के समान ब्रह्मचय है, दूसर व्रत छोटे नदियो के समान में दृढ होने से देवता, यक्ष, राक्षस नमस्कार करते है। सब शक्ति ९० पालन यो शक्ति

सेठ रहता था। उसके कलह करनेवाली और दुर्गुणों की भंडार चंडा और प्रचंडा दो स्त्रियां थीं। उन स्त्रियों के कलह से सेठ की लक्ष्मी भी पलायन कर गई। कहा है कि कलह से लोक में अपयश, अप्रीति और उद्वेग वगैरह अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते है। दोनों स्त्रियों के कलह से सेठ कुछ दिन तक प्रचण्डा के घर सुख पूर्वक रहा।

फिर मदन सेठ प्रचण्डा के घर से चंडा के घर आया। सेठ को आता देख चंडा ने क्रोधित हो मूसल ले मंत्र पढकर सेठ पर फेका। इतने में मूसल सर्प रूप हो सेठ को डसने के लिये दौड़ा। ऐसा भयंकर दृश्य देख सेठ भय से भागा। सर्प भी फुँकार करता उसके पीछे दौड़ा। सेठ हांफता २ व्याकुल हो दौड़कर प्रचंडा के घर पर आकर खड़ा रहा। तब प्रचंडा कहने लगी—हे नाथ! आप आकुल व्याकुल और भय से क्यों कांप रहे हो ? सेठ दीन होकर कहने लगा—प्रिया! मे आज चंडा के घर वैसे ही चला गया। इतने मे उस दुष्टा ने निष्ठुर हो मुझे मारने के लिये इस भयकर सॉप को भेजा है, देख वह आया। इतना कहते ही तो वह सांप नजदीक आ पहुँचा। सर्प को देख प्रचंडा ने अपने शरीर का मैलउतार सर्प पर फेका। वह मेल मंत्र के प्रभाव से नोलिया वन गया और सर्प का नाश किया।

पीछे भय रहित होने पर सेठ विचारने लगा कि अरे! ये दोनों स्त्रियां पाप की खान है। ये दोनों मंत्र औषधि को जानने वाली है इसलिये कभी भी मेरे पर क्रोधित हो मेरे को मार

सकती है जिससे आर्तध्यान से मर दुर्गति में जाऊँगा। इसलिये इन दोनों राक्षसनियों को छोड अन्य किसी जगह चला जाना चाहिये। ऐसा निश्चय कर रात्रि में दोनो स्त्रिया व घर को छोड देशान्तर जाने को रवाना हो गया। कुछ दिनो में वह काशीपुर पहुँचा और सोचने लगा कि अब मैं यहा निर्भय होकर रहूँगा। क्योकि इतनी दूर मैं रहता हूँ इसका पता उन दोनो को कहा से लगेगा। यह सोच मदन सेठ नगर में आया। उस नगर में धनाढ्य भानुसेठ रहता था। उसके भानुमति स्त्री के चार पुत्र और एक विद्या और कला को जाननेवाली विद्युत समान कांतिवाली विद्युल्लता पुत्री थी। वह पिता की प्यारी थी। व्याह करने योग्य होने पर सेठ उसके समान गुणवाले पति की खोज में था। मदन सेठ घूमता २ उसी सेठ की दुकान पर जा पहुँचा। भानुसेठ ने उसे देखा। उसे देख वह विचारने लगा कि यह कोई कुलीन मनुष्य मालुम होता है। ऐसा सोच आदर पूर्वक अपने घर लेगया और सम्मान पूर्वक रखा। रात्रि में भानुसेठ की कुलदेवी ने आकर स्वप्न में कहा कि तेरी पुत्री के योग्य यह वर है, इसके साथ तेरी पुत्री का व्याह कर देना। देवी के कहने से सेठ ने दूसरे दिन स्वप्न की बात सब कुटुम्बियो को कही। सब की सम्मति के उत्साह पूर्वक मदन सेठ के साथ विद्युल्लता का लग्न कर दिया।

कुछ दिन तक मदन सेठ श्वसुर के घर सुखपूर्वक रहा। पीछे एक दिन अपने घर जाने की इच्छा हुई। यह बात उसने अपनी प्रिया को बताई। उसने जाने के लिये स्वीकृति दी और

मार्ग में भोजन के लिये एक वर्तन में सत्तू रख कर दे दिया। वह लेकर मदन सेठ अपने घर की ओर रवाना हुवा। मार्ग में एक सरोवर आया वहां सत्तू खाने बैठा और विचार करने लगा कि कोई अतिथि मिल जाय तो इसमें से थोड़ा उसे देकर पीछे खाऊँ। ऐसा विचार करता है इतने मे एक तापस वहाँ आ पहुँचा। उसे थोड़ा सत्तू दे स्वयं पानी लेने सरोवर पर गया। इतने में वह तापस सत्तू खाने से वकरा हो गया। यह आश्चर्यजनक वनाव देख सेठ दिग्मूढ़ हो विचारने लगा कि इस दुर्गति के द्वार रूप स्त्री का ही यह कार्य है। स्त्रियों का स्नेह केवल अस्थिर और प्रपंचरूप है। इसीलिये कहा है

ग्रहचरियं रविचरियं, ताराचरियं चराचर चरियं।
जाणान्ति बुद्धिमंता, महिलाचरियं न जाणन्ति॥१॥
मच्छपयं जलपंथे, आकाशे पंछियाण पयपन्ति।
महिलाण हियमग्गो, तिनूवि लोए न दीसन्ति॥२॥

अर्थ–ग्रहों की चाल, सूर्य की चाल, ताराओं की चाल और चराचर पुरुषों का चरित्र ये सब बुद्धिमान् जान सकता है परन्तु स्त्री के चरित्र को कोई नहीं जान सकता। पानी मे मच्छ के पैर, आकाश मे पक्षियों की पद पंक्ति और स्त्री के हृदय का मार्ग ये तीनों इस लोक में नहीं देखे जा सकते।

मदन सेठ इस प्रकार विचार करता है इतने मे वह वकरा काशीपुर तरफ भागने लगा। कौतुक देखने को सेठ भी जल्दी २ उसके पीछे चला। वकरा दौड़ता २ विद्युत्लता के

घर पहुचा। मदन सेठ भी चुपचाप घर के आसपास कोई नही देख सके और खुद सब कुछ देख सके इस तरह छिप कर खडा रहा। बकरे को आया देख विद्युल्लता ने क्रोधित हो उसे खम्भे से बाधा और पीछे लकडो से मारने लगी। बकरा बिचारा बें बें कर चिल्लाने लगा। वह दुष्टा ज्यादा २ प्रहार कर कहने लगी कि जो कोई दूसरा भी सत्तू खावेगा उसे भी ऐसा ही दुःख भोगना पडेगा। बहुत देर पीछे उसे दुःखी जान मूल स्वरूप में लाई और आश्चर्य में हो पूछने लगी कि तू यहा कैसे आया। तापस ने सब हकीकत बताई। इसलियें विद्युल्लता मन में दुःखी हो विचारने लगी कि यह तो किसी के बदले किसी को दुःख मिला। पीछे तापस को जाने की आज्ञा दी।

यह घटना देखकर मदन सेठ मन में सोचने लगा कि यह तो पहले की दोनो स्त्रियो से भी आगे बढी हुई है। मेरे दुर्भाग्य का अन्त ही नही है। घर से चला वन में गया तो जगल में आग लगी, वहा से निकल यहा आया तो यह तीसरी उन दोनो से भी बढकर निकली। अब यदि घर जाऊ तो पहलेवालो मार डाले और यहा रहू तो यह मार डाले। इसलिए राक्षसी समान इन स्त्रियो की मुझ जरूरत नही। अब तो और कही जाना चाहिए। ऐसा सोच वहा से निकल थोडे दिनो में हस्तीनागर में पहुँचा। वहां चन्द्रमा की किरणो के समान सफेद रङ्गवाला मनोहर श्री ऋषभदेव का मन्दिर था। वहा जाकर उसने भगवान् के दर्शन किये।

मन्दिर से बाहर आ एक तरफ बैठ विचार करने लगा। इतने में वहां भगवान् की पूजा करने के लिए धनदेव सेठ आया। उसने मदन सेठ को उदासीन और विचार मग्न देख उसके पास जाकर पूछा हे भाई! तुम कहां से आये हो? यहां क्यों बैठे हो? ऐसा मालूम होता है कि तुम बड़े दुःखी हो। यदि ठीक समझो तो सारी बात मुझे कहो।

मदन सेठ ने उसकी विवेक पूर्ण बात सुन उसे गुणवान और कुलीन समझ अपना सम्पूर्ण हाल सुनाया। तब धनदेव बोला हे भाई! स्त्री जाति प्रायः कपटी होती है। जो पूर्ण भाग्यशाली होता है वही स्त्री के मोह से दूर रह परमार्थ साधकर अपना कल्याण करता है। हे मित्र अब मैं दुःख की बात कहता हूं उसे तू एकाग्र चित्त से सुन। ऐसा कह धनदेव ने अपनी कथा शुरू की।

इसी नगर में महान धनाढ्य और दानी धनपति सेठ रहता था। उसके धनसार और धनदेव दो पुत्र थे। कालान्तर में धनपति सेठ मर कर देवलोक में गया। पीछे दोनों भाइयों में कलह होने से अलग २ रहने लगे। लक्ष्मी भी धीरे २ लुप्त होने लगी व गरीबी धीरे २ आने लगी। इतने में धनदेव के एक स्त्री होते हुए भी उसने दूसरी शादी की। परन्तु उसे इस बात का आश्चर्य होने लगा कि ये दोनों सौत होने पर भी द्वेष रहित सगी बहिनों की तरह स्नेह से रहती है। वह सोचने लगा कि धनवान के घर में दो सौत कभी स्नेह से नही रहती तो मुझ जैसे निर्धन के घर मे बड़े

प्रेम पूर्वक रहती है इसलिए उसमें जरूर कोई भेद है और उसे छिपकर देखना चाहिये।

यह विचार कर एक दिन उसने झूठा ढोंग किया कि आज मेरा स्वास्थ्य ठीक नही है इस वास्ते जल्दी सोना है। ऐसा कह उस रात्रि को जल्दी कपट निद्रा मे सो गया। थोडी देर पीछे धनदेव को सोता जान पहलेवाली स्त्री नई से कहने लगी कि बहन अब जल्दी तैयार हो जा। यह सुनते ही नई अपना श्रृङ्गार कर हर्ष पूर्वक अपनी सौत के साथ जाने को तैयार हुई। दोनो स्त्रिया जल्दी २ नगर के बाहर जाकर एक आम के पेड पर चढने लगी। उनके पीछे २ धनदेव भी छिपता २ वहा आ पहुचा। वे दोनों स्त्रिया वृक्ष के ऊपर जाकर बैठी। धनदेव भी पेड के तने में एक खोखला था उसमें बैठ गया। फिर वह पेड हवा की तरह आकाश में उडने लगा। थोडी देर में वह पेड दक्षिण समुद्र को पार कर रत्नद्वीप के अन्दर रत्नपुर नगर के किले के पास आकर नीचे उतरा। तब वे दोनो स्त्रिया नीचे उतरनें लगी। उनको उतरती देख धनदेव शीघ्र पास मे छिप गया। दोनो स्त्रिया वृक्ष से उतर नगर में गई। उनके पीछे २ धनदेव भी चला। उस समय उस नगर मे वसुदेव सेठ के श्रीदत्तकुमार और श्रीपु ज सेठ की पुत्री श्रीपति का लग्न होनेवाला था। इसलिये दोनो घरो में आनन्द और धाम धम हो रही थी। उसे देखने के लिए अनेक स्त्री पुरुष इकट्ठे हुए थ। बरात भी ठाठ बाट से नगर मे घूमती २ श्रीपुज सेठ के घर आई। वर राजा तोरण पर पहुँचा। इतने में क्रूर कर्मो एवम् पूर्व पाप कर्मोदय

के कारण वर राजा की वहीं मृत्यु हो गई। अचानक पुत्र की मृत्यु से वसुदेव वड़ा दुखी हुवा। दुल्हन का परिवार भी दुखी हुवा। सब लोग शोकातुर हो अपने २ घर गये। इतने में श्रीपुंज सेठ ने देववाणी सुनी की हे सेठ तू तेरी पुत्री का विवाह तेरे घर के सामने छुपे हुए धनदेव के साथ आज ही कर देना क्योंकि यह कन्या उसी के योग्य है। यह सुनते ही श्रीपुंज सेठ ने धनदेव को ढूंढ निकाला और उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। उस समय नगर में गई हुई धनदेव की दोनों स्त्रियां लग्न समय वहां आ पहुँची और विवाह मण्डप मे अपने पति को देखा। उसे देखते ही आश्चर्य से हो दोनों कहने लगी कि अपना पति यहां कैसे आया? क्या यह अपने को धोखा देकर अपने पीछे २ आया है? परन्तु ऐसा नही हो सकता। बहुत से मनुष्यो की आकृति समान होती है; इसलिए अपने को ऐसा लगता है। हजारों कोस दूर अपने नगर से वह यहां किस तरह आ सकता है? इस तरह दोनों ने अपना समाधान कर, लग्नोत्सव देख घर लौटने लगी।

लग्न पूर्ण होने पर धनदेव ने कन्या के वस्त्र पर कुंकुम से एक श्लोक लिखा।

कुत्र वसती रत्नपुर, कःक्वासौ गगन मंडनश्चूतः ॥
धनपति सुत धनदेवे, विधेर्वशात्सुखकृतेश्चूतः ॥१॥

अर्थः—रहने का स्थान रत्नपुर कहां? और आकाश का भूषण रूपी यह आम्र कहां? परन्तु यह सब धनपति के पुत्र

घनदेव के लिये दैवयोग से यह आम्र सुख देनेवाला हुवा । यह लिख और किसी बहान से बाहर निकल गुप्त रीति से शीघ्र नगर के बाहर आया । वहा उसने स्त्रियो को जल्दी २ जाती हुई देखी । थोडी देर मे सब आम्र के पास पहुँचे । दोनो स्त्रिया जल्दी से पेड पर चढ गई । धनदेव भी पहले की तरह अपनी जगह बैठ गया । इतने मे आम्र वृक्ष वायु वेग से गगन मार्ग से होता हुवा अपनी जगह आकर रुक गया । तब धनदेव स्त्रियो के पहुँचने से पहले घर पहुँच सो गया ।

दूसरे दिन सवेरे जल्दी दूसरी स्त्री पति को जगाने गई । वहा जाकर उसने देखा कि उसके हाथ मे लच्छा और मेहदी और ललाट पर कुकुम का टीका है । इसलिये वह तुरन्त पहली स्त्री के पास जाकर कहने लगी कि बहन पति के हाथ में लच्छा, मेहदी और ललाट पर कुकुम का टीका है । इसलिये अवश्य रात्रि को रत्नपुर में श्रीमति के साथ व्याह करनेवाले अपने पति है । इसमें जरा भी शका नही । उन्होंने गुप्त रीति से अपनी बातें जान ली है । अब क्या होगा ?

पहली स्त्री ने कहा इसमें क्या है ? ऐसा कह एक डोरा मत्रकर सोते हुए घनदेव के सीध पैर पर बाध दिया । डोरा बाधते ही वह तोता बन गया । उसे पकड पीजरे म रख दिया ।

अब रत्नपुर नगर का हाल सुनिये कि वहा क्या हुवा । जब धनदेव प्रातःकाल तक वापिस नही आया तब श्रीमति ने अपने पिता को कहा । यह सुन श्रीपुज सेठ दुखी हुवा । इतने में सेठ की नजर श्रीमति के वस्त्र पर लिखे हुए श्लोक पर पडी । श्लोक पढकर सेठ खुश होकर बोला हे पुत्री ! देख तेरे

वस्त्र पर तेरे पति ने श्लोक लिखा है उससे उसका नाम और नगर का पता चलता है। वह हसंतीपुर नगर के धनपति सेठ का पुत्र धनदेव है। वह किसी कारण वश रात्रि को ही वापिस चला गया है। अब अपने को पता लगाना चाहिये। तू जरा भी चिंता मत कर। उसी दिन सागरदत्त व्यापारी अपने जहाज लेकर हसतीपुर जानेवाला था। उसके साथ श्रीपुंज सेठ ने एक पत्र और वहुमूल्य हार धनदेव को देने के लिए सागरदत्त को दिया। सागरदत्त का जहाज अनुकूल पवन होने के कारण शीघ्र ही हसतीपुर पहुँच गया। वहां आकर धनदेव का पता लगा, उसके घर जाकर पूछा कि धनदेव सेठ है क्या ?

घर मे से स्त्रियों ने जवाव दिया कि नही है, वे तो राज्य कार्य से ताम्रलिप्त नगर गये है। आप कहां रहते हो और क्या काम है ?

सागरदत्त ने कहा कि मै रत्नद्वीप के रत्नपुर नगर का व्यापारी हूँ। वहाँ से श्रीपुज सेठ ने धनदेव सेठ को यह पत्र और हार भेजा है।

स्त्री ने कहा वहुत अच्छा लाओ। सेठ जाते समय कह गये थे कि यदि कोई रत्नपुर जानेवाला हो तो उसकी साथ यह तोता श्रीमति के पास भेज देना। इसलिये तुम यह तोता श्रीमति'को दे देना। यह कह पत्र व हार लेकर तोते का पीजरा सागरदत्त को दे दिया।

सागरदत्त पीजरा ले थोड़े दिनो वाद अपने नगर मे आया और पीज़रा सेठ को दे जो कुछ हुआ वह सव कह सुनाया। सेठ ने वह तोता श्रीमति को दे दिया। श्रीमति निरन्तर उसे

अपने पास रखती और विनोद करती। एक दिन तोते के पैर में डोरा बधा देख उसे तोड डाला। डोरा टूटते ही धनदेव अपने असली रूप में प्रगट हो गया। यह देख सब आश्चर्य मे हो पूछने लगी कि ऐसा होने का क्या कारण है ? धनदेव ने कहा कि यह सब कर्मवश हुआ है। ऐसा कह अपनी स्त्रिया की वात नहीं कही। कुछ दिन सुख पूर्वक श्रीपु ज सेठ के यहा रह पीछे श्रीमति को ले अपने नगर में आया। परन्तु पहले की वात याद न कर सुखपूर्वक तीनों स्त्रिया साथ म रहने लगी।

एक दिन श्रीमति सुवर्ण थाल में पति के पैर धो रही थी। पर धोने के वाद थाल का पानी पहले की स्त्री ने जमीन पर फेंक दिया। फेंकते ही पानी चारो तरफ धीरे २ समुद्र की तरह बढने लगा। क्षण २ मे पानी को वढता देख धनदेव हृदय में घवराने लगा।

श्रीमति ने यह देख अपना शक्ति से पानी की माया को समेट ली। यह देख धनदेव विस्मित हो सोचने लगा कि यह तीसरी स्त्री ता इन दोनो से भी शक्तिशाली है। मेरे दुष्ट कर्मो के उदय से ही ऐसी स्त्रिया मिली है। श्रीमति की ताकत को देख पहले की दोनो स्त्रियाँ उसकी आज्ञा में प्रीतिपूर्वक रहने लगी और धनदेव हमेशा उससे डरता हुआ रहने लगा।

इस प्रकार वह वह मदन सेठ से वोला हे मित्र मैं ही धनदेव हू कि उन जीवित बलाओ के पास हमेशा रह डरता हू और उनको छोड भी नही सकता।

धनदेव का सारा दृष्टान्त सुनकर मदन सेठ कहने लगा कि अरे ! वे पुरुष धन्य है जो स्त्रियो के मोह में नही फसकर सब ममत्व को छोड़ शीयलव्रत को ग्रहण कर शान्ति प्राप्त करते है। इतने में वहां हमारे आने की सूचना मिलने पर वे दोनों हमारी धर्म देशना सुनने आये। देशना सुन हमारे पास चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ ग्यारह अङ्ग का अध्ययन कर समिति गुप्तियुक्त निरतिचार से संयम का पालन करने लगे। हे राजन् रास्ते में जिन दो मुनियों को तुमने ध्यान मे खड़े देखा वे वही भाग्यशाली है।

राजा ने कहा हे प्रभु ! आपने यौवनावस्था में दीक्षा क्यों ली ? गुरु ने कहा हे राजन् ! गृहस्थाश्रम मे सर्वथा षट्काय जीवों की रक्षा नहीं हो सकती क्योंकि घर में रहने से घर, घंटी आदि अनेक अधिकारो से महा पापारम्भ होता है और उनसे षट्काय जीवों की हिंसा होती है। एक बार स्त्री संभोग से नौ लाख प्राणियों की हिसा होती है। जगत मे जीवों की रक्षा करनेवाले तो अनेक पुरुष मिल जाते है परन्तु मैथुन सेवन से मरनेवाले जीवों को अभयदान दे मैथुन को त्याग करनेवाले पुरुष विरले ही होते है।

गुरु से उपदेश सुन राजा चंद्रवर्मा को प्रतिबोध हुवा। गुरु को वदन कर राजमहल मे जा अपने पुत्र चंद्रसेन कुमार को राजगद्दी दे जिनमंदिर मे वड़ा उत्सव कर गुरु से चारित्र ग्रहण किया। फिर ग्यारह अंग का अध्ययन कर समिति गुप्ति पूर्वक शुद्ध चारित्र का पालन करने लगा। एक दिन गुरु से बीसस्थानक की महिमा सुनी कि यदि कोई बीसस्थानक पद

की आराधना करता है वह ससार भ्रमण को दूर करनेवाले त्रैलोक्यवद्य जिन नाम कर्म का उपाजन कर मोक्ष प्राप्त करता है। इसमें भी जो बारहवें स्थानक की आराधना कर शीयलव्रत का पालन करता है वह शीघ्र जिन नामकर्म का उपार्जन करता है। क्योकि सब व्रतो में शीयलव्रत सब मे ज्यादा श्रेष्ठ बतलाया है।

इस प्रकार गुरु से शीयलव्रत की महिमा सुन राजर्षि मुनि नववाडयुक्त शीयलव्रत का पालन करने लगा। किसी भी स्त्री के सामन सराग दृष्टि नही डालता। स्त्री सबधी वणन व उस सबधी कथा वार्ता का भी त्याग कर स्थिर चित्त से शीयलव्रत का पालन करने लगा।

एक दिन देवसभा मे इन्द्र महाराज ने राजर्षि मुनि की प्रशसा कर कहा कि मुनियो में शिरोमणी राजर्षि चद्रवर्मा मुनि को धन्य है। वह देवेन्द्र के चलायमान करने पर भी अपने व्रत से चलायमान नही होता है। सुरेन्द्र के मु ह से मुनि की स्तुति सुन मुनि की परीक्षा करने के लिये विजयदेव देवता जहा राजर्षि मुनि कायोत्सग करके खडे थे वहा आया। वहा आकर अनेक अप्पसराओं का इकट्ठी की। अप्सरायें अनेक प्रकार के हाव भाव और कटाक्ष कर मुनि के पास आकर प्राथना करने लगी कि हे स्वामी! पुण्य से प्राप्त हुए इस यौवनवस्था में योग को छोड भोग विलास करो। आप सब जीवो पर करुणा करनेवाले हो, हम आपके पास आशा लेकर आई हैं, इसलिये हमें निराश व दुखी न कर हमको स्वीकार करो। इस प्रकार अनेक प्रकार के कामोद्दीपक वचन कहने लगी। फिर

भी मुनि का मन जरा भी विचलित नही हुआ। अन्त में देव ने प्रकट हो मुनि की स्तुति कर, गुरु महाराज के पास जाकर पूछा कि हे प्रभु! राजर्पि मुनि को दृढ़ शीयलव्रत पालने का क्या फल मिलेगा। गुरु महाराज ने कहा इस महाभाग्य को शीयल के प्रभाव से त्रैलोक्य पूज्य जिन पद प्राप्त होगा। शीयल की महिमा सुन देव अपने स्थान पर गया। चन्द्रवर्मा मुनि काल धर्म पा ब्रह्मदेवलोक में देवता हुए। वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र मे पुण्डरिकिणी विजय में पुष्कलावती नगरी मे तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष में जावेंगे।

त्रयोदश क्रिया पद आराधन विधि।

"ॐ नमो किरियाण" इस पद की २० माला गिनें।

इस पद के २५ खमासमण देवे। प्रत्येक खमासमण स पूर्व यह दोहा कह।

दोहा

आतमबोध बिनु जे क्रिया, ते तो बालक चाल।
तत्वार्थ थी धारिये, नमो क्रिया सुविशाल ॥

१ अशुद्ध कायिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम

२ अधिकरण की क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम

३ परिताप की क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम

४ प्राणातिपात की क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम

५ आरम्भिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम

६ परिग्रहकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम

७ माया प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम

८ मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम

९ अपच्चक्खाण की क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम

१० दृष्टिकी क्रिया प्रवतन रहिताय क्रिया गुणवते नम

११ स्पृष्टि की क्रिया प्रवतन रहिताय क्रिया गुणवते नम

तेरहवें शुभ ध्यान पद आराधन पर हरिवाहन राजा की कथा

भरतक्षेत्र में संकेतपुर नामका नगर था। जहा शत्रुओं को त्रास देनेवाला, सूर्य समान प्रतापी, शौर्यादि गुणयुक्त हरिवाहन राजा सुखपूर्वक प्रजा का पालन करता था। उस राजा का छोटा भाई युवराज मेघवाहन था। वह विनयवान व राजा की आज्ञा में चलने वाला था। हरिवाहन सब बातों मे निपुण था परन्तु धर्म कार्य मे प्रमादी था।

एक बार उस नगर के उद्यान में चार ज्ञान को धारण करने वाले श्री शीलभद्र आचार्य मुनि परिवार सहित पधारे। उस समय उनको वन्दन करने के लिये युवराज, सेठ, सामत आदि वहा गये। गुरु महाराज ने देशना आरम्भ की। इतने मे भवितव्यता वश हरिवाहन राजा भी अचानक वहां आ पहुँचे। गुरु की गंभीर गर्जनायुक्त देशना की ध्वनि कानों में पहुँचने पर वह भी अश्व से उतर पर्षदा में आ विनयपूर्वक गुरु को वदना कर योग्य आसन पर बैठ गये। गुरु महाराज की देशना धारा प्रवाह से चलने लगी।

हे भव्य जीवो ! इस संसार मे जड़ बुद्धि प्राणी, मनुष्य जन्म, आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल, निरोगी देह और तीक्ष्ण बुद्धि वगैरह अनुकूल साधन प्राप्त कर भी धर्म का आदर नहीं करता वह पीछे पश्चाताप करता है। इसीलिये कहा है कि—

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितम् ;
व्यापारैर्बहुकर्मभारगुरुभीः कालो न निज्ञायते ॥

द्रष्टवा जन्मजरा विपत्तिमरण त्रासश्च नोत्पद्यते,
पीत्वा मोहमयी प्रमादमदिरामुन्मत्तभूत जगत ।।१।।

अर्थ —दिन दिन प्रति सूय के उदय और अस्त से जीव क्षीण होता जाता है, परन्तु काय भार से कितना समय बीत गया यह नही जानता । लोगो का जन्म, मृत्यु, बुढापा और विपत्ति देख दुखी नही होता। इससे मालूम होता है कि मोहमय मदिरा पीकर यह जगत उन्मत्त हो गया है ।

जो भव्य प्राणी प्रमाद रहित धम काय म उद्यम करता है वह शीघ्रता से इष्ट वस्तु का प्राप्त करता है । इस पर दो वैश्याग्रो का दृष्टात कहता हूँ वह एकाग्रचित्त से सुनो ।

राजगृहो नगरी में अनेक कलाओ से युक्त व स्वरूपवान प्रसिद्ध नायिका मगधसेना रहती थी । उस नगर में दूसरी एक वैश्या भी रहती थी वह भी मगधसेना से रूप गुण में कम नही थी। उसका नाम मगधसुन्दरी था। वे दोनो एक दूसरे के रूप और कलाओ की स्पर्धा करती हुई राजा के पास आकर न्याय की प्रार्थना की । इसलिये राजा ने कहा कि जब मैं तुम दोनो की कला को देखू तब कह सकता हूँ कि तुम दोनो में कौन कुशल है ? इस वास्ते तुम दोनो राजसभा में अपनी २ कला बताओ । दोनो ने यह बात स्वीकार की । दूसरे दिन राज सभा में आकर पहले मगधसेना ने अपनी कला सामान्य हाव-भाव से बताई, जिससे राजा को कोई खास खुशी नही हुई । पीछे मगधसुन्दरी दिव्य अलकारो से विभूषित सुन्दर शृगार कर हावभाव और कटाक्ष करती हुई सभा मे आई जिससे

चतुर्दशी तप पद आराधन विधि

"ॐनमो तवस्स" इस पद की २० माला गिने।

इस पद के १२ खमासमण देवे। हरेक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे।

दोहा

कर्म खपावे चीकणा, भाव मङ्गल तप जाण।
पचास लब्धि उपजे, जय जय तप गुण खान।।

१ अणसणाभिध तपयुक्ताय बाह्यतप गुणाय नमः
२ उनोदरि तपयुक्ताय बाह्यतप गुणाय नमः
३ वृत्तिसंक्षेप अनेक विध अभिग्रह धराय बाह्यतप गुणाय नमः
४ रसत्यागरूप तप युक्ताय बाह्यतपो गुणाय नमः
५ कायक्लेश लोचादिक कष्ट सह काय बाह्यतप गुणाय नमः
६ संलीनता शरीर संकोचाय बा तपह्य गुणाय नमः
७ प्रायश्चित ग्राहकाय अभ्यंतर तप गुणाय नमः
८ विनय गुण युक्ताय अभ्यंतर तप गुणाय नमः
९ वैयावच्च गुण युक्ताय अभ्यंतर तप गुणाय नमः
१० सज्जाय ध्यान युक्ताय अभ्यंतर तप गुणाय नमः
११ आत्म ध्यानरूप अभ्यंतर तप गुणाय नमः
१२ कायोत्सर्ग रूप अभ्यंतर तप गुणाय नमः

उक्त खमासमण देकर १२ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

सम्यग तप, कठिन कर्म रूप जजोरे तोडने के लिए वज्र का मुद्गर है। अति कठिन निकाचित् कर्मफल देकर छूटता है, अथवा सम्यग् तप से छूटता है। अनन्तर बलवान शासनाधीश सकल विज्ञान भास्कर सुरासुर सेवित चरणारविन्द निश्चय चरम शरीरी परमेश्वर ने भी कठिनतम तप करके कर्म को छेदन किये हैं।

तप से विचित्र लब्धि, अष्ट महासिद्धि प्राप्त होती है। चक्रवर्ती प्रमुख पदवी तप का फल है। तपस्वी का वचन निष्फल नही होता। चारित्री तपोधन कहे जाते हैं, दृढ प्रहारी चिलाती पुत्र काल कुमारादि १० महा पाप कर्ता तप के बल से थोडे काल में केवलज्ञान पाकर ससार से तर गए। इच्छानिरोध करके क्षमायुक्त तप करे तो साधकता को कोई पदवी दुष्कर नहीं है। तपस्वी मुनि शासन के दीपक समान है। सब दार्शनिक को वन्दनीय होता है। तपस्वी से मिथ्यात्व भी डरते रहते हैं–आसातना नही करते। शासन का उच्छद करने को नमुचि नामका पुष्ट मिथ्यात्वी उद्वत था उसको विष्णुकुमार ने शिक्षा देकर शासन की स्थिर शोभा की। अष्टम तप प्रभाव से देवता आप खडे रहते हैं जो व कहे सो काय करते हैं। नागकेतु की अष्टम तप के प्रभाव से धरणेन्द्र ने आकर स्वय रक्षा की। तपस्वी मुनि शासन में बडे महान् है, उन्ही से गच्छ की शोभा है। इस कारण मुक्ति का परम अबन्ध कारण परम मङ्गलरूप तप पद को हमारी सदा वन्दना है।

इस प्रकार से तप पद की स्तुति करके उसी दिन अपना कार्य सहनरूप काय क्लेशादि तप का आदर करे। पारणा में आयंबिल आदि तप का अभिग्रह धारण करे। तप के दिन क्लेश कषाय न करे। ओली पर्यन्त मन्द कषाय से वर्ते। कषाय का त्याग ही भावतप है। इस क्षमा से सव धर्म क्रिया सफल होती है। बारह मोदक से मुनिको प्रतिलाभ करावे, पोछे तपस्वी श्रावक आदि की भक्ति करे, शीत-ताप से तपस्वी की सहायता करे। यथा योग्य कनकावली, रत्नावली, मुक्तावल, सिहक्रीडन प्रमुख तप करे। इस प्रकार तप पद का आराधन करे।

इस पद का ध्यान उज्जवल वर्ण से करे। इस पद की आराधना से कनककेतु राजा तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

चौदहवें तप पद आराधन पर कनककेतु राजा की कथा

भरतक्षेत्र में अत्यत मनोहर कापिल्यपुर नगर में महा पराक्रमो विश्वम्भर राजा था । उसके शीलवान, गुणवान, रूपवान कनकावली पटराणी थी उससे कनककेतु नामका राजकुमार था। उस कुमार को योग्य वय में गुरु के पास विद्याभ्यास के लिये रखा। यौवनवय में पहुँचते २ वह सब कलाओ मे प्रवीण हो गया। परन्तु मोहनीय कम के कारण वह कुमार धर्म से विमुख रहा। यह देख राजा विचार करने लगा कि अपने शरीर से उत्पन्न हुआ मैल और रोग जिस तरह अप्रिय और दूर करने योग्य होता है वैसे ही यह मेरे से उत्पन्न धर्महीन अधर्मी पुत्र मुझे अप्रिय और छाड देने योग्य है। राजा इस प्रकार विचार करता है इतन में उद्यानपाल ने आकर सूचना दो कि सम्यग्दशन के दातार श्रुत केवली श्री शातिसूरि महाराज अपने मुनि परिवार सहित पधारे हैं।

गुरु आगमन की सूचना देनेवाले को खूब द्रव्य दे राजकुमार को ले परिवार सहित गुरु को वदन करने आया। विनय सहित वदना कर उचित स्थान पर बैठ गया। पीछे गुरु महाराज ने ससाररूप रोग का नाश करनेवाली देशना आरम्भ की।

हे भव्य जनो ! जो प्राणो इस ससार में धम बिना सुख प्राप्त करना चाहता है तो यह समझना चाहिये कि वह पानी को बिलोकर घी प्राप्त करना चाहता है। दु ख से प्राप्त होने

वाला यह उत्तम मानव जन्म पूर्व पुण्य के संयोग से मिलता है। जो धर्मरहित प्रमाद में ही जन्म व्यतीत करता है वह मूढ़ सुवर्ण के थाल में धूल डालता है, अमृत से पग प्रक्षालन करता है और कौए को उड़ाने के लिये चिंतामणी रत्न फेंकता है—ऐसा समझना चाहिये। यह सम्पूर्ण संसार मोह रूप मदिरा से घोर निद्रा मे पड़ा हुवा है और उस पर विकराल यमराज मुंह फाड़े खड़ा है। इसकी किसी को भी क्या खबर है कि यह यमराज कब और किसको अपने विशाल उदर मे डाल लेगा। इसलिए हे भव्य जनो ! मोहरूप निद्रा से जागृत हो धर्म कार्य में उद्यम करो।

गुरु मुख से देशना श्रवणकर राजा दोनों हाथ जोड़ नम्रता से बोला। हे स्वामी ! यह मेरा पुत्र सर्व कलाओं मे निपुण है परन्तु वह धर्म से विमुख है। इसलिये हे कृपासिंघु ! मेरे इस पुत्र को कभी धर्म रूचि होगी या नही ?

गुरु ने कहा राजन् ! तू इस बारे मे चिंता न कर। क्योंकि जीव अपने कर्मो के कारण ही धर्मी या अधर्मी होता है। जिसकी जैसी गति होनेवाली होती है वैसी ही उसकी बुद्धि हो जाती है। चाहे सूर्य पूर्व से पश्चिम मे उदय होने लगे, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे, मेरु चलायमान हो जाय फिर भी भवितव्यता झूंठी नहीं होती। इसलिये जब भवितव्यता परिपक्व होती है तब प्राणी को धर्म पर रुचि उत्पन्न होती है।

यह सुन राजा ने कहा कि हे प्रभु ! जो भवितव्यता पर ही आधार रख बैठा जाय तो फिर रोगी को रोग की

चिकित्सा और भूखे मनुष्य को भोजन की क्रिया नही करना चाहिये क्योकि भवितव्यता परिपक्व होने पर अपने आप सब ठीक हो जायगा ।

यह सुन सूरि महाराज ने कहा हे नरेश ! द्रव्य क्षेत्रादि की सामग्री सिवाय मनुष्य धम को प्राप्त नही कर सकता । इस पर एक दृष्टात कहता हूँ सो सुनो । एक समय तीन मुनियो ने केवली भगवान के पास आकर पूछा कि हे प्रभु ! हमको कभी मोक्ष मिलेगा या नही ? केवली भगवान ने उत्तर दिया कि हे महाभाग्य ! तुम इसी भव में सब कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करोगे । ज्ञानी का वचन कभी झूठा नही होता ऐसा सोच तीनो मुनियो ने चारित्र छोड गृहस्थ बन विषय सुख भोगने लगे । जब भोगावली कम क्षय हो गये तब वे भोग से विरक्त हो अपने किए आचरणो की निंदा करने लगे । पीछे पुन चारित्र ग्रहण कर शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से कममल का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष गये । इसी तरह तुम्हारा पुत्र भी कम क्षय होने पर इसी भव में धम रूचिवाला होगा और फिर तीसरे भव में महाविदेह क्षेत्र में अनेक जीवो का उपकार करनेवाला तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष में जायगा ।

गुरु से यह वृतान्त श्रवणकर राजा को वैराग्य प्राप्त हुवा । इससे कुमार कनककेतु को राज्य दे बडे उत्सव सहित ससार का नाश करनेवाला निमल चारित्र ग्रहण किया । धीरे २ घोर तपस्या व निर्मल ध्यान से कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया ।

कनककेतु राजा नाना प्रकार के विषय सुख भोगता हुवा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। कुछ समय बाद एक दिन राजा के शरीर में तीव्र दाह ज्वर उत्पन्न हुवा। उसकी पीड़ा से निरन्तर निद्रा रहित अत्यंत दुख पाने लगा। अनेक उपचार करने पर भी व्याधि शांत नही हुई। एक दिन रात्रि मे किसी के मुंह से निम्नांक श्लोक सुना कि---

सुखाय सर्वजंतुनाँ, प्रायः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥
न धर्मेण बिना सौख्यं, धर्मश्चारंभवर्जनात् ॥३॥

अर्थः---सर्व जतुओं की प्रवृति सुख के लिये होती है। परन्तु सुख धर्म बिना नही मिलता और धर्म भी आरंभों को छोड़ने से होता है। सारांश यह है कि सुख चाहनेवाले पुरुषों को धर्म की तरफ मन लगाना चाहिये।

व्याधि से पीड़ित कनककेतु राजा ने जब उक्त श्लोक सुना तो वैराग्य उत्पन्न हुआ और सोचने लगा कि यदि मेरी व्याधि शांत हो जायगी तो अनेक आरम्भ और पाप से भरे इस राज्य को छोड़ सवेरे ही शाश्वत सुख को देनेवाला चारित्र ग्रहण करूंगा। ऐसे शुभ विचार मात्र से ही राजा का रोग दूर हो गया और उसे सुखपूर्वक नीद आई। प्रातःकाल सब मंत्रियों को बुला अपना विचार बतलाया। मंत्रियों ने राजा के विचार का अनुमोदन किया। पीछे राजकुमार मलयकेतु को राजसिंहासन पर बिठा सुपात्रों को दान दे अपार धन सद्मार्ग मे व्यय किया। जिनमंदिर मे महान् उत्सव कर बहुत से मंत्रियों और सामन्तों आदि के साथ श्री शांतिसूरि

महाराज के पास चारित्र ग्रहण किया। फिर गुरु से द्वादशागी का अध्ययन कर शुद्ध चारित्र का पालन करने लगा।

एक दिन गुरु से बीस स्थानक सम्बधी व्यारयान सुना कि जो कोई अरिहत की भक्ति सहित बीसस्थानक की आराधना करता है वह अत मे जिनपद प्राप्त करता है। उसमें भी चौदहवें तप पद की आराधना विधि सहित करता है उस प्राणी को जैसे लघन करने से शरीर के उपचित दोषो का नाश होता है वैसे दुष्कर तपस्या से क्लिष्ट कर्मो का नाश होता है। गुरु मुख से व्याख्यान सुन कनककेतु मुनि ने यह अभिग्रह लिया कि जहा तक यह शरीर है वहा तक निरन्तर द्वादशभेद तप करना, जघन्यचौथभक्त से लेकर उत्कृष्ट छ मास पर्यन्त तपस्या करना। इस तरह विधिसहित त्रिकाल देववन्दन और पारणे आयम्बल करना। ऐसा अभिग्रह लेकर मुनि निरन्तर सतोष और धैर्य से तपस्या करने लगा।

निरन्तर घोर तपस्या करने से मुनि का शरीर तो कमजोर होने लगा परन्तु मुह का तेज दिन प्रतिदिन सूर्य को तरह तेजस्वी होने लगा। एक बार ग्रोष्म ऋतु की प्रचण्ड गर्मी में मुनियो के साथ विहार कर शंखपुरी के पास जाकर सूय सम्मुख आतापना लेने लगे। उस समय देवसभा में इन्द्र महाराज मुनि की प्रशसा करते हुए कहने लगे कि अरे! मुनियो में श्रेष्ठ कनककेतु मुनि धन्य है कि जो घोर तपस्या करते हुए भी जरा भी अनेषणीय भातपाणी ग्रहण नही करते। ऐसा कह वही बैठे २ शकेन्द्र ने भावपूर्वक वन्दना की।

इन्द्र द्वारा मुनि की प्रशंसा सुन वरुण लोकपाल को विश्वास नहीं हुआ इसीलिए मुनि की परीक्षा लेने को उनके पास आया। वहां आकर खेर के अंगारे के समान उष्ण रेत कर दी और जहां २ मुनि गोचरी के लिये जाते वहां सब जगह गोचरी को अशुद्ध कर देता। इस तरह रात दिन कष्ट होने लगा। फिर भी समता के सिन्धु राजर्षि मुनि विषाद रहित हो सब सहन करते। छः माह तक देव ने उपसर्ग चालू रखा और मुनि बिना आहार के दिन निर्गमन करते। गुरु महाराज ने ज्ञानोपयोग से देवोपसर्ग जान कनककेतु मुनि को दूसरे दिन उसी नगर में ब्रह्मचर्य को पालन करनेवाले धनंजय सेठ के घर गोचरी के लिए भेजा। क्योंकि जो निर्मल शीलवान होते है उनके यहां देव भी उपसर्ग नहीं कर सकते। गुरु महाराज की आज्ञा से दूसरे दिन मुनि धनंजय सेठ के घर गोचरी के लिए गये और वहां से शुद्ध आहार पाणी ग्रहण किया। यह देख वरुणदेव ने उस घर मे सुवर्ण की वृष्टि की और प्रत्यक्ष हो मुनिराज की स्तुति कर क्षमा मांग गुरमहाराज के पास आकर पूछने लगा कि हे प्रभु! कनककेतु मुनि को इस घोर तपस्या का क्या फल मिलेगा? इस पर गुरु महाराज ने कहा हे देव! यह मुनि इस तप के प्रभाव से तीर्थङ्कर होंगे। गुरु मुख से यह सुन देव अपने स्थान पर लौट गया। राजर्षि मुनि वहां से काल कर चौथे देवलोक के सुख भोगकर महाविदेह क्षेत्र मे जिनपद प्राप्त कर चिदानन्द पद प्राप्त करेंगे।

पंचदश गौतमपद आराधन विधिः

"ॐ नमो गोयमस्स" इस पद की २० माला गिने।

इस पद के ११ खमासमण देवे । प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे ।

दोहा

छठ्ठ छठ्ठ तप करे पारणो, चउनाणी गुणधाम ।
ये सम शुभ पात्र को नहीं, नमो नमो गोतम स्वाम ।।

१ श्री गौतम गणधराय नम
२ श्री अग्निभूति गणधराय नम
३ श्री वायुभूति गणधराय नम
४ श्री व्यक्तस्वामि गणधराय नम
५ श्री सुधर्मा स्वामि गणधराय नम
६ श्री मण्डितस्वामि गणधराय नम
७ श्री मौर्यपुत्रस्वामि गणधराय नम
८ श्री अकम्पितस्वामि गणधराय नम
९ श्री अचलभ्रातृ गणधराय नम
१० श्री मेतार्यस्वामि गणधराय नम
११ श्री प्रभासस्वामि गणधरायनमः
१२ चतुर्विंशति तीर्थङ्कराणा चतुर्दशशत द्विपचाशद गणधरेभ्यो नम

उक्त खमासमण के बाद १२ लोगस्स का कायोत्सग करे

स्तुति

स्वनिवद्ध गणवर नाम कर्म विशप प्राणो तोर्थङ्कर को प्रथम देशना प्रभु के मुख से श्रवण करके परम वैराग्य से उल्लसित चित्त होकर श्री जिनेश्वरजो के हाथ से दीक्षा ग्रहण कर और परमेश्वर को तोन वार प्रदक्षिणा करके खमासणा देकर कहे कि हे भगवन्, हे इच्छाकारिन् वाचना प्रसाद दोजिए। एसी परमेश्वर से वाचना मांग और उसी समय इन्द्र वज्रमणि के थाल में चन्दन आदि ५२ सुगन्धित द्रव्य चूर्ण भरकर निकट खड़ा रहे तब परमेश्वर सिंहासन से कुछ उठकर थाल मे से चूर्ण उठाकर मुख्य गणधर के सिर पर डाला, 'उपन्नेवा' उच्चारण करते हुए दूसरे गणधरों के सिर पर भो वासक्षेप डाला, तव गणधरों को लब्धि प्रगट हुई। सव गणधरों को दृष्टि में जितने जोव पदार्थ की उत्पत्ति है सो सब देखने में आतो है, तव गणधर विचार करते है कि ये अनन्त उत्पाद कहां प्रवेश करेगा, तव फिर खमासणा पूर्वक प्रदक्षिणा करके वाचना मांगता है तो फिर प्रभुजी पूर्ववत् 'विधनेवा' इस पद को उच्चारण करते हुए वासक्षेप डालते है, तव गणधरों को विनाश की प्राप्त होती हुई चोजें देखने में आती है। जो उत्पन्न होता है वह विनष्ट होता है। इस प्रकार प्रति समय विनाश देखकर विचारते हैं कि जब ऐसे अनन्त विनाश हो रहा है तव क्या होगा। फिर पूर्वोक्ति प्रकार से वाचना मांगते हैं, और प्रभुजी पूर्ववत् 'ध्रुवेषा' ऐसा उच्चारण करके वासक्षेप गणधरों के सिर पर डालते हैं, तो गणधरों को दृष्टि में ये पदार्थ भासते है,

और एक नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व पर्याय का नाश होता है। इस प्रकार वस्तु का उत्पाद, व्यय ध्रौव्य का ज्ञान रूप त्रिपदी को पाकर गणधर द्वादशांगी की रचना करते हैं। उसमें ५ अधिकार है सो सब सूत्र की रचना करते है। बारहवां अङ्ग दृष्टिवाद है सो सम्पूर्ण गणधर लब्धिवन्त को होता है। चौदह पूर्व जिसका एकदेश है ऐसे गणधर भगवान् चार ज्ञान, अनेक लब्धि सम्पन्न तीर्थङ्कर की उपमा को पाते हैं, शासन व्यवहार की स्थापना श्री गणधर कृत होता है।

इसमें चौबीस तीर्थङ्करों के १४५२ गणधरों को हमारी नित्य त्रिकाल वन्दना है। इस प्रकार गणधर की स्तुति करके पीछे पात्र, महापात्र, मध्यम पात्र, जघन्य पात्र का विचार करें। वह रत्नपात्र महामुनि है, सुवर्ण पात्र देशविरति समकिती है, ताम्र पात्र मार्गानुसारी है, लोहपात्र प्रधान नष्ट करनेवाले तपस्वी हैं और शेष अज्ञानी मिथ्यादृष्टि अथवा अपात्र मिथ्यात्वी पात्र कहे जाते हैं। मिथ्यादृष्टि को हजार लाख देने का जो फल होता है वह एक देशविरति श्रावक के भोजन कराने से होता है। हजार देश विरति को देने से जो लाभ होता है वह एक महाव्रती साधु को देने से फल होता है। हजार साधुओं को दान का फल विचार कर गौतम ने छट के पारणे बड़े भाव से साधुओं को खीर खांड का भोजन दिया। आचार्य की त्याग पूजा करें, औषध वस्त्रादि देवे, गणधर की मूर्ति बनवावें तथा जिनेश्वर के आगे २४ नारियल रखें, १४५२ सुपारी आदि फल रख इस तरह से पञ्चदश पद का आराधन करें।

इस पद की आराधना से हरिवाहन राजा तीर्थङ्कर हुए। जिनकी कथा इस प्रकार है।

विना भय के नहीं है। जहां भय है वहां सुख कैसे हो सकता है ? इसलिए हे भव्य जना ! तुम अनन्त सुख को देनेवाले वैराग्य की शरण लो।'

इस तरह गुरु मुख से देशना श्रवण कर एवम् अवसर देख राजा ने पूछा कि हे प्रभु ! आप कृपा कर वताइये कि धनेश्वर सेठ के घर कल उत्सव और आज विषाद किसलिए हुआ।

गुरु ने कहा राजा यह सव पूर्व कर्म का फल है। इस सेठ ने पूर्व भव में महा मोह के वश हो धर्म वुद्धि से अनेक जीवों को दु:ख पहुँचा कर खूब धन खर्च किया था। मिथ्या-दर्शन से शुद्ध देव गुरू के धर्म से पराङ्मुख हो हरिहरादि कामी और सरागी, गुणहीन देवों के प्रति देवों की वुद्धि, ब्रह्मचर्य रहित परिग्रह धारण कर अनेक प्रकार के आरम्भ समारम्भ करनेवाले कुगुरु के प्रति गुरु की वुद्धि तथा दयारहित और हिंसा से पूर्ण कुधर्म के प्रति धर्मवुद्धि रखी जो महा मोह के प्रभाव से मिथ्यात्व है। किसी व्याधि से पीड़ित कोई प्राणी उसी जन्म में दु:खी होता है परन्तु मिथ्यात्व रूपी महा व्याधि से पीड़ित प्राणी तो अनेक जन्म पर्यन्त दु:ख प्राप्त करता है। यह समझ मिथ्यात्व का त्याग कर शुद्ध देव, गुरू और धर्म के प्रति रुचि रखना यही परम श्रेय का कारण है।

इस प्रकार गुरु की देशना श्रवण कर राजा को संवेग हुआ और राजमहल में आकर पुत्र को राज्य दे उत्साह

पूवक सयम अङ्गीकार किया। समिति गुप्तियुक्त चारित्र का पालन करते हुए द्वादशांगी का अध्ययन किया।

एक दिन गुरु से देशना में बीस स्थानक के बारे में व्याख्यान में सुना कि जो महाभाग्य अन्नपानादि से भक्ति-पूर्वक साधु सविभाग का पालन करता है वह श्री जिनेश्वर की सम्पदा प्राप्त करता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है।

यह अधिकार सुन राजर्षि मुनि हरिवाहन ने अभिग्रह लिया कि आज से निरन्तर उत्तम मुनियो को अन्नपानादि देकर उसमें से जो शेष रहेगा वही मै काम में लेऊगा। ऐसा अभिग्रह ले निरन्तर मुनियो की आहार पानी औषधादि से भक्ति करने लगा। एक समय इन्द्र महाराज ने देव सभा में हरिवाहन मुनि की साधु सविभाग पर अनन्य भक्ति देख प्रशसा की। इस पर शङ्कित हो सुवेल देव मुनि की परीक्षा करने के लिये कपट साधु का रूप बनाकर श्रीपुरपत्तन में जहा हरिवाहन मुनि थे वहा तपस्या से क्षीण देहवाला बन पारणा करने के लिए आया। उस समय अपने काम में आने वाला जो आहार था वह उसको दे दिया। पीछे पुन अपने लिए आहार ला गुरु के पास आलोची सज्जाय कर गोचरी करने बैठा। इतने में उस मायावी देव ने हरिवाहन मुनि के देह में अत्यन्त दु सह वेदना उत्पन्न कर दी। यह वेदना देख गुरु आदि साधु अत्यन्त खेद करने लगे। पीछे वैद्य के बताये अनुसार किसी गृहस्थ के घर से जल्दी औषधि ला मुनिराज को लेने के लिए कहा। परन्तु मुनि ने मना कर दिया।

इसलिए गुरु ने कारण पूछा। उत्तर में मुनि ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि हे प्रभु ! यह औषध किसी सुपात्र मुनि को दिए विना में ग्रहण नहीं करूंगा चाहे इससे भी अनन्तगुणी वेदना हो और कदाचित प्राण भी चले जांय। क्योंकि जो यह अन्य मुनियों के दिये विना ग्रहण करता हूं तो मेरे व्रत का भंग होता है और मै दुर्गति को प्राप्त करनेवाला होता हूँ। इसी संविभाग व्रत के पालन करने से वाहु मुनि समस्त भरतक्षेत्र के स्वामी हुए और नन्दीशेण मुनि ने वासुदेव की ऋद्धि प्राप्त की। इसलिए हे प्रभु मुझे चाहे जितनी असह्य वेदना होगी तव भी लिए हुए व्रत से मै जरा भी विचलित नही होऊंगा।

इस प्रकार लिए हुए व्रत मे दृढ़ परिणामवाले और अतुल वेदना होते हुए भी समपरिणाम वाले मुनि को देख देव प्रत्यक्ष प्रकट हो व्याधि को दूर कर उनकी प्रशंसा कर क्षमा मांगने लगा। पीछे देव ने गुरु से पूछा कि हे प्रभु इन मुनि ने निश्चल संविभाग व्रत का पालन किया इससे इनको क्या फल मिलेगा ? गुरु ने कहा कि इन्होंने निश्चल भाव से व्रत का पालन किया इसलिए इन्होंने जिन नामकर्म का वंध किया है। यह सुन देव अपने स्थान को लौट गया। हरिवाहन मुनि वहुत दिन पर्यन्त शुद्ध चारित्र युक्त मुनि संविभाग व्रत की आराधना कर अच्युत कल्प में महान् समृद्धिशाली देव हुए। वहां से चव महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर अव्यावाध मोक्ष प्राप्त करेगे।

पोडश जिन पद आराधन विधि

"ॐ नमो विद्यमान जिनेश्वराय नम"

इस पद की २० माला गिनें।

इस पद के २० खमासमण देवें। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे।

दोहा

दोष अढारे क्षय थया, उपज्या गुण जस अग।
वैयावच्च करिये मुदा, नमो नमो जिन पद सग॥

१ श्री सीमन्धर जिनेश्वराय नमः
२ श्री युगमन्धर जिनेश्वराय नम
३ श्री बाहु जिनेश्वराय नम
४ श्री सुबाहु जिनेश्वराय नम
५ श्री सुजात जिनेश्वराय नम
६ श्री स्वयप्रभ जिनेश्वराय नम
७ श्री ऋषभानन जिनेश्वराय नम
८ श्री अनन्तवीर्य जिनेश्वराय नम
९ श्री सूरप्रभ जिनेश्वराय नम
१० श्री विशाल जिनेश्वराय नम
११ श्री वज्रधर जिनेश्वराय नम
१२ श्री चन्द्रानन जिनेश्वराय नम.

सौलहवें वैयावच्च पद की आराधना पर जीमूतकेतु राजा की कथा

जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत में अत्यंत मनोहर पुष्पपुर नगर था। वहा महान् प्रतापी जयकेतु राजा राज्य करता था। उसके शीलगुण से विभूपित रति समान स्वरूपवान जयमाला रानी से जीभूतकेतु पुत्र था। कुमार यौवनावस्था मे पहुँच सर्व कलाओं मे कुशलता प्राप्त कर अपने सद्‌गुणों से सब लोगो का प्यारा वन गया। इसके सिवा वुद्धि और शौर्यादि गुणो से उसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई। कुमार के रूप गुणादिक की कीर्ति सुनकर रत्नस्थलपुर के राजा सुरसेन की पुत्री जो विद्या कला में सरस्वती के समान थी कुमार से प्रेम करने लगी और उसी के साथ व्याह करने का निश्चय किया। सुरसेन राजा ने पुत्री के अभिप्राय को जानकर स्वयंवर मंडप तैयार किया। उसमें सव देशों के राजाओं और राजकुमारों को आमंत्रित किए। जीभूतकेतु को भी आमंत्रित किया। कुमार पिता की आज्ञा ले थोड़ी सेना सहित रत्नस्थलपुर के लिए रवाना हुवा। मार्ग में सिद्धपुर नगर के पास अचानक कुमार को मूर्छा आ गई। यह देख सब अत्यंत दुखी हो गये। अनेक प्रकार के मंत्र और औषधियों के उपचार सब कुपात्र को दिए गये दान के माफिक निष्फल हुए। इतने मे वहां अनेक गुणों के समुद्र और श्रुत के जानकार श्रीअकलंकदेव आचार्य पधारे। उनके प्रभाव से कुमार को मूर्छा दूर हुई

और तत्काल उनकी वदना करने के लिए उठा। विधि सहित विनय पूर्वक वदना कर कुमार गुरु के सामने बैठा। इसलिए उसे प्रतिबोध देन के लिए करूणासिंधु गुरु महाराज ने ससाररूप व्याधि का नाश करने में अमृत समान देशना देना आरम्भ की।

यह जीव कषाय के वश आर्त और रौद्र ध्यान कर जिस प्रकार अरण्य में पशु भ्रमण करता है वैसे ससार में अनेक योनियो में परिभ्रमण करता है। ऐसी कोई योनो, कोई कुल, कोई जाति, कोई स्थान नही जहा इस जीव ने अनन्त वार जन्म मरण नही किया हो। जो मनुष्य पापी, निर्दयी और कुरुप होता है वह नरक से आया है ऐसा समझना चाहिए। जो कपटी और निरन्तर क्षुधा से आतुर चित्तवाला होता है उसे तिर्यंच गति से आया हुवा समझना चाहिए। जो सुबुद्धि वाला, ज्ञान और विवेकी हो उसे मनुष्य गति से आया हुवा जानना चाहिए। सौभाग्यवान, प्राज्ञ और कवि हो उसे स्वर्ग से आया हुवा समझना चाहिए। इसी प्रकार जो प्राणी तीव्र कषायी, अति आरभ परिग्रह और विषय में रत तथा मांसाहार में लुब्ध हो उसे नरकगामी जानना। मायावी, कटुभाषी, और अविरति हो उसे तिर्यंच गति में जानेवाला समझना। दयालु, सत्यभाषी, दानी और सदाचारी हो उसे मनुष्य गति प्राप्त होनी है। सुपात्र को दान देनेवाला, मिष्टभाषी, त्रिकाल जिनपूजा करनेवाला और सम्यक क्रिया करनेवाला सुर गति को प्राप्त करता है।

देह वाले मुनि का रूप धारण कर जहां जीभूतकेतु मुनि थे वहां आया। मुनि ने उसे उपाश्रय में रखा और पीछे उसके आहार के लिए जीभूतकेतु गोचरी लेने के लिये गये। तब देव ने दूसरे मुनि का वेष बना कर मार्ग में राजर्षि मुनि से मिला और अति क्रोध युक्त वचनों से तर्जना करने लगा। फिर भी मुनि जरा भी खिन्न नही हुए।

पीछे भानुसेठ के वहां से माधुकरी भिक्षा ग्रहण कर उपाश्रय मे आया और ग्लान मुनि को आहार कराया। पीछ दाह ज्वर की उपशान्ति के लिये किसी वैद्य को बुलाया। वैद्य ने व्याधि की परीक्षा कर कहा कि इस मुनि को पाकां फल का रस जो मरचां के रस जैसा होता है लाकर दिया जावे तो व्याधि दूर हो सकती है। यह सुन जीभूतकेतु मुनि लेने के लिये नगर में घर २ घूमने लगे परन्तु देव माया से कहीं भी वह नहीं मिली। इससे खिन्न हो पीछे उपाश्रय में आया। अब ग्लान मुनि क्रोधित हो विकराल मुखाकृति कर तीव्र और दुःसह वचनों से तर्जना करने लगा। फिर भी राजर्षि मुनि जरा भी खेद रहित ग्लान मुनि के चरणों म नमस्कार कर कहने लग। कि आज मुझ से आपका वैयावच्च नहीं हुवा इसका मुझे बड़ा दुख है और यह मेरे अंतराय कर्म का कारण है। यह सुन वह ग्लान मुनि अवधिज्ञान से मुनि के भाव जानने लगा तो शुद्ध भाव युक्त देखा। इसलिए देव प्रकट हो राजर्षि मुनि के चरणों को स्पर्श कर कहा कि हे मुनि श्रेष्ठ ! आपको धन्य है। आप खरेखर समता के सिंधु

हो। मैंने आपकी जो तर्जना की उसके लिए क्षमा करें। ऐसा कह देव अपने स्थान को लौट गया। जीमूतकेतु मुनि ने शुद्ध भाव से वैयावच्च किया जिससे जिन नाम कर्म उपार्जन किया। निरतिचार चारित्र का पालनकर अन्त में अनशन कर विजय विमान में देव हुए। वहा से चव कर श्री कच्छ विजय में तीर्थंकर हो मोक्ष प्राप्त करेंगे। यशोमति आर्या उन्ही को गणधर होकर अव्याबाध मोक्ष का सुख प्राप्त करेंगी।

वन्दना नमन सत्कार सन्मान करे वही दिन हमारा धन्य है। उन्हीं की आज्ञा पालन करे क्रिया की अनुमोदन करे वही हमारा परम गुरु है इत्यादि प्रकार से स्तुति करके पारणा के दिन ५ मोदक रूपा वा सोना पर चारित्र गर्भित करके परमेश्वर के आगे रखे तथा चतुर्विध संघ की द्रव्य भाव से भक्ति करे। उन्मार्गगामी को सुमार्ग मे लाके स्थिर करे।

इस पद की आराधना से पुरन्दर राजा तीर्थङ्कर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

सतरहवें संयम पद आराधन पर पुरन्दर राजा की कथा

वणारसी नगरी में विजयसेन राजा न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करता था। उसके पद्ममाला और मालती नाम की दो स्वरूपवान रानियां थी। उनमे पटराणी पद्ममाला राणी के पुरन्दर समान कामदेव को भी पराभव करे ऐसा पुरन्दर नामका कुमार हुआ। धीरे २ वह कुमार बड़ा हुआ और समस्त कलाओं मे निपुण हो यौवनावस्था मे पहुँचा।

एक दिन कुमार अकेला ही अरण्य मे घूमने गया। वहां उसने एक मुनि को देखा। इसलिए उनके पास जा वंदना कर सन्मुख बैठ गया। इसलिये उन गुणनिधि मुनि ने देशना दी कि सर्व संपदाओं का कारणरूप जो धर्म है उसका मूल बीज पर स्त्री का त्याग करना है। उन पुरुपों को धन्य है जो देवांगना समान स्वरूपवाली और हथनियों को तरह मस्त

चाल से चलनेवाली प्रमदाओ को देख अपने चित्त में विकार उत्पन्न नही होने देते । इसी तरह उस स्त्री को भी धन्य है जो रतिपति समान अन्य पुरुष को देख जरा भी अपने मन को शिथिल नही होन देती और विधाता से मिले पति में ही सतोषवृत्ति रख आनन्द मनाती है । इस तरह जो स्त्री पुरुष शीलव्रत मे दृढ रहते है वे अनेक सम्पदाओ के भोगनेवाले होते है ।

इस प्रकार मुनि की देशना सुन कुमार पर स्त्री त्याग का व्रत लेकर अपने स्थान पर लौट गया । लिए हुए व्रत को जरा भी अतिचार न लगे इस प्रकार दृढ मन से छोटी को बहन और बडी को माता समान गिन निमल भाव से व्रत का पालन करने लगा । अनक मृगलोचनो ललित ललनाए कुमार को राग से देखती परन्तु कुमार तो उनके सामने दृष्टि भी नही डालता ।

एक बार कुमार की सौतेली माता मालती राणी अनग समान अद्भुत रूपवाले कुमार को देख उस पर अनुरक्त हो गई । शशी समान कातियुक्त यौवनपूर्ण कुमार को जैसे २ सराग से देखती वैसे २ वह उस पर विशेष आसक्त हो विरह व्यथा भोगने लगी । इस विरह व्यथा से मालतो समान मालती राणी का शरीर क्षीण होने लगा । उदासीन वदन से निश्वास डाल कुमार को चाहने लगी । एक दिन कामाग्नि से अधिक सतप्त और हिताहित विवेक शून्य चित्त वाली राणी ने दासी को भेज कुमार को बुलाया । कुमार को आता देव

मालती राणी हर्ष से खड़ी हुई। प्रफुल्लित हो उसके सामने गई और आदर पूर्वक बोली--कुमार आओ, पधारो, बहुत दिनों में आपके दर्शन हुए। क्या आप विदेश गये थे ?

कुमार ने कहा---नही, यहीं था। विना कारण बाहर नहीं निकलता। परन्तु माताजी आपने आज मुझे क्यों बुलाया ?

कुमार ! आप मुझे माताजी कह कर कैसे बुलाते हो ? क्या मै तुम्हारी माता होती हूँ। तुम्हारी माता तो पद्ममाला है। ऐसा कह कुमार पर कटाक्ष किया। यह देख कुमार समझ गया कि राणी विकार के वशीभूत हो अपनी स्थिति को भूल गई है। यह समझ वह बोला---पद्ममाला तो मेरी जन्म देने वाली माता है और आप अपरमाता हो। सिर्फ इतना ही फर्क है। परन्तु इससे तुम माता नही हो ऐसा नही हो सकता।

राणी ने कहा नही, नही, मै और तुम तो समान उम्र वाले है इसलिए तुम्हारा और मेरा यह सम्बन्ध शोभा नहीं देता। अपना सबध तो.........इतने मे कुमार ने राणी को आगे बोलने से रोक कहने लगा---माताजी ! दूसरी उलटी सीधो बाते करना छोड़ यह बताओ कि मुझे यहां क्यों बुलाया है सो कहो।

राणी स्मित वदन से कटाक्ष करती हुई बोली चतुर कुमार ! क्या तुम अपनी इतनी बातचीत से मेरे बुलाने का मतलब नहीं समझे ?

कुमार दुखी होकर बोला—नही मैं तो कुछ भी नही समझा। स्पष्ट रूप से समझाओ।

राणी तीव्र कामाग्नि से सतप्त हो कुमार का हाथ पकड बोली—रसीले कुमार! जो नही समझे हो तो अब मैं स्पष्ट कहती हूँ कि मेरा और आपका सम्बन्ध माता व पुत्र का नही, परन्तु प्रेमी व प्रेमिका का रखना चाहती हूँ। आपके पिता वृद्ध हो गये है और मुझे जरा भी प्रिय नही है। इसलिए मेरी उछलती नदी के पूर समान यौवन को भोगने वाले बनो। आपकी मोहक मूर्ति मेरे हृदय में बहुत दिनो से रम रही है। आज आपसे मिलन पर मैं भाग्यशाली हुई हूँ। हे दयालु कुमार! मेरी इच्छा को भग नही कर मुझे स्वीकार कर मेरे दुख को शात करो। मैं आपकी दासी हूँ।

राणी के वचन सुन कुमार कान पर हाथ रख बोला—माताजी! माताजी! आप काम रूपी अग्नि से पीडित हो हिताहित एवम् धर्माधर्म से विवेक शून्य चित्त वाली हो इन्द्रिय-जन्य क्षणिक सुख की लालसा के लिए इस भव और पर भव में महान् दुख हेतु रूप विषय रूपी विष पीकर क्यो दुख मोल लेती हो? पर स्त्री लपट पुरुष और पर पुरुष लपट स्त्री को स्वप्न में भी लेश मात्र सुख नही मिलता। गुरु पत्नि, पिता पत्नि, लघु पत्नि और पुत्र पत्नि के साथ जो अधम पुरुष सगम करता है वह नीच भयकर रौरव नर्क में पड अनन्त दुखो का भोगने वाला होता है। विष खाकर मर जाना अच्छा, अग्नि में प्रवेश करना भी उत्तम और पर्वत से कूद कर प्राण

गंवाना भो श्रेष्ट है परन्तु पर स्त्रो के साथ संगम करना जरा भी ठीक नहीं है। कृत्याकृत्य से विवेक शून्य चित्त वाली माता ! जरा हृदय मे विचार कर मन को काबू मे कर विकार से विमुख हो आर्हतोक्त धर्म में मन को लगाओ ऐसा कह कुमार जिस रास्ते से आया था उसी रास्ते वापिस लौट गया।

इस तरह फटकार कर चले जाने पर पापोणो मालती राणी ने स्त्री चारित्र शुरू किया। अपने हाथ से ही अपनी कंचुक तोड़ डाली, हृदय पर नख के निशान कर लिए। पीछे रोती हुई महल के एकान्त स्थान में रुष्ट होकर सो गई। थोड़ी देर बाद उसी राणी के महल मे राजा आया। राजा ने राणो को क्रोधयुक्त और एकान्त में उदासीन व रोती हुई देख मीठे वचन से पूछा, प्रिया ! आज यह विचित्र रूप क्यों धारण किया है ? क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है ? इस प्रकार मृदु बचन से बुलाने पर भी कपट मूर्ति राणी ने एक शब्द भी नहीं कहा। पुनः राजा ने सोगन दे स्नेह पूर्वक पूछा। प्यारी ! बोल तो सही, आज ऐसी क्यों हो गई हो ? क्या किसी ने तेरी आज्ञा का अनादर किया है ? जो भी बात हो वह शीघ्र मुझे कह। मै उसे उचित शिक्षा दूंगा। यदि तू कुछ नहीं कहेगी तो मुझे क्या मालूम होगा। तुझे मेरी सोगन है। जो बात हो वह खुशी से कह।

राजा ने सोगन दे बहुत आग्रह किया तब वह पापी पिशाचिनी गद्गद् हो बोली मै क्या कहूँ, मेरे शरीर से क्या

आपको पता नही लगता। देखो! यह मेरे कचुक को चीर डाली, हृदय पर नख के कितने चिह्न हो रहे हैं।

राणी का इस प्रकार का बदन देख राजा क्रोधित हो बोला। बता, जल्दी बता, किस नर पिशाच चाडाल ने यह अकार्य किया है? मै उससे इसका बदला अभी लूगा।

राजा को ठीक स्थिती में देख, राणी बोली। महाराज! दूसरे की क्या ताकत है जो अन्त पुर में आ सके। परन्तु काम कुठाम को नही जानने वाले कामाध नर पिशाच आपके कुमार ने जब मै यहा सो रही थी तो आकर मुझे पकडी और यह हालत कर दी।

राणी की उक्त बात सुन राजा क्रोधान्ध हो लाल २ नैत्र कर वहाँ से शीघ्र पद्ममाला राणी के महल में जहा कुमार था आया और कुमार को पुकार कर बुलाया। पुरन्दर कुमार पिता की क्रोधित आवाज सुन मन में समझ गया कि अवश्य सौतेली माता के कारण से हो कुछ नई पुरानी बात हुई है। फिर अपने महल से बाहर आकर दोनों हाथ जोडकर विनय-पूर्वक प्रणाम कर बोला—पिताजी! क्या आज्ञा है? राजा को क्रोधित देखकर कुमार नीची गरदन कर खडा रहा। इससे राजा को विशेष सन्देह हुआ कि अपराधी मनुष्य कभी सन्मुख नही देखता इसलिए अवश्य इसने ही यह कुकम किया है। ऐसा समझ राजा अत्यन्त क्रोधित हो कहने लगा। अरे नराधम! नीच! कुलागार कुपुत्र! मुझे स्वप्न में भी यह आशा नही थी कि तू ऐसा पिशाच वृत्ति वाला पुरुष है।

कुमार ने कहा–पिताजी। मेरा दोप क्या है वह आप कहो। मैंने कभी आपकी आज्ञा का उलंघन कर कोई अकार्य नहीं किया। राजा ने कहा अरे नीच ! तू मुख से मीठा बोलने वाला परन्तु हृदय मे हलाहल जहर भरा हुआ पिशाच है। तू आगे बोलना बन्द कर, चांडाल भी जो काम नहीं करता वह कार्य करके सत्यवादी बनकर पाप छिपाना चाहता है। कुमार ने कहा–पिताजी! आप क्या कहते हे वह तो मेरी समझ मे कुछ आता नहीं। चांडाल से भी अधर्म कार्य करने में मेरी प्रवृत्ति हो ऐसा स्वप्न में भी होना कठिन है। इतना होने पर भी आप स्पष्ट कहो कि मेरे से कौनसा अकार्य हुआ है। राजा ने कहा–अरे पलीत ! क्या तू स्पष्ट कहलवाना चाहता है। चांडाल ! तू तेरी सौतेलो माता के साथ अगम्य गमन करते हुए भस्मीभूत क्यों नहीं हो गया ? राजा के ये शब्द सुनकर कुमार कान पर हाथ दे चिल्ला कर बोला–अरे प्रभु ! यह मे क्या सुनता हूं। इतने में राजा कहता है कि तू क्या सुनता है, तू तेरे किये काले कार्य को सुनता है। अरे कुलांगार कुमार ! तू पुत्र होने से अवध्य है इसलिए मृत्यु दण्ड नही देता हूं परन्तु जहाँ तक मेरी आज्ञा चलती है वहां तक की भूमि में तुझे अपना पैर भी नही रखना चाहिए। कुमार ने कहा–पिताजी ! आप इस विषय मे सत्यासत्य तो मालूम कीजिए कारण मै बिल्कुल अपराधी नही हू। राजा ने कहा–अब एक शब्द बोले बिना अभो ही नगर से बाहर चला जा नहीं तो मेरी क्रोधाग्नि मे जलकर

भस्म हो जायगा । अब कुमार ने सोचा कि विशेष खुशामद करना व्यर्थ है । ऐसा सोच माता-पिता को प्रणाम कर हाथ में तलवार ले एकदम नगर बाहर निकल गया । पद्ममाला राणी पुत्र के वियोग से दु खी हो मूछित हो गई। पीछे सावधान हो रुदन करती हुई विचारने लगी कि अवश्य मेरे पुत्र को देश निकाला दिलानेवाली मेरी सौत मालती का ही यह काम है। ऐसा सोच शोक पूर्ण हृदय से दिन व्यतीत करने लगी ।

कुमार वहां से निकल जगल की तरफ चला। वहां एक पल्लिपति के साथ युद्ध हुवा। इसमें पल्लिपति को जीत कुमार आगे बढा । अन्त में वह नदीपुर के उद्यान के पास आया। वहां सुवर्णमय दड कलश और ध्वजा से सुशोभित श्री ऋषभ-देव भगवान का मन्दिर देखा। इसलिए शुद्ध जल से स्नान कर भावपूर्वक उल्लसित हृदय से भगवान की सेवा की। पीछे आनन्दपूर्वक हृदय से भगवान की प्रतिमा को देखते हुए स्तुति करने लगा। इतने में वहां कोई सुन्दर वस्त्राभूषण से विभूषित देव समान काति वाला पुरुष आया। उसे देख कुमार स्तुति पूणकर बाहर आकर उस पुरुष को प्रणाम कर मधुर वचन से बोला– अहो! भाग्यशाली! आप कौन हैं? और यहां अचानक अकेले आपका आगमन कैसे हुआ है? यदि कोई आपत्ति नही हो तो अपना वृत्तान्त कहो।

कुमार के विनययुक्त मधुर वचनो से आकर्षित हो आया हुआ दिव्य पुरुष स्नेहपूर्वक बोला—कुमार!

मे सिद्धगिरि पर रहनेवाला विद्या सिद्ध पुरुप हूँ। तेरे पुण्य प्रताप से विद्या देवी की आज्ञा से मै तुझे सर्व अर्थ को देने वाली त्रैलोक्य स्वामिनी नामक विद्या देने आया हूँ। वह विद्या दशांग होम कर विधि सहित एक लाख जप करने से तुरन्त सिद्ध होगी। ऐसा कह उस पुरुप ने वह विद्या कुमार को दी। कुमार ने विधि अनुसार जाप कर विद्या सिद्ध करी। पीछे वहाँ से रवाना हो कुमार नंदीपुर नगर में गौरी वेश्या के घर पांच सौ मोहरें दे रहने लगा। विद्या के प्रभाव से खूब द्रव्य प्राप्त कर वह द्रव्य हमेशा दूसरे मनुष्यों को दान में दे देता। इससे नगर में उसकी कीर्ति फैलने लगी। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर उसकी नंदन मंत्री के पुत्र के साथ मित्रता हो गई।

एक दिन दोनों मित्र आनन्द से वार्तालाप कर रहे थे इतने में राज्य भवन की ओर कोलाहल सुन कुमार ने मंत्री के पुत्र से पूछा कि हे मित्र यह कोलाहल किस कारण हो रहा है? मंत्री पुत्र ने कहा– आज सरस्वती समान सोन्दर्यवाली राज-कुमारी बंधुमति अपने महल के झरोखे पर सखियों सहित बैठी थी, उस समय आकाशमार्ग में जाते हुए किसी विद्याधर ने उसे देख, उस पर मोहित हो उसका हरण कर लिया है। इससे राजा को खबर होते ही सब सुभटों को उसे पकड़ लाने की आज्ञा दी परन्तु वह तो आकाशमार्ग से न जाने कहां चला गया और सुभट यही रहकर आवाज कर रहे हैं उसी का यह कोलाहल है। अब ऐसा कौन है जो उस कन्या को ला सके ?

उपरोक्त हाल सुन पुरन्दर कुमार बोला कि हे मित्र तू राजा से जाकर कहना कि मेरा मित्र राजकुमारी को लाकर देगा।

कुमार के कहने से मन्त्रीपुत्र ने राजा के पास जाकर वह बात कही, इसलिए राजा ने पुरन्दर कुमार को आदर से बुलाकर कहा—हे वीर कुमार! जो आप मेरी प्रिय पुत्री को उस पापी विद्याधर के पास से छुडाकर लाओगे तो उस कन्या का विवाह आपके साथ कर दूगा।

कुमार ने कहा—महाराज सात दिन में राजकन्या को ढूढकर आपके पास ले आऊगा। यह म प्रतिज्ञा करता हू। यह प्रतिज्ञा कर राजा की आज्ञा ले कुमार अपने स्थान पर आया। वहा आकर विश्व स्वामी की विद्या का ध्यान कर एक दिव्य विमान बनाकर उसमें बैठ मन में सोचने लगा कि जहा हरण की हुई राजकन्या हो वहा पहुँच जाऊ। ऐसा विचार करते ही वह विमान आवाज करता हुआ आकाशमार्ग में चला और क्षण भर में वैताढ्य पवत पर परनारी लपट मणिचूड विद्याधर की गघ समृद्धि नगरी में जहा राजकुमारी को छिपा रखा था वहा आकर रुक गया। इतने में मणिचूड विद्याधर भी वहा आ पहुँचा। वह कुमार को देख विश्व स्वामी की विद्या के प्रभाव से घबरा गया। इसलिए कुमार से बिना कुछ कहे सुने राजकुमारी को उसके सुपुर्द कर उसका मित्र बन गया। पीछे वहा से राजकन्या को लेकर पुरन्दरकुमार ने नदीपुर नगर में आकर राजा राणी को कन्या सुपुर्द की।

राजा ने भी अपने वचन के अनुसार बड़े ठाठ वाट से पुरन्दरकुमार के साथ वन्धुमति का पाणीग्रहण संस्कार किया। कन्यादान में पुष्कल धन दिया और एक सात खण्ड वाला महल रहने को दिया। विविध प्रकार के भोग भोगता हुआ कुमार सुख पूर्वक वहां रहने लगा।

एक दिन उस नगर के उद्यान में तीन ज्ञान को धारण करने वाले अनेक गुणों के समुद्र श्रीमलयप्रभ आचार्य अनेक मुनियों के साथ पधारे। उस समय पुरन्दरकुमार सहित राजा सूरि महाराज को वन्दन करने गया। विनयपूर्वक प्रदक्षिणा दे सव अपने २ उचित स्थान पर बैठ गये तब गुरू महाराज ने देशना आरम्भ की।

'अहो! भव्यजनो! सेंकड़ों भवों के वाद प्राप्त हुए, इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर जो प्राणी किसी भी प्रकार का सुकृत नहीं करता और केवल प्रमाद में अपना जीवन विताता है, वह अनन्त संसार में भ्रमण करता है। जो प्राणी पापानुवन्धी पुण्य करता है वह किंपाक फल की तरह फल प्राप्त करता है और जो भाग्यशाली पुण्यानुवन्धी पुण्य करता है वह कल्पतरु की तरह फल प्राप्त करता है। सव प्राणियों पर अनुकम्पा, विधि सहित वीतराग देव की पूजा वगैरह करने से प्राणी पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जन करता है और वही प्राणी जिनेश्वर भाषित शुद्ध धर्म प्राप्त कर सकता है। धर्म दो प्रकार का है। एक समकित मूल वारह व्रत रूप गृहस्थ धर्म और दूसरा पंच महाव्रत रूप साधु धर्म है। इस प्रकार के

धर्म का सेवन करने से प्राणी अन्त में अविचल सुख प्राप्त करता है। ऐसा समझ हे भव्यजनो! तुम धर्म में प्रवत्ति रखो।

गुरू मुख से देशना सुन पुरन्दरकुमार ने सम्यकत्वमूल वारह व्रत अगीकार किये। पीछे गुरू को वन्दना कर सब अपने २ स्थान पर गये।

एक दिन उसी नगर से समुद्रदत्त सेठ अनेक वस्तुएँ लेकर वाणारमी नगरी में व्यापार करने गया। कुछ दिनो में सेठ ने नगर में विविध प्रकार के करियाणो का व्यापार कर खूब धन उपार्जन किया। एक दिन वह सेठ राजसभा में राजा को भेंट देने गया। वहा प्रसगवश वातचीत करते हुए राजा विजयसेन के सामने अपने नगर में रहनेवाले पुरन्दरकुमार की प्रशसा की। यह सुन राजा को अत्यन्त हर्ष हुआ। क्योकि कुमार के जाने के कुछ दिनो वाद राजा को मालूम हो गया कि यह सब नाटक मालती राणी का था और कुमार निर्दोष है। ऐसा मालूम होने पर विना कारण कुमार को देश निकाला देने से राजा को वहुत दु ख था। सेठ के द्वारा कुमार का वृत्तान्त सुन तुरन्त राजा ने कुमार को वुलाने के लिये पत्र लिखकर आदमी को नन्दीपुर भेजा।

राजा का पत्र लेकर आदमी थोडे दिनो में नदीपुर जा पहुचा और राजा का दिया हुआ पत्र कुमार को दिया। कुमार पिता के पत्र को पढकर वहुत प्रसन्न हुआ। पिता ने शीघ्र आने को लिखा इसलिए पुरन्दरकुमार अपने श्वसुर की आज्ञा ले पत्नि सहित विद्या के प्रभाव से दिव्य विमान वना

उसमें बैठ मार्ग में आने वाले तीर्थों की भावपूर्वक यात्रा करता हुआ पिता की राजधानी वाणारसी नगरी में आया। राजा ने कुमार का उत्सव सहित नगर प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता पिता को नमस्कार किया। बंधुमति ने भी सास-श्वसुर को विनयपूर्वक नमस्कार किया। पुत्र, वधु और पुत्र की ऋद्धि को देख माता-पिता को बहुत आनन्द हुआ। पीछे राजा ने बड़े ठाठ बाठ से कुमार को राज्यासन पर आरूढ कर स्वयं ने मलयप्रभाचार्य से चारित्र ग्रहण किया।

पुरन्दर कुमार न्याययुक्त प्रजा का पालन करते हुए विद्या के प्रभाव से अनेक गर्विष्ट राजाओं को आधीन कर, जगह २ मनोहर जिनालय बनाकर, भावपूर्वक वीतराग की सेवा भक्ति करता हुआ सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार बहुत समय तक राजसुख भोगने पर शरीर का तेज और बल क्षीण करनेवाले बुढ़ापे को आया जानकर बधुमति से उत्पन्न राजकुमार जयन्त को राज्यासन पर स्थापित कर पांच सौ राजाओं के साथ उत्साह पूर्वक अपने पिता के पास दीक्षा ली और बंधुमति ने भी चारित्र लिया। पुरन्दर मुनि ने विधि पूर्वक ग्यारह अंग का अध्ययन कर गुरु से बीस स्थानक की महिमा सुन श्रीसंघ की भक्ति करने का कठिन अभिग्रह लिया। फिर निरन्तर यथोचित श्रीसघ की भक्ति भावपूर्वक करने लगा। एक बार किसी नगर से श्रीसिद्धगिरी की यात्रा करने के लिए संघ निकला। उसके साथ पुरन्दर मुनि वगैरह साधु समुदाय भी था। उस समय मार्ग मे मुनि

की परीक्षा करने के लिए इन्द्र महाराज आए। उन्होने सघ के सब मनुष्यो का द्रव्य व भोजन हर लिया और सामने से चोरो का समूह सघ को लूटने के लिए हथियारबद मनुष्यो सहित आता हुवा सघ के मनुष्यो ने देखा। इस प्रकार दोनो प्रकार के उपद्रव से दुखी हो सघ के मनुष्य चिंतित हो श्री मलयप्रभ आचार्य को नमस्कार कर कहने लगे– हे प्रभु! आप कृपा कर अचानक कष्ट में पडे हुए सघ के कष्ट को दूर करो। तब आचार्य महाराज ने कहा कि तुम अनेक लब्धियो से युक्त पुरन्दर मुनि को विनती करो। वह अपनी लब्धि से सघ के उपद्रव को दूर करेंगे। आचार्य महाराज के कहने से सब पुरन्दर मुनि से विनति करने लगे।

श्रीसघ की विनति स्वीकार कर गुरु महाराज की आज्ञा ले राजर्षि मुनि ने अपनी लब्धि के प्रभाव से सघ में सुवर्ण की वृष्टि की। उसमें से सब आदमियो ने जितना चाहिए उतना सोना लिया। लूटने आने वाले चोरो के समूह को रास्ते में ही स्थभित कर दिया जिससे वे आगे पीछे चलने में असमर्थ हो गये। धन प्राप्त हो जाने से पास के गाँव से भोजन की व्यवस्था कर सघ आगे यात्रा करता तीर्थ के पास पहुँचा। मार्ग में स्थभित हुए चोरो को प्रतिबोध दे बधन मुक्त किया। इस प्रकार श्री सघ को पुरन्दर मुनि ने उपद्रव रहित किया। यह जान इन्द्र आचार्य महाराज के पास आ प्रगट हो नमस्कार कर बोला– हे करुणा समुद्र! सघ को सकट में डालने का काम मेरा ही था और यह मैंने पुरन्दर मुनि की परीक्षा लेने

११ श्री विपाकाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१२ श्री उववाई उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१३ श्री रायपसेणो उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१४ श्री जीवाभिगम उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१५ श्री पन्नवणा उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१६ श्री जम्बूद्दोवपन्नत्ति उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१७ श्री चन्दपन्नत्ति उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१८ श्री सूररन्नत्ति उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१९ श्री निरयावली उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२० श्री पुण्फियो उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२१ श्री पुण्फचुलिया उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२२ श्री कप्पिया उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२३ श्री वन्हिदसा उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२४ श्री चउसरण पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२५ श्री संथारापयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२६ श्री भत्तपरिज्ञा सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२७ श्री चन्दाविजय पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२८ श्री मरणसमाहि पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२९ श्री गणिविजय पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३० श्री तन्दुलवियालि पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३१ श्री देवेन्द्रस्तव पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः

३२ श्री आउरपच्चक्खाण पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नम-

३३ श्री महापच्चक्खाण पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

३४ श्री दशवैकालिक मूल सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

३५ श्री उत्तराध्ययन मूल सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

३६ श्री आवश्यक मूल सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

३७ श्री पिण्डनिर्युक्ति मूल सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

३८ श्री व्यवहारछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

३९ श्री निशिथछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

४० श्री महानिशीथछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नम-

४१ श्री बृहत्कल्पछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

४२ श्री जीतकल्पछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

४३ श्री पचकल्पछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नम

४४ श्री नन्दीसूत्र श्रुतज्ञानाय नम

४५ श्री अनुयोगद्वार सूत्र श्रुतज्ञानाय नम ।

४६ श्री स्यादस्तिभगप्ररूपकाय स्याद्वाद श्रुतज्ञानाय नम॰

४७ श्री स्यादनास्तिभगप्ररूपकाय स्याद्वाद श्रुतज्ञानाय नमः

४८ श्री स्यादस्तिनास्तिभग प्ररूपकाय स्याद्वाद
श्रुतज्ञानाय नम

४९ श्री स्यादस्ति अवक्तव्य भग प्ररूपकाय स्याद्वाद
श्रुतज्ञानाय नम-

५० श्री स्यादनास्ति अवक्तव्य भंग स्याद्वाद श्रुतज्ञानाय नमः

५१ श्री स्यादस्ति नास्ति भंग प्ररुपकाय स्याद्वाद श्रुतज्ञानाय नमः

उक्त खमासमण देकर ५२ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

स्तुति

जगत् में ज्ञान महा उपकारी है, ज्ञान ही जगत् में निष्कारण बान्धव हितकारी सुखकारी है, ज्ञान मिथ्यात्व रुप अन्धकार को नाश करने को सूर्य है, संसार समुद्र तरने को जहाज है, ज्ञान मनुष्य भव का रत्न है, कुरूप का रूप ज्ञान है, ज्ञानपरम देव है, ज्ञान अनन्त नेत्र है, ज्ञान देश विदेश सर्वत्र पूज्य है, ज्ञान से सब दुःख छूटते है, छठ, अट्ठम, दशम प्रमुख उग्र तपस्याकारी अज्ञानी की जो शुद्धता होती है उससे अनन्त गुणा अधिक ज्ञानी की शुद्धता होती है। करोड़ों भव में अज्ञानी को तपस्या करके जितनी निर्जरा नही होती उतनी ज्ञानी एक क्षण में निर्जरा करता है, पेय अपेय, खाद्य अखाद्य, कर्तव्य अकर्तव्य सेव्य असेव्य, हित अहित, लोक अलोक, स्व पर, गुण अगुण, इहलोक, परलोक, सत्य असत्य, द्रव्य अद्रव्य, कारण कार्य, निश्चय व्यवहार, द्रव्य, भाव, कारण कार्य, निश्चय व्यवहार, द्रव्य गुणपर्याय ध्यान ध्येय ध्याता, ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता, दान देवदाता, सम्यक् असम्यक् स्वभाव परभाव, ये सब सम्यक् स्याद्वाद शैलीमय आगम ज्ञान बिना

कोई तत्त्व नहीं पाता। सब क्रिया का मूल श्रद्धा और श्रद्धा का मूल ज्ञान है। प्रथम ज्ञान होवे तो श्रद्धा होती है। इसलिए ज्ञानी का जीना सफल है, अज्ञानी का जीवन भय पूरण है। इसमें जो सम्यग् ज्ञान का अभ्यास करे वह धन्य है। इस कारण सम्यग् ज्ञानी को हमारी नित्य वन्दना है। हमारा सर्व सुखदाता ज्ञान है। इस प्रकार स्तुति करके पीछे पारणा में सम्यक् ज्ञानदाता गुरु की वन्दना, अग पूजा करे, पुस्तक दे, ज्ञान का उपकरण दे, नूतन पुस्तक लिखावे, ओली पर्यन्त नूतन शास्त्र सुने आगम सूत्र का अर्थ सुने, जिन भण्डार की रक्षा करे तथा प्रतिक्षण आत्मज्ञान में मग्न रहे।

इस पद की आराधना मे सागरचन्द्र तीर्थङ्कर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

अठारहवें अपूर्व श्रुत पद आराधन पर सागरचंद्र की कथा

इस भरत क्षेत्र में मलयपुर नामक विशाल नगर था। वहाँ न्याययुक्त प्रजा का पालन करनेवाला अमृतचद्र राजा राज्य करता था। उसे चद्रकला समान उज्वल रूप और शील वाली चद्रकला राणी से उत्पन्न लक्षणोपेत कामदेव समान रूप वाला सागरचद्र नाम का कुमार था। दिन प्रतिदिन वह कुमार विविध प्रकार की कलाओं का अभ्यास कर यौवन वय में पहुँचा। अपने गुणो से माता पिता तथा दूसरे सब मनुष्यो का वह अत्यत प्यारा हो गया। वह निरन्तर लोगों का उपकार करने

का ही ध्यान रखता था इसलिए उसकी कीर्ति भी सब दूर फैल गई।

एक दिन एक पडित ने राजकुमार को आर्यागीति सुनाई आर्यागीति सुन कुमार ने पंडित को पाँच सौ सोना मोहर दी और वह गीति कठस्थ करली। गीति इस प्रकार थी,—

अप्रार्थितमेव यथा, समेति दुःखं तथा सुखमपोह।
तत्यक्त्वा समोहं, प्रयतध्वं धर्म एव वुधाः ॥१॥

अर्थ—जिस तरह प्रार्थना किए विना दुःख आता है उसी तरह सुख भी जगत मे विना माँगे प्राप्त होता है। इसलिए हे वुद्धिमान पुरुषों मोह का त्याग कर धर्म में रुचि रखो।

यह श्लोक कंठस्थ कर निरन्तर उसी का स्मरण करने लगा। एक दिन कुमार अपने मित्र सहित उद्यान मे क्रीड़ा करने गया। वहाँ कोई पूर्वजन्म के वैरी देवता ने कुमार का हरण कर अथाह जल से पूर्ण समुद्र मे फेक दिया। परन्तु पूर्व पुण्य के संयोग से काष्ट का पाटिया हाथ में आ जाने से उसके आधार से तैरता २ सात दिन मे समुद्र किनारे पहुँचा। वहाँ से निकल आगे जाते हुए अमरद्वीप में पहुँचा। वहाँ उक्त श्लोक को स्मरण करता हुवा भ्रमण करने लगा। इतने में शीतल छाया वाला आम्र फलों से युक्त आम्रवृक्ष देख उसकी छाया में जाकर पके हुए आम के फल तोड़ खाने लगा। सात दिन से भूखे होने के कारण कुमार ने आनन्द से वे फल खाये। खाते २ विचारने लगा कि कहाँ मेरो सुख से पूर्ण राजधानी

और कहाँ यह अपरिचित उजाड स्थान? कर्म की गति विचित्र है। कुमार मन में इस प्रकार सोचता है इतने में उसकी दृष्टि एक वृक्ष की शाखा पर पडी। वहाँ रस्सी बांध गले में फांसी खाने की तैयारी करती हुई सौंदर्यवान सुन्दरी को दुःखी हृदय से इस प्रकार बोलती हुई सुना! हे सब वन देवताओ! आकाश में रहने वाले ज्योतिषी देवो! आप सब मेरी विनति एक चित्त से सुनो। मैं इस जन्म में तो सागरचन्द्र पति को प्राप्त नही कर सकी परन्तु पुनर्जन्म में तो मुझे सागरचन्द्र पति से जरूर मिलाना। अपना नाम सुन विस्मित हो कुमार उत्साह से सुन्दरी के पास आकर फदे को काट बोला। हे सुन्दरी! अज्ञान मनुष्य की तरह तू आत्मघात कर महान् पाप की भागी किस दुःख से होती है?

कुमार के वचन सुन यह सुन्दरी अपराधी की तरह लाचार और शर्म से बिना उत्तर दिये नीचा मुह कर शोक ग्रस्त हो खडी रही। कुमार ने पुनः पूछा। सुन्दरी! बोलती क्यो नही? क्या अपना वृत्तान्त बताने में कोई आपत्ति है? यदि यह ठीक है तो मैं विशेष आग्रह नही करूँगा। क्या तुझे अपने स्थान पर जाना है? चल तुझे निर्विघ्न ले चलू। कुमार यह कहता है इतने में कोई एक विद्याधर वहाँ आ पहुँचा और बोला। हे पराक्रमी पुरुष! मैं इस कन्या का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो।

इस अमरद्वीप में नुरपुर नगर में भुवनभानु राजा की इन्द्राणी समान लावण्यवती चद्रानना राणी से उत्पन्न यह हेममाला उनकी वल्लभ पुत्री है। यह अमृतचद्र राजा के पुत्र

सागरचंद्र के सद्गुणों को सुन उस पर आसक्त हो गई है। एक दिन यह अपनी सखियों सहित उद्यान में क्रीड़ा करने गई वहाँ दुरात्मा सुरसेन विद्यावर ने उसका हरण किया। उससे अमित तेज विद्यावर ने द्वन्द युद्ध कर उस पापी का नाश कर अपने घर राजकुमारी को ले गया। इच्छित पति के नहीं मिलने से आज मरने की इच्छा से यहाँ आकर आत्मघात करती थी। हे कुमार तुमने इसे बचाया है। इस प्रकार इसका वृत्तान्त है। अब कृपा कर बताओ कि आप कौन हो?

विद्यावर के मुख से हकीकत सुन अपनी प्रशंसा अपने मुख से करना ठीक नही समझ कुमार मौन रहा। तब हेम-माला विचारने लगी कि कदाचित यही सागरचंद्र कुमार तो नहीं है। क्योकि रूप गुण में उसके समान मालूम होता है। कुमारी यह विचार करती है इतने मे विद्याधरों का राजा अभिततेज विद्याधर वहां आ पहुँचा और बोला। हे मित्र ! यह राजकुमार अपनी प्रशंसा अपने मुंह से नहीं करता। मैं इसकी पहिचान बताता हूँ सो सुनो।

मैं नदीश्वर द्वीप में शाश्वते जिन की वंदना कर पीछा आता था तब मार्ग मे मलयपुर नगर में इस परोपकारी गुणाकर अमृतचंद्र नृपति के सागरचंद्र कुमार को देखा था। किसी कारण से अथवा इस कुमारी के पुण्य से यह राजकुमार इस अरण्य मे आया है। इसलिए हे मित्र भुवनभानु तुम्हारी पुत्री का व्याह इसके साथ करना ठीक हो है। इस पर पाठक गण समझ गये होंगे कि प्रथम आया हुवा विद्याधर हेममाला

का पिता भुवनभानु था और पीछे से आया वह हेममाला को दुष्ट विद्याधर के पास से छुडाने वाला अमिततेज था। अपने मित्र के द्वारा अपरिचित पुरुष की प्रशसा और परिचय मिलने से भुवनभानु बहुत प्रसन्न हुआ। पीछे कुमार, पुत्री और अमित तेज को अपने नगर में ले गया। वहाँ बडे हर्ष से उत्साहपूर्वक हेममाला का पाणीग्रहण सागरचद्र के साथ किया। सागरचद्र कुमार हेममाला के साथ आनन्दपूर्वक सुख भोगता हुआ श्वसुर के दिये दिव्य भुवन समान महल में अपने दिन आनन्द म व्यतीत करने लगा।

एक दिन महल में रात्रि को कुमार निश्चितता से सो रहा था, इतने में पूव भव के वैरी देव ने द्वेष से उसे वहाँ से उठा कर ऐसे पवत पर फेंका जहाँ अनेक शिकारी पशु रहते थे। परन्तु पुण्य प्रभाव से वह पवत पर न गिरकर किसी सरोवर में गिरा। वहाँ से तैरता २ सूर्योदय होते २ बाहर निकला।

थोडी देर विश्राम ले जगल में भ्रमण करता हुवा विचारने लगा कि देखो अभी एक दु ख का अन्त नहीं हुवा और दूसरा दु ख सामने आ गया। कर्म की बडी विचित्र गति है। वज्र समान देहवाले शलाका पुरुषो को भी अपने किए हुए शुभाशुभ कर्म भोगे बिना छुटकारा नही होता तो फिर मेरे जैसा का तो बिना भोगे कैसे छूट सकता है। परन्तु कोमल कदली समान देहवाली मेरी स्त्री मेरे वियोग से कैसे जीयगी। वह बिचारी तो मेरे वियोग में दुखी होकर प्राण त्याग कर देगी।

इस प्रकार स्त्री के विरह से व्याकुल हुआ कुमार दुखी हो पूर्व परिचित श्लोक का स्मरण कर व धैर्य धारण कर जंगली फलों का आहार कर अरण्य मे घूमने लगा। इतने मे वृक्षों की आड़ में एक प्रतिमाधर चारण मुनि को देखा। उन्हें देखते ही कुमार विनय सहित प्रणाम कर मुनि के सम्मुख जा बैठा। मुनि ने कायोत्सर्ग कर धर्मलाभ दे देशना आरम्भ की। मुनि की देशना से सागरचंद्र ने श्रावक धर्म ग्रहण किया पीछे गुरू की वन्दना कर कुमार आगे चला। इतने मे सामने से विविध प्रकार के आयुध सहित जल्दी २ आती हुई सैना देखी। थोड़ी देर मे सैना नजदीक आ पहुँची और कुमार को घेर लिया। सेनापति ने लाल २ नेत्र कर कुमार को कहा कि हे पुरुषार्थहीन! हथियार लेकर लड़ने की तैयारी कर, मृत्यु तेरा इन्तजार कर रही है।

सेनापति के वचन सुन कुमार सिह की तरह गर्जना कर बोला। अरे, अनेक शिआलियों की मदद से अपने को बलिष्ट माननेवाले कुत्ते! तेरे भोकने से यह सिह डर जाय ऐसा नहीं है, चल तैयार होजा। इतना कहते ही कुमार पर अनेक आयुधों के प्रहार होने लगे। कुमार भी बिजली के समान चमकती हुई तलवार म्यान से बाहर निकाल सेना में घास को तरह सुभटो के मस्तक धड़ से अलग करने लगा। थोड़ी देर मे तो आधी सेना का काम तमाम कर दिया। कुमार के अतुल पराक्रम से सेना भयभीत हो चारों दिशाओं मे भागने लगी। सेना को भागते देख सेनापति घोड़े पर चढ़ सेना को

वीर शब्दो से उकसाकर स्थिर करने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु सेना तो भागती ही रही। कुमार अश्व पर चढे हुए शत्रु के पास जाकर ठोकर से नीचे गिरा छाती पर अपना पैर रख रक्त से टपकती तलवार उसके मुख पर रख बोला, अरे नीच! बिना कारण विरोध कर मृत्यु में जानेवाले नर-पिशाच! बोल अब तेरी रक्षा करनेवाली सेना कहाँ गई? मद्य-पानी को तरह अत्यन्त वाचालता से चलनेवाली जीभ अब कैसे रुक गई? अब बता तेरे और मृत्यु में कितना अन्तर है? अरे नराधम नीच! अब तू तेरे इष्ट देव का स्मरण करले। मैं अब तुझे तेरे विवेक हीन कार्य का इनाम देता हूँ सो स्वीकार कर। ऐसा कह उसे मारने के लिये कुमार ने तलवार उठाई। इतने में अचानक एक नवयौवना सुन्दरी वहाँ आ पहुँची और बोली—अहो वीर पुरुष! शांत रहो, हार कर पृथ्वी पर पड़े हुए शत्रु को वीर पुरुष कभी नहीं मारते।

उस सुन्दरी के अचानक ऐसे वचन सुन आश्चर्य में हो कुमार गम्भीर शब्द से बोला— हे सुन्दरी! इस पिशाच को मृत्यु से बचानेवाली तुम कौन हो?

तब सुन्दरी ने उत्तर दिया, वीरकुमार, मैं कौन हूँ, सो सुनो। कुशवर्धनपुर नगर के कमलचद्र राजा की समरकान्ता राणी से उत्पन्न भुवनकांता नामकी रूपवती पुत्री थी। उसने यौवन अवस्था में पहुँचने पर सागरचद्र कुमार के गुणो की प्रशंसा सुनी, इसलिए वह कुमार पर आसक्त हो निरन्तर उसी का स्मरण करने लगी। एक दिन शैलेशनगर के सुदर्शन

राजा के समरविजय नाम के कुमार ने भुवनकान्ता का हरण कर इस वन मे रखी। इसके बाद उसे किसी तरह खबर हुई कि सागरचंद्र इसी मार्ग में अकेला चला आता है। ऐसा जान उसने आपके साथ युद्ध किया और परिणाम क्या हुआ यह तो आप जानते हो है।

कुमार ने कहा, हाँ यह तो मै जानता हूँ परन्तु तुम कौन हो, यह क्यों नही बताती।

तब वह नीचा मुख कर शर्मिन्दा होती हुई धीरे २ बोली नाथ! ये ही वह भुवनकान्ता हूँ जो निरन्तर आपके ही नाम को रट २ कर दिन व्यतीत करती हूँ। अब आप कृपाकर इस दासी को ग्रहण कर दुख से मुक्त करो और इस समरविजय को भी मुक्त करो, क्योंकि यह मारने योग्य नही है।

भुवनकान्ता के कहने से समरविजय को कुमार ने अपने हाथों से खड़ा किया। भुवनकान्ता ने उसके प्राण बचाये ऐसा जानकर समरविजय वैरभाव छोड़ मित्र होगया। पीछे कुमार तथा भुवनकान्ता को अपने नगर में आग्रहपूर्वक लेगया। वहाँ बड़े उत्सव सहित सागरचंद्र ने भुवनकान्ता का पाणिग्रहण किया। पीछे वहाँ से रथ में बैठ प्रिया सहित अपने नगर को रवाना हुवा। मार्ग में जाते हुए अरण्य में प्रकाश से देदिप्य, मान सुन्दर महल देखा। निर्जन स्थान में ऐसा सुन्दर महल देख कुमार को वहाँ जाकर महल देखने की इच्छा हुई। इस-लिये प्रिया को रथ मे रख खुद अकेला उस महल को देखने गया। महल के नजदीक सदर दरवाजे पर जाकर खड़ा रहा।

वहाँ कोई आदमी तो नही था परन्तु ऊपर के भाग में वाजित्र युक्त मधुर सगीतालाप की मिष्ट ध्वनि सुनाई दी। इस आकर्षण से कुमार निर्भय हो महल में चढ गया। महल के दूसरे खड में जाकर खडा रहा तो वहाँ किन्नरो समान कठ से वीणा आदि वाजित्रो सहित सगीत करती पाँच दिव्य कन्याओ को देखा। कुमार को देख कन्याए खडी हो विनय सहित आदरपूर्वक बुलाकर बैठने को आसन दिया। पीछे उनमें से सबमे बडी कन्या दोनो हाथ जोड विनय सहित बोली—देवाशी पुरुष! आप कौन हो, कहाँ रहते हो और कहाँ से आये हो कृपा कर बताओ।

विस्मित हो कुमार बोला--म मलयपुर नगर के अमृतचद्र राजा का पुत्र हूँ। ऐसा कह अपनी यथास्थित हकीकत कह सुनाई। पीछे कहा कि तुम इस अरण्य में अकेली क्यो रहती हो?

कुमार का परिचय सुनकर वे कन्याएँ खुश होकर कहने लगी। राजकुमार! सुनो। वताढ्य पर्वत पर रानपुर नगर के सिंह समान पराक्रम वाले सिंहनाद खेचरपति की भद्रा, जया, गौरी, तारा और रभा नामकी हम पाँच पुत्रिया हैं। ज्योतिषी के वचन से आपके ही साथ व्याह होगा यह जान पिता ने विद्या के प्रभाव से इस जगह सुन्दर महल बनाकर रखी हैं। हम आपकी राह देखती हुई यही रहती हैं। आज हमारे पुण्योदय से आपका समागम हुआ। अब आप कृपाकर हमारा पाणिग्रहण कर अपनी अर्धाङ्गिनिया बना कर सुखी करो।

यह वृत्तान्त सुन कुमार को भुवनकान्ता के लिये बड़ा खेद हुआ और पाँच स्त्रियों के मिल जाने से हर्ष भी हुआ। पीछे हर्ष शोक सहित धर्मसेन राजा की कन्या के साथ विवाह कर सिंहनाद खेचरपति के पास से अनेक विद्याऐं ग्रहण की। विद्या के प्रभाव से दिव्य विमान रच उसमें सिंहनाद सहित स्त्रियों को लेकर वैताढ्य पर्वत पर अमिततेज खेचर के नगर मे पहुँच उसे कहलाया कि तुम्हारे पुत्र पद्मकुमार ने मेरी स्त्री का हरण किया है सो उसे समझाकर मेरी स्त्री को मेरे सुपुर्द करो नही तो युद्ध होने पर उसका बुरा परिणाम तुमको उठाना पड़ेगा।

अमिततेज को खबर मिलने पर उसने पुत्र को समझाकर उसके पास से भुवनकान्ता को छुड़ा सागरचंद्र के सुपुर्द की। पीछे सागरचंद्र को उत्सवपूर्वक नगर मे प्रवेश कराया। सागरचंद्र ने कनकमाला को भी उसके पीहर से वहाँ बुलाया। आठों स्त्रियों सहित वैताढ्य पर्वत पर रह पंच विषय सुख भोगता हुआ हर्षपूर्वक शाश्वतों चैत्यों की यात्रा करता हुआ मनुष्य जन्म सफल करने लगा।

कुछ दिन सुखपूर्वक कुमार वहाँ रहा, पीछे अपने नगर जाने की इच्छा होने से अपना विचार सबको बताया। सबकी अनुमति लेकर कुमार विमान मे बैठ सब स्त्रियों, अन्य परिवार एवं अपार समृद्धि लेकर अपने नगर के समीप आया और अपने आने की सूचना पिताजी को भेजी। राजा को कुमार के आगमन की खबर मिलने पर नगर में उत्सव कराया और

स्वय अपने परिवार सहित कुमार को लेने सामने आया। माता पिता को आते देख कुमार ने विमान से उतर विनयपूर्वक उनके चरण स्पश किए। बहुओ न भी विनयपूर्वक सास श्वसुर को नमस्कार किया। कुमार की समृद्धि देख माता पिता को बहुत आनन्द हुआ। पीछे बडे ठाठ बाट से नगर में प्रवेश कराया। ऐसे आनन्द के समय यह खबर मिली कि नगर बाहर सूय उद्यान में सवलोक को पवित्र करनेवाले और अनन्तज्ञान को धारण करनेवाले भुवनावबोध मुनि पधारे है।

केवली भगवान के आने की सूचना मिलने से राजा कुमार सहित वदना करने गया। विनय सहित तीन प्रदक्षिणा दे राजा और कुमार उचित स्थान पर बैठ गये। पीछे गुरु महाराज धर्म देशना देने लगे।

लक्ष्मी वेश्मनि भारती च वदने शौर्यं च दोष्णोर्युगे,
त्याग पाणितले सुधीऽच हृदये सौभाग्यशोभा तनौ।
कीर्तिर्दिक्षु सपक्षता गुणिजने यस्माद् भवेदगिना,
सोऽय वाछित मगलावलि कृते धर्म समासेव्यताम् ॥१॥

अर्थ— हे भव्यजनो! जिस धर्म से घर में लक्ष्मी, मुख में सरस्वती, दोनो भुजाओ में शौय, हाथो म दान, हृदय में सुन्दर बुद्धि, शरीर में सौभाग्य शोभा, दिशाओ में कीर्ति और गुणवान पुरुषो में पक्षपात होता है ऐसे इच्छित मगलमाला को देनेवाले धर्म का सेवन करो।

और फिर कहा है कि—

पूआ जिणंदं सुरइ वओसु, जुत्तो अ सामाइअपोसहंमो ।
दाणं सुपत्ते नमणं सुतीत्थे, सुसाहुसेवा सिवलोय मग्गो ।।१।।

अर्थ— जिनेंश्वर की पूजा, व्रतों में प्रेम, सामायिक पौषध से युक्त, सुपात्र को दान, सुतीर्थ की वंदना और सुसाधु की सेवा यह सब शिवगमन के मार्ग है ।

इस प्रकार गुरु मुख से देशना सुन, अवसर देख राजा बोला—हे प्रभु! मेरे कुमार का किसने और किस कारण से हरण किया आप कृपाकर बताइए ।

गुरु ने कहा हे राजन् पूर्व विदेह क्षेत्र में एक नगर में दो भाई स्नेहपूर्वक रहते थे । उनमे बड़े भाई को स्त्री अपने पति से वहुत प्रेम करती थी । चाहे जैसा काम हो फिर भी वह उसे दूर नही जाने देती । ऐसा दृढ स्नेह देख छोटे भाई ने एक रोज परोक्षा लेने के लिये अपने बड़े भाई से कहा कि भाई! आज किसी कार्यवश तुमको बाहर गॉव जाए बिना काम नहीं चलेगा क्योंकि वह काम आपके बिना होगा नही । छोटे भाई के कहने से बड़ा भाई स्त्री को बड़ी मुश्किल से समझाकर जल्दी वापिस आने के लिए कह बाहर गाँव चला गया । बड़े भाई के जाने के थोड़े दिन वाद छोटा भाई भाभी के पास आकर शोकग्रस्त मुद्रा से बोला, भाभी ! क्या कहूँ कहते मेरी जीभ काम नही देती परन्तु कहे बिना काम भी नहीं चलता । मेरे भाई की यहाँ से जाने के बाद अचानक दुर्भाग्यवश तीव्र रोग से मृत्यु हो गई ।

तीक्ष्ण तीर समान देवर के वचन सुन अहोनाथ! ऐसा कह उसने दम तोड दिया। भाभी को प्राणहीन देख लघुभ्राता अत्यंत पश्चाताप करने लगा कि सिर्फ परीक्षा करने के लिए मैंने ऐसी अघटित बात कही और इस बिचारी ने अपने प्राण दे दिए। मै बडा अभागा हूँ। अब बडे भाई को क्या उत्तर दूँगा।

कुछ दिनो बाद बडा भाई वापिस आया। तब छोटे भाई ने सब हाल सुनाकर अपने अपराध की क्षमा मागी। बडा भाई स्त्री की मृत्यु के समाचार सुन अपनी स्त्री के स्नेह का स्मरण कर विलाप करने लगा। तब से भाई के साथ द्वेष रखने लगा। उसके साथ बोलना, खाना, पीना आदि बद कर निरन्तर शोकाकुल रहने लगा। अन्त में मोह से वैरागी हो तापसी दीक्षा ली और बालतपस्या से कष्ट सहन कर वह असुरकुमार हुआ। छोटे भाई ने भी समकित युक्त शुद्ध सयम अगीकार किया। गुरु के पास विनय पूर्वक ग्यारह अग का अध्ययन कर निरतिचार से चारित्र का पालन करने लगा। एक बार तापसी दीक्षा ले असुरकुमार होनेवाले बडे भाई के जीव ने पूर्व वैर का स्मरण कर उस मुनि की हत्या की। मुनि मरकर दसवें प्राणत देवलोक में देवता हुआ। वहाँ से चवकर वह देव तेरा पुत्र सागरचद्र हुआ। बडे भाई का जीव असुरकुमार से चलकर अनेक भवो में भ्रमण कर मनुष्य जन्म प्राप्त कर पुन तापसी दीक्षा ग्रहण कर व मरकर अग्निकुमार देव हुआ। उसने पूर्व के वैर से कुमार को निद्रा में से उठाकर

समुद्र मे फेका वगैरह कष्ट दिए। परन्तु सागरचंद्र ने पूर्व में शुद्ध चरित्र का पालन किया उस पुण्य के प्रभाव से किसी भी जगह दुखी न हो सुख ही प्राप्त किया।

इस तरह गुरु मुख से देशना सुन कुमार को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। इसलिए वह गुरु से पूछने लगा हे करुणा समुद्र! यह जीव ससार में भ्रमण करते हुए कितनी कुल कोटी व योनि मे भ्रमण कर दुख प्राप्त करता है? यह आप कृपाकर बताओ।

कुमार की प्रार्थना से गुरु महाराज बोले— हे कुमार! योनो व कुलकोटो का विचार पृथ्वीकायादिक के भेद से अनेक प्रकार का बतलाया है। फिर भी मै तुझे संक्षेप में कहता हूँ सो एकाग्र चित्त से सुनना। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय और वायुकाय इन प्रत्येक को सात २ लाख योनो है। साधारण वनस्पतिकाय की चौदह लाख योनी है, विगलेंद्रिय की दो २ लाख, नारकी, देव और तिर्यंच पचेन्द्रिय की चार २ लाख योनी है, तथा मनुष्य की चौदह लाख योनी है। इस प्रकार सब मिलाकर चौरासी लाख योनो है। अब इन सबकी कुल कोटी कहता हूँ वह सुनना। बारह लाख कुलकोटी पृथ्वीकाय की, सात लाख कुलकोटी अपकाय की, तीन लाख कुलकोटी तेऊकाय की, सात लाख कुलकोटी वायुकाय की पच्चीस लाख कुलकोटी नारको की, छव्वीस लाख कुलकोटो देव को, बारह लाख कुलकोटी मनुष्य की, अट्ठाइस लाख वनस्पति काय की, सात लाख बेइन्द्रिय की, आठ लाख तेइन्द्रिय की, नौ लाख चौरेन्द्रिय की, साढ़े बारह

लाख जलचर की, बारह लाख खेचर की, दस लाख चतुष्पद की, दस लाख उरपरी की, नौ लाख भुजपरी की। इस प्रकार कुल एक सौ साढे सत्तानवे लाख कुलकोटी हैं। इनमें अनादिकाल से यह जीव मोह के वश से अत्यन्त दु ख पाता है। जितने तीव्र दु ख नारकी के अन्दर ह उससे भी अनन्तगुणा दुख निगोद में है। ऐसा समझ इस दु ख से छुडानेवाले ज्ञान दर्शन, चारित्र और तप इन चार प्रकार के जिनोक्त धम का पालन कर सुखी होओ।

यह धर्मोपदेश श्रवण कर सागरचद्र को सवेग हुआ। इसलिए अपनी आठो राणियो सहित चारित्र लिया। अमृत-चद्र राजा ने भी सागरचद्र के पुत्र को गद्दी दे आठ दिन पयन्त जिनगृह मे उत्सव कर चारित्र अगीकार किया। सागर चन्द्र मुनि ने विनय सहित गुरु से ग्यारह अग का अध्ययन किया। एक बार गुरुमुख से बीस स्थानक तप सम्बन्धी अधिकार सुनकर अठारहवें पद अपूर्वश्रुत पढने का अभिग्रह धारण किया। प्रथम पोरसी में विधि सहित स्वाध्याय, दूसरो पोरसी में उसके अथ का चितन, तीसरी पोरसी में आहार पानी की गवेषणा और चौथी पोरसी म अपूर्व श्रुत का अध्ययन करता। इस प्रकार निरन्तर ज्ञानाचार युक्त निरतिचार से स्थिर चित्त से अभिग्रह का पालन करने लगा।

एक वार चमरचचा नगरी के स्वामी अमरेन्द्र ने सभा में सागरचद्र मुनि की स्तुति करते हुए कहा कि वतमान समय मे भरतक्षेत्र में सागरचद्र मुनि के समान कोई भी श्रुतोपयोगी

मुनि नही है। इन्द्र के वचन सुन हेमांगद देव शंकित हो मुनि की परीक्षा करने के लिए जहाँ राजर्षि मुनि गुरु के पास अपूर्वश्रुत का अभ्यास करते थे उस जयपुर नगर में आया। वहाँ आकर देव माया से रात्रि दिवस अध्ययन करने में विविध प्रकार की अड़चनें करने लगा। फिर भी मुनि ज़रा भी प्रमाद रहित ज्ञानाचार युक्त अध्ययन करते किसी भी प्रकार से मुनि को क्षोभ नही हुआ। तब देव ने प्रत्यक्ष हो मुनि को नमस्कार कर क्षमा माँगी। फिर गुरु के पास जा वंदना कर पूछने लगा कि हे प्रभु! इन मुनि को अपूर्व श्रुताभ्यास से क्या फल मिलेगा? गुरु ने कहा—हे देव! यह मुनि अपूर्व श्रुताभ्यास से तीर्थंकर पद को प्राप्त करेंगे। यह सुन देव हर्षित हो अपने स्थान को लौट गया। राजर्षि मुनि यावत जीवन पर्यन्त अठारहवे पद की आराधना कर विजय विमान मे देव हुए। वहाँ से चव महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे।

एकोनविंशतितम श्रुतपद आराधन विधि

"ॐ नमोसुअस्स"

इस पद की २० माला गिनें।

इस पद के २० खमासमण देवें। हरेक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे।

दोहा

वक्ता श्रोता योग थी, श्रुत अनुभव रस पीन।
ध्याता ध्येयनी एकता, जय जय श्रुत सुख लीन॥

१ पर्याय श्रुतज्ञानाय नम
२ पर्याय समास श्रुतज्ञानाय नम
३ अक्षर श्रुतज्ञानाय नम
४ अक्षर समास श्रुतज्ञानाय नम
५ पद श्रुतज्ञानाय नम
६ पद समास श्रुतज्ञानाय नम
७ सघात श्रुतज्ञानाय नम
८ संघात समास श्रुतज्ञानाय नम
९ प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानाय नम
१० प्रतिपत्ति समास श्रुतज्ञानाय नम
११ अनुयोग श्रुतज्ञानाय नम
१२ अनुयोग समास श्रुतज्ञानाय नम

१३ पाहुड पाहुड श्रुतज्ञानाय नमः
१४ पाहुड पाहुड समास श्रुतज्ञानाय नमः
१५ पाहुड श्रुतज्ञानाय नमः
१६ पाहुड समास श्रुतज्ञानाय नमः
१७ वस्तु श्रुतज्ञानाय नमः
१८ वस्तु समास श्रुतज्ञानाय नमः
१९ पूर्व श्रुतज्ञानाय नमः
२० पूर्व समास श्रुतज्ञानाय नमः

उक्त खमासमण देकर २० लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

शास्त्र में श्रुति ज्ञान के भगवान ने कई गुण कहे है। श्रुतधारी केवली की उपमा पाता है, उत्तराध्ययन सूत्र में बहुश्रुत को बड़ी २ उपमा देकर वीरस्वामी ने अपने मुख से कहा है कि श्रुतज्ञान सर्वजनोपकारी है। जिसको श्रुताभ्यास नहीं है वह अज्ञानी है। लोक मे भी कहा जाता है कि हितकारक मूर्ख से पण्डित शत्रु भी अच्छा है। आगम श्रुतरूप समुद्र अपार है। जैसे समुद्र रत्नादि अनेक चीजों से भरा है, वैसे श्रुत जलधि अनेक आम्नाय से भरा है। उसमें प्रथम आचाराङ्ग मे अठारह हजार पद है और आचार्य की वार्ता मुख्य है, आगे सुकृताङ्ग प्रमुख १० अङ्ग मे द्विगुण २ पद है। पद का प्रमाण गाथा से जान लेना। यथा लक्खा अडसट्ठ गयं सहस्स सत्तेव अठ्टग्र ॥ उसोउकिटकालपय, भासिय गणहार धारेहि ॥१॥

पय इक्किक्क अखर सख्या कोडि यण सहस्साय उवरिपडसय कोडी कोडी, चउतीम्सह उवरि ॥२॥ अर्थात् ३४३८०७८८० अक्षर एक पद में होते है, और इग्यारह ही अग में सब मिल कर ३६५४२००० पद होते हैं। बारहवाँ अग दृष्टिवाद है, उसका पार गणधर के सिवाय दूसरा नही पा सकता। गणी जो पावे पाठक कहलाता है। बारहवाँ अग का अधिकार मात्र चौदह पूर्व है। उसमें प्रथम उत्पादपूर्व एक करोड पद हैं। उसमें सर्व द्रव्य का उत्पाद व्यय ध्रौव्य का परिज्ञान है। दूसरा अप्राणी पूर्व ९६ लाख पद का है। उसमें सब बीज का मानो टोटल मिलाया है। तीसरा वीर्य प्रमाद पूर्व ७० लाख पद का है, उसमें बल प्रयत्न कार्य और बलबन्त का रूप वर्णन है। चौथा अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व ७ लाख पद हैं, उसमें कुल अस्तिनास्ति स्वभावरूप सप्तभगी स्याद्वाद है, स्वपरभग का पात्र है। पाँचवाँ ज्ञानप्रवाद पूव १ कोटि प्रमाण पद का है उसमें मत्यादि पाँच ज्ञान का स्वरूप भेद मुख्य है। छठा सत्य प्रवाद का १ कोटि प्रमाण सत्यादि भाषा स्वरूप सर्व भाषा भाषक वाच्य वाचिक स्वरूप है। सातवा आत्मप्रवाद पूर्व १ कोटि पद प्रमाण हैं, उसमें आत्म द्रव्य का कर्तृत्व, भोक्तृत्व, नित्यत्व, अनित्यत्वादि आत्म धम का स्वरूप है। आठवाँ कर्म प्रवाद पूर्व एक कोटि अस्सी लाख पद हैं, उसमें आठो कर्म के बधादि स्वरूप है। नवमा पचक्खान प्रवाद पूर्व ८४ लाख पद प्रमाण हैं, उसमें पचक्खान स्वरूप द्रव्य भाव से निश्चय व्यवहार से है और उपादेय प्रमुख सर्व शैली है। दशमा

विद्या प्रवाद पूर्व एक कोटि १० लाख पद प्रमाण हैं, उसमें गुरु लघु अंगुष्ट सेनाख्य सातसौ विद्या और रोहिणी प्रमुख पाँचसौ महाविद्याओ का स्वरूप है। इग्यारवां कल्याणनाम पूर्व २६ कोटि प्रमाण पद है, उसमे सब ज्योतिशास्त्रस्वरूप पुरुष को आश्रय करके चतुर्विध देवता का कल्याण जो पुण्य-फल है उसका स्वरूप है। वारहवां प्राण वायु पूर्व १३ कोटि पद प्रमाण है, उसमें आयुर्वेद की प्रक्रिया कही है, और प्राणादि १० वायु का स्वरूप प्राणायामादि योग का स्वरूप कहा है। तेरहवां क्रिया विशाल नाम पूर्व ९ कोटि पद प्रमाण है, उसमे छन्दशास्त्र, शब्दशास्त्र, सब शिल्प, सकल कला तात्विक औपाधिक सब गुणों का स्वरूप है। चौदहवां विन्दुसार पूर्व १ कोटि ६० लाख पद प्रमाण है; उसमें काल स्वरूप अष्ट व्यवहार विधि, निःशेप श्रुत सम्पदा इत्यादि स्वरूप है। ऐसे १४ पूर्व है, ऐसे ४ अधिकार और भी दृष्टि-वाद मे है। इस प्रकार का श्रुत जलधि स्याद्वाद की शैली चार अनुयोग द्वार, सात मूल नय सातसौ नय का उत्तर भेद दो मुख्य प्रमाण अनेक प्रमाणान्तर अनेक निक्षेप सप्तनयन भंगी इत्यादि अनेक द्वार, सहित एक एक पदकी व्याख्या है, जिसमें ऐसे श्रुतधारो की तुलना कौन कर सकता है। श्री जैनागम रूप श्रुत जलधि गुण रत्न से भरा है, वह आगमाज्ञा हमारा परम तत्व है, उसका श्रवण, मनन हमारा साध्य का दाता है। इसलिए श्रुत को हमारी त्रिकाल वंदना है। इस प्रकार स्तुति करके श्रुतराधान निमित्त २० लोगस्स का कायोत्सर्ग

करे। पारणा को श्रुतधारी की अङ्गपूजा, वस्त्र आहारादि देकर सेवा करे, नई पुस्तको का भडार करे, उनकी वस्त्रप्रमुख से रक्षा करे। नवीन रूमाल, पाठा, ठवणी, माला, कापी, पाटी कलम, स्याही प्रमुख ज्ञानोपकरण करावे, आगम पढे पढावे, सुने सुनावे, आगम का वहुमान करे, आगम विरुद्ध न करे, अन्तरङ्ग भक्ति करे यह भाव भक्ति है। इस भक्ति को करने से अनन्त चतुष्टयी को प्राप्त होता है। वहुमान से ओली पर्यन्त नये २ शास्त्र पढे। इस प्रकार श्रुतपद के आराधन से मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है।

इस पद की आराधना से रत्नचूड तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

उंगणीसवे श्रुतभक्ति पद आराधन पर रत्नचूड़ की कथा

भरतक्षेत्र में विशाल एवम् मनोहर जिनालयो से विभूषित ताम्रलिप्त नगर था। वहाँ न्यायपूवक प्रजा का पालन करनेवाला बुद्धिशाली रत्नशेखर राजा राज्य करता था। उसके शीलादि गुणो से विभूषित स्वरुपवान रत्नावली राणी से रत्नचूड पुत्र हुआ। वह धीरे २ बडा होकर विविध कलाओ का अभ्यास कर यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। उसकी सुवुद्धि मत्री के पुत्र सुमति, श्रीपुज सार्थवाह के पुत्र मदन, और श्रीधर सेठ के पुत्र गज के साथ मित्रता होगई। वे चारो मित्र हमेशा साथ ही रहकर उद्यानादि म क्रीडा किया करते थे।

आदमी एक श्लोक बोला और कहा कि जो कोई इस समस्या की पूर्ति करेगा उसे एक हजार मौहर मिलेगी। वह श्लोक इस प्रकार से है :—

को देवः शिवदायी, कश्चनः गुरुर्भवसेतुसमः।
को धर्मो विश्वहितः सर्वेषां किं प्रियं परमं ॥१॥

अर्थ— कल्याणकारी अथवा मुक्तिदाता देव कौनसा? संसाररूप समुद्र से पार करानेवाला गुरु कौन ? विश्व की भलाई करनेवाला धर्म कौनसा ? और सबको कौनसी वस्तु प्रिय है?

उक्त श्लोक सुन मत्री पुत्र ने कहा— यह समस्या मैं पूर्ण करूँगा। राजसेवक ने कहा तो तुमको राजा की आज्ञानुसार एक हजार सोना मोहर मिलेगी। मंत्री पुत्र ने कहा 'चलो राजसभा में'। ऐसा कह राजसभा मे आकर समस्यापूर्ति करते हुए कहा कि, मोक्ष को देनेवाले वीतराग श्री अरिहंत देव है, संसार समुद्र से पार करानेवाले परमोपकारी श्री निर्ग्रन्थ गुरु हैं, विश्व का भला करनेवाला जिनोक्त दयामूल धर्म है और सबको अपना जीव अत्यन्त प्यारा है।'

इस प्रकार यथार्थ समस्या को पूर्ण करन से राजा ने अत्यन्त प्रसन्न हो उसकी प्रशसा की और एक हजार मोहर दी। मोहर ले मंत्री पुत्र आवश्यक सामग्री ले जाकर सबको भोजन कराया। इसके बाद वहाँ से रवाना हो चौथे दिन कंचनपुर नगर मे पहुँचे। वहाँ राजपुत्र रत्नचूड़ को मित्रों ने

कहा कि आज तुम हम सबको भोजन कराओ। रत्नचूड ने यह स्वीकार किया। परन्तु भोजन प्राप्त करने के लिए कोई भी उपाय किये बिना नगर बाहर उद्यान में पुण्य पर आश्रित हो सबके साथ विश्राम करने लगा। इतने में उस नगर के अपुत्रिये राजा की मृत्यु हो जान से राज्य गद्दी पर बिठाने के लिए प्रकट किए हुए पच दिव्य घूमते २ जहाँ राजकुमार बैठा था वहाँ आकर कुमार के पास ठहर गये। इस पर प्रधान और नगरनिवासियों ने मिलकर रत्नचूड कुमार को नगर का राजा बनाया। वास्तव में पुण्यशाली को पुण्य प्रभाव से पग २ पर सपदा प्राप्त होती है। राजकुमार का उल्लासपूर्वक राज्याभिषेक कर सिंहासन पर बिठाया। उस समय अनेक गरीबों को दान दे उनकी गरीबी दूर की। इससे सब रत्नचूड राजा की प्रशसा करने लगे। राजा ने प्रधान पुत्र को मुख्य मत्री, सार्थवाह के पुत्र को कोषाधिपति और सेठपुत्र को नगरसेठ की पदवी दी और खुद न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।

अन्त में रत्नशेखर राजा को खबर हुई कि राकुमार को कचनपुर का राज्य प्राप्त हुआ है। इससे वह अत्यन्त हर्षित हुआ। पीछे पत्र लिख कुमार को मित्रों सहित अपने पास बुलाया। पिता का पत्र पढ दूसरे प्रधानों को राज्य सौंप तुरत मित्रों सहित अपने पिता के नगर गया। राजा ने बड़े ठाठ से नगर प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता पिता के चरण स्पर्श किये। पीछे राजा ने रत्नचूड कुमार को राज दे गुरु के पास सयम लिया।

सम्यक् दृष्टि को सुलभ है। अन्धकार को नाश करनेवाला जिस तरह दीपक है उसी प्रकार अज्ञान का नाश कर सम्यक् बोध देने वाला श्रुत आगम है। इसीलिए कहा है कि –

मोहं धियो हरति कापथमुच्छिनत्ति,
संवेगमुच्छ्रयति सत्प्रशमं तनोति ।
स्वर्गापवर्गपदवीमुदमातनोति,
जैनं वचः श्रवणातः किमु नाततनोति ॥१॥

अर्थ– जो (श्रुत आगम) बुद्धि के मोह को हरते है, कुत्सित मार्ग पाखंड का उच्छेद करते है, सवेग की वृद्धि करते हैं, श्रेष्ठ प्रशम का विस्तार करते है और स्वर्ग तथा मोक्ष सम्बन्धी हर्ष की वृद्धि करते है। श्रीजिन के वचनों का श्रवण करने से किस वस्तु का विस्तार नहीं होता अर्थात वह सर्व पदार्थो को देता है।

जो प्राणी भाव से आगम की भक्ति करता है, वह प्राणी जड़त्व, अंधत्व, बुद्धिहीनता और दुर्गति को कभी प्राप्त नहीं करता और जो आगम की आशातना करता है वह प्राणी दुर्गति को प्राप्त करता है।

इस प्रकार श्रुत भक्ति की महिमा सुन राजा ने श्रुतभक्ति करने का नियम लिया। कुछ समय तक गृहस्थाश्रम में श्रुतज्ञान और श्रुतज्ञानी की द्रव्य तथा भाव से विधि सहित भक्ति की। पीछे विशेष रूप से भक्ति करने को जिज्ञासा से राजा ने ज्येष्ठ पुत्र सुरसेन को राज्य सुपुर्द कर ससाररूप बंधन को

काटने के लिए अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले अमरचद्र मुनि के पास चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ सत्तर भेद से सयम का पालन करते हुए ग्यारह अग का सूत्रार्थपूर्वक अध्ययन कर गीतार्थ हुए। श्रुत भक्ति के लिए नियम में विशेष दृढ चित्त हो श्रुतधरो की अन्नपानऔषधादि से निरन्तर उत्साहपूर्वक भक्ति करने लगे।

इस प्रकार भक्ति करते कुछ दिन व्यतीत होने पर एक वार गुरु के साथ भारतिपुरपतन में आये। वहाँ ईशानदेवलोकाधिपति राजर्षि मुनि की परीक्षा करने के लिये विप्र का रूप धारण कर मुनि के पास आकर कहने लगा कि हे मुनि! निरस प्राकृत भाषा में लिखे जिनागम को पढने में अत्यत कष्ट होता है इसलिए उन्हें छोड सस्कृत भाषा जो कि देवभाषा कहलाती है उसमें लिखे आगमो को पढो जिससे आत्मा का वास्तविक कल्याण हो।

समता सिधु राजर्षि मुनि विप्र के वचन सुन मधुर वाणी से बोले— विप्र! व्यर्थ में जिनागम को निंदा कर क्यो पाप का भागी बनता है? जिनोक्त आगम की निंदा करनेवाला प्राणी अतिशय क्लिष्ट और तीव्र विपाकवाले कर्म बधकर मूक और अज्ञानी होता है, हीन योनि में जन्म लेता है और दुर्गति में जाता है और वहाँ पूर्व कर्मवश अतिशय दुःख को भोगता है इसलिए कहता हूँ कि—

तित्थयर पवमण सुय, आयरिय गणहर महढ्ढिय।
आसाएवो बहुसो, अनन्तससारिओ होइ ॥१॥

अर्थ– तीर्थंकर, प्रवचन, श्रुत, आचार्य, गणधर और महर्धिक की आशातना करनेवाला अनन्त संसारी होता है। महा मोहरूप अंधकार युक्त संसाररूप मार्ग में विचरण करने वाले प्राणियों को जिनागम दीपक तुल्य है। इसीलिए कहा है–

अन्धयारे दुरुत्तारे, घोरे संसार सागरे।
एसोव महादीवो, लोआलोआवलोयणे ॥१॥

एसो नाहो अणाहारं, सव्व भूआण भावओ।
भाववंधु इमोचेव, सव्व सुरकाण कारणं ॥२॥

अर्थ– मोहरूप अंधकार से पूर्ण और दुस्तर भयंकर संसार समुद्र में लोकालोक को प्रगट करने में यह (श्रुत) महान् दीपक तुल्य है और निराधार जीवों का भाव से नाथ और भाव से वंधु तथा निश्चय सर्व सुख का कारण है।

इस प्रकार राजर्षि मुनि के श्रुत भक्तियुक्त अमृत तुल्य वचनों को श्रवण कर, ईशानेंद्र प्रसन्न हो प्रगट हुआ और मुनि को प्रदक्षिणा दे उनकी स्तुति करने लगा। पोछे इन्द्र गुरु महाराज के पास जाकर पूछने लगा कि हे प्रभु! भक्ति पूर्वक श्रुत की भक्ति करने से इन मुनि को क्या फल मिलेगा? गुरु महाराज ने कहा देवेन्द्र! यह मुनि श्रुत भक्ति के प्रभाव से इन्द्रों को भी पूज्य जिनपद को प्राप्त करेगे। इस तरह आगम भक्ति के फल को जानकर ईशानेंद्र गुरु तथा मुनि को पुनः भावपूर्वक वंदन कर उनकी स्तुति कर अपने स्थान को लौट गया।

राजर्षि मुनि निर्मल चारित्र का पालन कर श्रुत भक्तिपद का आराधन कर देवलोक हो दशवें प्राणत देवलोक म बोस सागरोपम के आयुष्य वाले देव हुए । वहाँ से चव महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पदवी प्राप्त कर अनन्त आनन्दमय मोक्ष सुख को प्राप्त करेंगे ।

सहित स्वपर भेद रहित सर्वजनोपकारी
देशविरति रूप तीर्थगुणाय नमः

२४ पूर्व भवकृत दयाधर्म फलेन सर्व जन दर्शनीय
सर्वाङ्गउपाङ्ग सम्पूर्णाङ्ग शुद्ध संघयणी
धर्मप्रभावक देशविरति रूप तीर्थ गुणाय नमः

२५ पापकर्म वर्जित जगन्मित्र सुखोपासनीय सौम्य
प्रकृति देशविरति रूप तीर्थगुणाय नमः

२६ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैः लोकविरुद्ध धर्म विरुद्ध
वर्जन रूप देशविरति तीर्थ गुणाय नमः

२७ मलिनक्लिष्ट क्रूरता दोष रहित सदय मनोज्ञरूप
देशविरति रूप तीर्थ गुणाय नमः

२८ इहपरलोकापथदायक राग, द्वेष, शोकः जन्म,
जरा, मरण, दुर्गतिपातन रूप अडसठ लौकिक
तीर्थ वर्जक देशविरति रूप तीर्थ गुणाय नमः

२९ सर्वजनावंचक विश्वसनीय प्रशंसनीय भावैकसर्वजन
धर्मोधमकारी देशविरति श्री तीर्थ गुणाय नमः

३० स्वकार्य गौण गणक परकार्य मुख्यकर साधक
सर्वजन उपादेय वचनरूप दाक्षिण्यवान्
देशविरति तीर्थ गुणाय नमः

३१ याथा_तथ्य धर्म ज्ञापक परविषय अद्वेष प्रकृति

अनर्थ वर्जक सौम्यरूप दृष्टि मध्यस्थ
देशविरति तीर्थ गुणाय नम॰

३२ धर्मतत्वज्ञापक शुभकथाकथक विवेकगुणोद्दीपक
अशुभकथावर्जक देशविरति तीर्थ गुणाय नम

३३ आप्त धर्मशील परिवार कुटुम्ब अनुकूल विघ्न
रहित धर्म साधने साहायकारि सुपक्षि
देशविरति तीर्थ गुणाय नम॰

३४ अतीतानागतवर्त्तमानहेतु हेतु कारण कार्य दर्शि
सर्वथा स्वहित कार्यकरणरूप दीर्घदर्शि
देशविरति तीर्थ गुणाय नम

३५ सर्व पदार्थ गुण दोष ज्ञायक सुसंगि विशेषज्ञ
देशविरति तीर्थ गुणाय नम

३६ वृद्धपरम्परा ज्ञायक सुसंगतिरूप वृद्धानुगामि
देशविरति तीर्थ गुणाय नम

३७ सर्व गुण मूल रत्नत्रयी तत्वत्रय शुद्धि प्रापक
विनय रूप देशविरति तीर्थ गुणाय नमः

३८ धर्माचार्यस्य बहुमान कर्ता स्वल्पमपि उपकार
कारिभ्यो अविस्मारक परोपकारकरण
तत्पर कृतज्ञ सदा परहितोपदेशकरण
शील देशविरति तीर्थ गुणाय नम

उक्त खमासमण के बाद ३८ लागस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

तीर्थ किसको कहते हैं? वड़ी नदी अगाध वहती हो उसमें सब जगह नहीं उतरा जाता किन्तु जिस जगह घाट होता है वहाँ उतरा जाता है उसी को घाट या उतारा कहा जाता है। यदि वह घाट व्यन्तराविष्ठित होवे अथवा कोई देव किसी पर प्रसन्न हुआ हो तो वह घाट तीर्थ कहा जाता है, और वहाँ मिथ्यात्वी संसारी लोग स्नानादि क्रिया करते हैं सो द्रव्य तीर्थ है। चतुर्विधि संघ भावतीर्थ है, क्योंकि कर्म संसाररूप वड़ा दरिया है उससे पार उतरने का घाट सुखोत्तार है। अनादि संसार भ्रमणजनित श्रम ताप की हानि होती है, और अनन्तानुवन्धी प्रमुख कषाय रूप अति तृष्णा (प्यास) लगी है वह शान्त होती है और कर्ममल धोया जाता है। विशुद्धाध्यवसाय रूप नौका पर जो चढ़ता है वह क्षणमात्र में उस दरिया को पार करता है नही तो जिस जगह गहरा घाट होवे, वहाँ नाव भी होवे पार करना मुश्किल होता है। यहाँ भावतीर्थ घाट में अनुत्कट अध्यवसायवान को तारने के लिए सर्वविरति नाव है उसके अवलंबन से मनुष्य पार उतर जाता है। संसार रूप दरिया के पार पहुँचाने की यही नाव है और सुरासुर से वंदित चरण ऐसे वर्तमान विहरमान तीर्थंकर, गणधर, जैन-शासन को सुशोभित करनेवाले आत्मार्थी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप श्रीसंघ तीर्थ है। इसी तीर्थ का सेवन हमारा परम साधन है, यही तीर्थ सुख का स्थान है, इसी से सर्व कर्म नष्ट होते हैं। इसी से सब आध्यात्मिक सम्पदा मिलती है। इस वास्ते

हमको इसी तीर्थ का सेवन परम धर्म करणीय है। इस प्रकार स्तुति करके श्रीतीर्थ प्रभाव पूर्व पुरुष साधक श्रावको को भोजन कराकर अनुमोदन करे, पारणा में स्वामि वात्सल्य प्रभावना करे, अमारी का पटह बजावे, श्री सघ सहित तीर्थयात्रा रथयात्रा करे, अथवा १७ प्रकारी, २१ प्रकारी, १०८ प्रकारी यथाशक्ति पूजा करावे। जिस प्रकार जीव धर्म को अनुमोदन करे, धर्म को स्वीकार करे, वैसी उन्नति करे अथवा जिन बिम्ब बनावे, प्रतिष्ठा करावे, सातो क्षेत्र को उन्नति करे, सघ में दुखी की सहायता करे, ४५ आगम सूत्र से अथवा अर्थ सहित यथायोग्य श्रवण पठन करे, पढने वाले को आहार, वस्त्र, औषध प्रमुख से मदद करे, बलहीन की वैयावृत्ति करे। (सेवा) तपस्वी की सेवा, सम्यग् गुणयुक्त पुरुष की यश प्रतिष्ठा बढावे, जीर्णोद्धार करावे। इन सब क्रिया को आगम के नियमानुसार करे। हम व्यर्थ कष्ट करते है ऐसे भाव से रहित होकर तथा मान दम्भ से रहित होकर मूढता, पश्चाताप, दृष्टिराग रहित होकर केवल मोक्षार्थ अनुत्कठा से तीर्थ श्रद्धा सवेग भाव से परम हर्ष से भरा और परम लाभ मानता बार २ अनुमोदन करता अपनी शक्ति में न्यूनता नही समझता नि शङ्क जो क्रिया करता है उसके सर्व कर्म नष्ट होते है और वह अक्षय अविनाशी पद को प्राप्त होता है। इस तरह बीस पद को आराधना करे। एक २ पद की प्रभावना उत्सव करे और जब २० ओली पूरी हो तब यथाशक्ति उजमना करे और साधर्मी वत्सल करे। चतुर्विध सघ को घर बुलाकर बहुमान

सत्कार करे, साधर्मी को वस्त्रादि की पहिरावनी करे, प्रभु गुण गायक को उदार चित्त से दान देवे, देव गुरु धर्माचार्य को पधरावनी करे, गुणी को दान देवे। ये सब क्रिया करके ४०० उत्तम मोदक रूपा सोना अथवा रत्न गर्भित करके सार्वमियों को देवे, उस मोदक में से एक भी दूसरे धर्म वाले को धर्म समझकर न देवे, न देना उचित है। इस विधि से शुद्ध श्रद्धावान हो बीसस्थानक का तप आराधन करे तो इस लोक में मान, स्नेह, प्रतिष्ठा, सुख, सौभाग्य अनेक ऋद्धि प्राप्त होती है। परभव मे देवलोक का सुख अनुभव करके तीसरे भव में सकल सुरासुर वन्दनीय पूजनीय तीर्थकर पद को प्राप्त करते है। समस्त कर्म क्षय करके केवलज्ञान दर्शन, चारित्र पाकर शाश्वत सुख को पाते हैं।

इस पद की आराधना से मेरुप्रभ तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

बीसवें प्रवचन प्रभावना स्थानक आराधना पर मेरूप्रभ राजा की कथा

भरतक्षेत्र में सूर्यपुर नामका नगर था। वहाँ अरदमन राजा राज्य करता था। उसके मदनसुन्दरी और रत्नमंजरी दो पटराणियां थी। उन राणियों के मेरूप्रभ और महासेन दो पराक्रमी पुत्र हुए। समय व्यतीत होने पर उन्होंने युवावस्था में पैर रखा।

एक दिन रत्नमजरी ने अपने पुत्र महासेन कुमार को राज्य का लोभी बनाया, और खुद ने मदनसुन्दरी के पुत्र मेरुप्रभ को मारने के लिए कुमार की धाय के द्वारा जहर देने का षडयन्त्र रचा। रत्नमजरी की योजनानुसार वह धाय जहर ले मेरुप्रभ के पास आई, परन्तु कुमार के पुण्य प्रभाव से उस धाय के विचार बदल गये और वह बोली कुमार! तुम बिना किसी को बताए गुप्त रीति से यहा से चले जाओ नहीं तो तुमको जान से हाथ धोना पडेगा।

धाय के उक्त मर्मयुक्त वाक्य सुन मेरुप्रभ बोला—तू यह क्या कहती है? मुझे बराबर समझ में नही आया। साफ २ कह कि मैं किसलिए चला जाऊं? मुझे यहाँ किसका भय है?

धाय ने कहा कुमार! तुमको यहाँ से जाने के लिए कहती हूँ यह सत्य ही है क्योंकि आपको सौतेली माता ने अपने पुत्र महासेन को राज्य दिलाने और आपको मारने के कई षडयन्त्र रचे हैं। इसमें प्रथम तो मेरे द्वारा ही आपको भोजनादि में जहर देने की व्यवस्था की है। देखो यह जहर है। ऐसा कह अपने पास का जहर बताया और कहा—मेरे से यह घातकी काम नहीं हो सकेगा। ऐसा समझ मैंने सर्व हकीकत आपको बतादी। अब आप यहाँ से शीघ्र चले जाओ नहीं तो यह पापिष्टा मुझे और आपको मार डालेगी। यदि आप यहाँ से चले जाओगे और जीवित रहोगे तो किसी भी उपाय से यहाँ का राज्य प्राप्त कर सकोगे। मेरे को वह पूछेगी तो मैं कोई भी उचित जवाब दे उसकी शका को दूर कर दूँगी।

धाय के मुख से सारा वृत्तान्त सुन मेरुप्रभ कुमार वेष बदल हाथ में तलवार ले गुप्त रीति से नगर बाहर निकल गए। कुछ दिनों बाद वह समृद्धिशाली शांतिपुर नगर में आया। वहाँ आकर नगर में भ्रमण करते हुए उसने अतिशय देदिप्यमान और विशाल श्रीजिनेश्वर का चैत्य देखा। उसे देख कुमार ने स्नान कर पवित्र वस्त्र पहिन मूलनायक श्रीशांतिनाथ प्रभु की प्रतिमा की सुगंधित पुष्प धूपादिक से उल्लास पूर्वक भाव से सेवा की। पीछे विविध प्रकार के स्तोत्रों से श्रीजिनेश्वर की स्तुति स्तवनादि कर शहर की शोभा देखने लगा। इतने में जिनालय के पास वाले मैदान में अभयघोष मुनि को देशना देते देखा। उन्हें देखते ही कुमार तुरन्त वहाँ जाकर विनय पूर्वक वंदना कर बैठा। पीछे देशना सुनने लगा।

गुरु महाराज ने कहा 'हे भव्यजनो! इस संसार मे प्राणी को उत्तम प्रकार के सुख, संपति और ऐश्वर्य आदि देने में सुरतरु समान केवल श्रीजिन भाषित धर्म ही है तथा साथ ही विशाल बुद्धि, सुन्दर रूप, लोक प्रियता तथा स्वर्ग और अपवर्ग की लक्ष्मी भी इसी धर्म से प्राप्त होती है।

देशना देने के बाद गुरु महाराज ने मेरुप्रभ कुमार को देख ज्ञानोपयोग से श्रावकवर्ग को सम्बोधन कर बोले कि यह तुम्हारे पास बैठा हुआ राजकुमार भविष्य में तीर्थंकर होने वाला है। इस भव मे भी शासन की प्रभावना करनेवाला है इसे तुम अभी किसी निर्भय एवं गुप्त स्थान में रक्खो। क्योंकि अभी थोड़ी देर में इसे मारने के लिए इसकी पापिष्टा

सौतेली माता ने आदमियो को भेजा है वे आवेंगे। इसलिए शीघ्र ही इसे किसी निर्भय स्थान में छिपा दो।

गुरु मुख से यह वृत्तान्त श्रवण कर वहा बैठे हुए धनेश्वर सेठ ने अपने घर के भूमिगृह में छिपा दिया। दोपहर बाद गुरु के कहे माफिक एक दल नगर बाहर आ पहुँचा। उनमें से कुछ लोग नगर में मेरुप्रभ को ढूढने लगे। परन्तु किसी जगह उसका पता नही लगा। इसलिए वे सब निराश हो वहाँ से दूसरे स्थान पर ढूढने चल दिए।

सेना के जाने के बाद कुमार भूमिगृह से बाहर निकल गुरु के पास आकर चरणो में मस्तक झुकाकर बोला—हे प्रभु! हे करुणासिंधु! आपने ही आज जीवित दान दिया है। हे दयानिधि! मैं किस तरह आपके ऋण से मुक्त होऊँगा। यह आप कृपाकर मुझे कहो।

गुरु ने कहा— महाभाग्य सम्यगदर्शन युक्त जिनोक्त धर्म का तू भावपूर्वक पालन कर। विविध प्रकार के पुण्य कार्यकर जिनोक्त धर्म की प्रभावना बढे वैसा कर। इसी से तू हमारे ऋण से मुक्त हो अन्त में अपार सुख को भोगनेवाला होगा।

गुरु वचन श्रवण कर कुमार ने भावपूर्वक सम्यगदर्शन युक्त श्रावक धर्म अगीकार किया। पीछे उसी नगर में गुप्त रीति से रह धर्म की आराधना करता हुआ दिन व्यतीत करने लगा।

सूर्यपुर नगर में कुमार के एकाएक गुम हो जाने से राजा अरिदमन बहुत शोकाकुल रहने लगा। चारो दिशाओं में कुमार

को ढूंढ़ने के लिए मनुष्य निरन्तर घूमने लगे। कुछ दिन बाद ढूंढ़ते २ राजा को पता चला कि कुमार शांतिपुर नगर में है। इसलिए कुमार को लिखकर आदमी भेजा कि वह पत्र पढ़ते ही तुरन्त यहाँ आ जावे। पिता का पत्र पढ़ कुमार तुरन्त राजा के पास आया। कुमार को देख राजा बोला बेटा! तुम एकाएक इस तरह चुपचाप क्यों चले गये? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया था? अथवा कोई बात तेरे हृदय में चुभ गई थी?

कुमार ने कहा पिताजी! मेरे मन मे कोई बात नही थी और न किसी ने मेरा अपमान किया। सिर्फ देशान्तर देखने की इच्छा से ही गुप्त रीति से चला गया। क्योंकि शायद पूछने पर आप मुझे जाने देते या नही। इस प्रकार राजा के मन का समाधान किया परन्तु पूर्व की सत्य बात कह सौतेली माता के दुष्ट आचरण को नहीं बताया। देखो सज्जनता।

राजा ने कहा परन्तु बेटा! तुमे मेरे बुढ़ापे की तरफ तो देखना था? खैर अब जो होना था वह तो होगया। तू आगया यही बहुत आनन्द की बात है। अब तू राज्य ग्रहण कर और मुझे छुट्टी दे ताकि मै संसार सिधु को पार करने के लिए चारित्र अंगीकार करूँ।

कुमार ने कहा पिताजो! ऐसा कौन हीन भागी होगा जो धर्म साधन में बाधा डाले। आप शौक से चारित्र अंगीकार करो परन्तु यह राज्यभार तो मेरे भाई महासेन को दो।

में उसकी सेवा में रहूँगा । ऐसा करने से मेरी सौतेली माता को विशप प्रसन्नता होगी। मुझे राज्य तृष्णा जरा भी नही है।

राजा ने कहा कुमार! ऐसा नही हो सकता । जो योग्य होता है उसे ही राज्य दिया जाता है । तुझे राज्य देने से तेरी सौतेली माता नाराज हो तो इसकी चिन्ता करने की जरूरत नही । मेरी इस आज्ञा का तो तुझे पालन करना ही पडेगा । इसमें तुझे अब कुछ बोलने की जरूरत नही है ।

फिर राजा ने मेरुप्रभ कुमार को राज्य भार दे और महासेन को युवराज पदवी दे चारित्र ग्रहण कर दृढ चित्त से उसका पालन कर अन्त में शुभ ध्यान से काल कर स्वर्ग में गये ।

मेरुप्रभ राजा ने न्याय युक्त राज्य करते हुए भूप राजा की पुत्री त्रैलोक्यसुन्दरी के साथ व्याह किया । देवता के सम सुख भोगते हुए राणी से एक पुत्र और पुत्री हुए । मेरुप्रभ को सुखरूप लीला देख रत्नमजरी निरन्तर हृदय में द्वेष करने लगी और उसका नाश करने का प्रयत्न करने लगी । विविध प्रकार के पापयुक्त विचारो से तर्क वितक करते रत्नमजरी ने एक युक्ति ढूढ निकाली । हमेशा मेरुप्रभ राजा के लिए सुरभि पुष्प की माला ले जाने वाले माली को बुलाकर कहा कि यदि तू मेरी बताई हुई युक्ति से मेरुप्रभ को मार डालेगा तो मैं तुझे मुँह मागा इनाम दे तेरा दारिद्र दूर हो उतनी मोहरें दूगी।

माली ने कहा महाराणी! मेरे से यह काम नहीं होगा । क्योंकि कदाचित यह बात राजा को मालूम हो जाय तो मेरे

बुला लिया वह ठीक किया। अभी उपचार करने से ठीक हो जायंगे। ऐसा कह वैद्यों ने विरेचन वमनादि से विष दूरकर कुमार को होश मे लाकर कहा कि कुमार के गले में जो पुष्प माला है उसी में विष मिला है। क्योंकि इसके वास्तविक रूप, रस और गन्ध में फर्क मालूम होता है। वैद्यों के कहने से तुरन्त माली को बुलाकर राजा ने धमकी दे कहा कि बोल इस माला में तूने क्या डाला है?

माली ने कहा—महाराज इसमें सुगंधित फूल है और दूसरा क्या हो सकता है।

राजा ने कहा—अरे धूर्त यह तो सबको दिखाई देता है। परन्तु इन पुष्पों में तेने क्या डाला है ? जो बात है वह सत्य कहेगा तो छोड़ दूगा नहीं तो अभी मरवा डालूंगा।

राजा के अभय वचन से माली निर्भय हो सत्य हकीकत कहने लगा। महाराज ! आपकी सौतेली माता रत्नमंजरी राणीजी ने आपको मारने के लिए मुझे दो सुवर्ण मोहरों की थैली दी। साथ मे एक तालपुट विष की शीशी देकर कहा कि इसमे से दो बूंद पुष्प माला में डाल यह माला तू राजा को देना और इससे राजा थोड़ी देर मे यमलोक पहुँच जावेंगे। मुझ अभागे ने सुवर्ण मोहरो के लोभ से यह भयंकर नीच काम किया है। हे कृपानाथ ! इस तरह जो सच बात थी वह मैंने आपको बतला दी है। अब आप जो ठीक समझें वैसा करें। वास्तव में तो मै अपराधी हूँ।

माली की बात सुन राजा क्रोधित हो रत्नमजरी से कहने लगा अरे नीच कृतघ्न पाप मूर्ति ससार के क्षणिक पौद्‌गलिक सुखो में आसक्त हो पापपूर्ण राज्य लक्ष्मी के लोभ से मेरे को मारने वाली राक्षसणी! तुझे धिक्कार है। जिस समय महाराज मौजूद थे और मुझे राज्य दे रहे थे उस समय यदि मैं तेरे पूर्व कृत्य बतला देता तो तेरी क्या दशा होती ? मैंने मेरी सज्जनता नही छोडी और तेरा प्रपचजाल प्रकट नही किया उसका तू यह बदला दे रही है। अरे मायावनी! मै तुझे क्या शिक्षा दू? ऐसा कहते और विचार करते हुए राजा का चित्त विरक्त होने लगा इसलिए पुन बोला-- 'माता इसमे तेरा दोष नही है। तूने राज्य लक्ष्मी के लोभ से ही यह कृत्य किया है। विद्वान पुरुषो ने कहा है कि राज्य भोक्ताओ को अन्त में नरक मिलता है क्योकि उसको प्राप्त करने में अनेक प्रकार के पापाचरण करने पडते है। जैसे २ वह प्राप्त होता है वैसे २ उसका मोह बढता जाता है, इससे बार २ पापाचरण करने को मनुष्य प्रेरित होता है और अन्त में दुर्गति में पड दीर्घकाल तक असह्य दु ख सहता है। इसलिये अब मुझे दुर्गति के हेतु रूप मृग तृष्णा की तरह राज्य लक्ष्मी की जरूरत नही है। आज से मैं मेरा हक इस पर से उठा लेता हूँ और महासेन के सुपुर्द करता हूँ। यह कह मेरुप्रभ राजा वैरागी हो महासेन कुमार को राज्य दे अभयघोष आचार्य से वैराग्य पूर्ण हृदय से चारित्र अगीकार किया। गुरु के पास रह विनयपूर्वक द्वादशागी का अध्ययन कर मुनि गीतार्थ हुए। पीछे गुरु ने योग्य जान अपने पाट पर स्थापित कर आचार्य पदवी प्रदान की।

एक बार मेरूप्रभाचार्य अनेक मुनियों सहित उग्र विहार करते हुए चित्रकूट नगर के समीप आकर ठहरे। आचार्य महाराज को आए जान नगर निवासियों ने उत्साह पूर्वक आकर गुरु की वंदना कर देशना सुनने को वैठे। गुरु महाराज की मधुर देशना से भव्यजनों को उपदेश देने लगे। उस समय एक यक्ष को भी गुरु महाराज की देशना श्रवण कर ज्ञान हुवा। इसलिए उसने गुरु के सामने देव माया से विविध प्रकार का नृत्य किया। इससे आचार्य की प्रशसा खूब बढ़ी। नगर में सब जगह यही बात होने लगी कि नगर बाहर महान् प्रभाविक आचार्य पधारे है जिनके सामने देव भी नृत्य करते है। यह प्रशंसा उस नगर के राजा जितारी के सुनने में आई। वह सामन्तादिकों के साथ गुरु महाराज की वंदना करने आया। विनयपूर्वक वंदना कर राजा उचित स्थान पर बैठा। इसलिये गुरु ने राजा को प्रतिबोध देने को पुनः देशना शुरू की।

'हे भव्यजनो ! यह संसार समुद्र केवल दुःख से ही परिपूर्ण है। इसमें पड़े हुए प्राणी को धर्म के सिवाय किसी का सहारा नही है। जन्म जरा और मरणादि दुःखों से छुटकारा पाने के लिए जिनोक्त धर्म के सिवाय कोई दूसरा धर्म नहीं है। यथार्थ तत्व को जाननेवालों ने धर्म दो प्रकार का बताया है। एक देश से दूसरा सर्व से। देश से गृहस्थ को उचित है। और सर्व से अणगार को। भावपूर्वक धर्म का सेवन करने से मनुष्य अन्त मे अव्याबाध मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करता है। ऐसा समझ धर्म मे रुचि रखो।

गुरु महाराज की देशना श्रवण कर जितारी राजा को प्रतिबोध हुआ और श्रावक के बारह व्रत अगीकार कर अनेक प्रकार से जिन शासन की प्रभावना की। इसके बाद गुरु महाराज वहा से विहार कर ग्राम नगरादि में विचरते वेलापुर नगर मे पधारे।

वहाँ नगर बाहर के उद्यान में लक्ष्मीदेवी के मदिर के पास देशना आरम्भ की। उनकी देशना से वहा की लक्ष्मीदेवी को समकित हुआ और गुरु के आगे सुवर्ण की वृष्टि की जिससे आचार्य महाराज की महिमा नगर में फैल गई। गुरु की ख्याति सुन उस नगर का अरिमर्दन राजा परिवार सहित गुरु की वदना करने आया। उसे प्रतिबोध देने गुरु महाराज ने अमृत समान देशना प्रारम्भ की।

अहो भव्यजनो! इस ससार में दुःख से प्राप्त होने वाले मानव जन्म को प्राप्त कर उसे धर्म रहित प्रमाद से व्यर्थ मत खोओ। पूर्वपुण्यवशात् मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर भी गुरुमुख से धर्म श्रवण की प्राप्ति दुर्लभ है, यदि वह भी सुयोग मिल जाय तो धर्म पर श्रद्धा, दृढ प्रेम और प्रमाद रहित उसका पालन करना महादुर्लभ है। ऐसा जान प्रमाद छोड उसकी साधना में उद्यम करो। इस प्रकार गुरु की देशना श्रवण कर राजा ने सम्यक्युक्त श्रावक के बारह व्रत भाव से अगीकार किये।

इसके बाद महिमासागर मुनिराज वहा से विहार कर ठाणापुर नगर में आये। आचार्य के आगमन की सूचना नगर

में हुई कि नगर वाहर महान् विद्वान् आचार्य पधारे हैं और उनके समान वर्तमान में भूमण्डल में कोई नहीं है। यह सूचना वहाँ के रहने वाले निर्मलध्वज पडित को भी हुई। वह अहंकार से मन में विचार करने लगा कि यह कौन नया पंडित आया है। मैंने पृथ्वी के समस्त विद्वानों को पराजित किया है और अव यह कौन वीच में विना हराये वाकी रह गया है? परन्तु मदोन्मत्त हाथी अपनी सूंड़ को पटक कर तव तक ही आवाज करता है जव तक प्रचड मृगराज को गर्जना नहीं सुनता। उसी प्रकार यह विचारा पडित भी मेरे को देखते ही भाग जायगा।

यह सोच वह पडित राजा के पास जाकर कहने लगा—महाराज! आज आए हुए आचार्य के साथ सरस्वती देवी के मन्दिर के सामने विद्वानो के समक्ष मुझसे वाद-विवाद करवाओ और आप वहाँ पधार कर हमारा न्याय करो। यह कह पंडित ने आचार्य को भारती देवी के मन्दिर मे आकर वाद-विवाद करने को कहा। निश्चित समय पर सव पंडित व राजा वगैरह भारती देवी के मन्दिर में एकत्र हुए। सूरि महाराज भी अनेक नगर निवासियों के साथ वहाँ पहुँचे। इसलिए राजा वगैरह ने खड़े होकर सूरीश्वर का आदर किया। शाम्यादि अनेक गुणालंकृत सूरीश्वर को अपने मंदिर में आए जान उनके प्रभाव से भारती देवी प्रकट हो गुरु को नमस्कार कर उनको वहुमानपूर्वक सुवर्ण कमल पर विठाया। इस प्रकार सूरि के प्रभाव को देख पंडित विस्मित हो विचारने लगा कि जिसे सरस्वती भी नमस्कार करती है ऐसे आचार्य के साथ

विवाद कर कौन जीत सकेगा? मने अपने हाथ से ही अपना पराभव कर लिया है। अब मेरी कीर्ति कैसे कायम रहेगी? यदि मैं इसे जीत लू तो फिर मेरी कीर्ति का तो पार ही नही। इस तरह हृदय शकित होते हुए भी विवाद आरम्भ किया। निर्मलध्वज के पूछे हुए सब प्रश्नो का उत्तर आचार्य ने दिया परन्तु आचार्य के प्रश्नो का जवाब वह नही दे सका। इससे वह पराजित हो बहुत उदास हुआ। पीछे गुरु महाराज ने सबको प्रतिबोध देने के लिए उत्तम प्रकार की देशना दी। इससे सरस्वती देवी व राजा को प्रतिबोध हुआ। राजा ने श्रावक धर्म अगीकार किया। पीछे पडित ने अपने मन की शकाएँ पूछी। आचाय ने योग्य उत्तर दे उसकी शकाओ का समाधान किया। फिर पडित ने भी मिथ्यात्व छोड सम्यग्-दर्शन को ग्रहण किया। इस तरह शासन की प्रभावना कर सूरीश्वर वहाँ से विहार कर पाडलीपुर नगर में आये। वहाँ का राजा भयकर ज्वर से पीडित था। वह सूरि महाराज के दर्शन मात्र से व्याधि रहित होगया। इसलिए उसने भावपूवक श्रावक धर्म अगीकार कर जिनशासन की खूब प्रभावना की।

यहाँ से गुरु महाराज ने विहार कर भोगपुर नगर में चातुर्मास किया। यहाँ ऐसा अभिग्रह किया कि इसी नगर मे चार माह के अन्दर मद झरता राजा का पट्टहस्ति यदि मोदक वहरावे तो तप का पारणा करना अन्यथा नही। घोर तपस्या के बिना कर्मों का नाश नहीं होता, यही समझकर उपरोक्त घोर अभिग्रह लिया।

पूर्वोक्त अभिग्रह युक्त तपस्या करते दो माह व्यतीत हो गए फिर भी अभिग्रह पूर्ण नही हुआ। फिर भी आचार्य महाराज जरा भी विचलित नहीं हुए। पीछे अंतराय कर्म के क्षयोपशम से एक दिन राजा का पट्टहस्ति आलान स्तम्भ उखाड़ अपने लिए रखा हुआ मोदक का थाल सून्ड से उठा नगर में मन्दोन्मत्त हो फिरने लगा। फिरते २ वह हाथी अभिग्रह धारण करने वाले सूरि महाराज के समीप आकर खड़ा रहा और थाल के मोदक भक्ति भाव से वहराने लगा। सूरीश्वर ने अपना अभिग्रह यथार्थ रीति से पूर्ण होता जान मोदक ग्रहण किया। उस समय देवताओं ने पांच दिव्य प्रकट किए और रत्नों की वृष्टि करी। इससे सारे नगर में आनन्दोत्सव मनाया गया और बहुत से भव्य जीवों को बोध हुआ। इससे शासन की अतिशय उन्नति हुई।

इसके बाद वहां से विहार कर सूरीश्वर मथुरा नगर में आये। वहां का राजा तथा प्रजा सब बौद्धधर्मानुयायी होने से नगर में गये हुए साधुओं को कही भी गोचरी उपलब्ध नहीं हुई और साथ मे सब उनकी निर्भंछना करने लगे। यह देख आचार्य महाराज ने विद्या मन्त्र के प्रभाव से निर्भंछना करने वाले बौद्धों को स्तंभित कर दिए। यह बात वहां के राजा हेमध्वज को मालूम हुई तो उसने जैनाचार्य को मारने के लिए सेना भेजी। सेना को आती देख सूरि के भक्त देवताओं ने समस्त सेना को चित्र के समान स्तम्भित कर दी और आकाशवाणी करी कि जो तुम सब को जीवित रहने की

इच्छा हो तो आचार्य महाराज के पास जाकर अपने किए अपराध की क्षमा माग जिनोक्त धर्म को अङ्गीकार करो।

यह आकाशवाणी सुन सब विस्मित हुए और गुरु के पास आकर नमस्कार किया और श्रावक धर्म अङ्गीकार किया। पीछे, सब ने भक्ति पूवक गोचरी के लिए साधुओ को निमन्त्रित किया। फिर सूरि की स्तुति करते हुए कहने लगे कि हे प्रभु! आपने हमको ससार समुद्र मे डूबते हुए को बचाकर मिथ्यातत्व छुडाकर सम्यग् धर्म प्राप्त कराया है इसलिए हम आपके अत्यत ऋणी है। इस तरह उस नगरी के राजा आदि नगर जनो को शुद्ध धर्म में आरूढ कर शासन की उन्नति कर आचार्य वहा से नागपुर नगर में आये।

गुरु महाराज को आए जान सब नगर निवासी तथा राजा परिवार सहित वन्दन करने गये। राजादि नगरजनो को आए जान सूरीश्वर ने ससाररूप ताप से सतप्त हुए प्राणियो को मेघ की वृष्टि समान देशना आरम्भ की। गुरु की देशना से राजा को प्रतिवोध हुआ और भावपूवक सम्यग् धर्म अङ्गीकार किया। उस समय उस राजा के दुश्मन म्लेच्छ राजा की सेना चढ आई। इस तरह अचानक अगणित म्लेच्छो की सेना को आई जान राजा घबरा कर गुरु से कहने लगा—कृपासिन्धु! अब इस शत्रु से मेरी प्रजा की रक्षा किस प्रकार होगी? यदि मुझे पहले खबर हो जाती तो मैं लडाई की तैयारी करता परन्तु अब क्या हो सकता है?

गुरु ने कहा—राजन् ! धर्म के प्रभाव से उपद्रव का नाश होगा। तू निश्चित हो तेरे महल में जा और धर्माराधन कर। यह कह राजा को धीरज दे नगर में भेजा। थोड़ी देर में राजा के दूत ने आकर कहा कि महाराज म्लेच्छ सेना के अधिपति की अभी मृत्यु हो गई है और सारी शत्रु सेना में महा उपद्रव हो रहा है और सब अपनी अपनी रक्षा करने को भाग रहे हैं।

यह खुश खबरी सुन राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और गुरु महाराज के पास आकर पुनः भावपूर्वक वंदना की। नगर में जगह २ आनन्दोत्सव कर शासन की खूब प्रभावना की।

पीछे मेरुप्रभाचार्य वहां से विहार कर पुनः भोगपुर नगर में पधारे। गुरु का आगमन सुन नगर निवासी उत्साह पूर्वक गुरु का वन्दन करने गए और देशना श्रवण करने को बैठे। सूरि महाराज ने अनेक भवोपार्जित पापकर्मों का नाश करनेवाली देशना दी। उस समय सौधर्म देवलोकाधिपति वहां आकर सूरि के चरण कमलों में नमस्कार कर स्तुति करने लगा—

हे करुणासिन्धु! हे गुणाकर! हे परमोपकारी सूरिश्वर ! आपने जिनोक्त शासन की अत्यन्त उन्नति कर उत्कृष्ट पुण्योपार्जन कर त्रिलोक पूज्य श्री जिननाम कर्म निकाचित बंध किया है। इसलिए आगामी काल में अनेक सुरासुर आपके पद कमलों में नमस्कार कर अपने पापों का क्षय करेंगे। मैं भी

कृतार्थ हुआ जिससे आपके पवित्र दर्शन कर सका हूँ। इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र अपने स्थान पर लौट गया।

सूरि महाराज वहा से विहार कर समेत शिखर पर पधारे। वहा आकर अनशन कर ब्रह्मदेवलोक में महान् समृद्धिशाली देव हुए। वहा से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर अनन्त आनन्दमय मोक्ष सुख प्राप्त करेंगे।

चैत्यवन्दन

(१)

अति शयवन्त महन्तरूप, अनुपम गुणधारी। आराधे जिनकू सकल, तीर्थंकर शिवकारी ॥ १ ॥ अरिहन्त सिद्ध प्रवचन गणी, स्थविर बहु श्रुत जन तपसी श्रुतदर्शन विनय, आवश्यकशीलदान॥२ शील क्रिया तप धारिए, वेयावच समाधि। ज्ञान गृहण श्रुत भक्ति तीर्थ, सेवन त्याग उपाधि ॥३॥ ए विंशति स्थानक अमल, सेवो सरधा युक्त। परमातम सपद प्रगट कारक वचन मुक्त ॥४॥ मानवाछित सह सिद्धकर, क्षायिक सुख भर कंद। जिनको वन्दे भावधर, श्री कुशलेन्दु गणिंद ॥५॥

(२)

नित्यानद निराश्रयी नमो सिद्ध भगवान अजर अमर अविनाशिये, प्रभुता परम निराल ॥१॥ अनंतवीर्य शक्तिमयी, आरोगी चिद्रूप। अनन्ताचय स्थितिमयी, चिदनन्द स्वरूप ॥२॥ दर्शन ज्ञान चारित्र ए, अनत अपार। आराधे सिध पद लहे माणस भवनी पार ॥ ३ ॥

(३)

चौविस पदरे पिसतालीसनो, उत्रीसनो करिय । दश पचवीस सत्ताविसनो, काउसग्ग मन धरिये ॥ १ ॥ पच सडसठ दशवल सीत्तरे नवपण वीसवार अमवान। लोगस्स तणो काउसग्ग धरो गुणस्स ।२॥ वीस सीत्तर इगवन द्वादश ने पच, एणी परे काउस्सग जो करे तो जाये भवसंच ॥ ३ ॥ अनुक्रमे काउसग मन गुनि, लेजे वीस थान कराय। ज नोए सक्षेप थी, से समभावधरी मन माधणोर, जो एक पद आराधे, जिन उत्तम पद पद्मने नमि निज कारज साधे ॥

स्तुति

निरमल आतम भाव प्रकाशक कारक क्षायिक भावीजी, जिन पद वर्धक कर्म निकन्दक वीस थानक भवी सेवीजी जिनवर सहुजे स्थानक से वे, एक अनेक भवती जेजी आराधनते साधन भावे, मन वांछित सब सीझेजी ॥१॥ अरिहन्त सिद्ध प्रवचन आचारज, स्थविर बहुश्रुत तपसीजी । श्रुत दरशन विनयी आवश्यक, शील क्रिया तपवासीजी ॥गणधर वैयावच्च सुसमाधी, ज्ञान ग्रहण श्रुत भगती जी । प्रवचनए विंशती पद भापक, जिन नमिए सहुजुग तीजी ॥ २ ॥ अट्ठमतप उपवास आंबिल तप ॥ एकासण निज सगतीजी । करिए ओली षट मास भीतर, आराधन बहु भक्तेजी ॥ आरम्भटाली पडिक्कमणा धारी दोय सहस जप गणिएजी । काउसग्ग कारी दोष निवारी, देव पूजन श्रुत करिएजी ॥३॥ शासन रक्षक समकित धारी, जे सहु सुर सुखकन्दा जी । सानिधकर ज्योते तप करता, वधते भाव अनन्दाजी॥ श्रीजिनलाभ सूरिश्वर शाखा, श्री कुशलेन्दु गणिंदाजी । तस पद सेवक मंगल पतिगणि । जो श्रीबाल चांदाजी ॥ ४ ॥

---

(२)

अरिहन्त सिद्ध पवयण, आचारज थिवरांण ।
पाठक मुनिवर ज्ञाने, दर्शन विनय वखाण ॥
चारित्र ब्रह्म क्रिया तप गोयम जिन भाण ।
संयम, नाणी श्रुत संघ सेवो वीसठाण ॥ १ ॥
उत्कृष्टि जिनवर एकसो सितर धीर ।
वलीकाल जघन्ये जिनवर वीस गम्भीर ॥

जिनपाय अनन्ता अतीत अनागत काल।
ए वीसे थानक आराधे गुणमाल ॥ २ ॥
आवश्यक बे वेला जिन वन्दन त्रिकाल।
थानक तप गिणजो सहस दोय सुखुमाल ॥
काउसग्ग गुण स्तवना पूजाप्रभु वनामार।
इम सामी वत्सल करता भवनो पार ॥ ३ ॥
समरीजे अहनिश गुणए गोमुख साथा।
यक्ष यक्षणी सुरपति वयावच्चकर ताथा ॥
थानक तप विधि सुजेसे वे मनरंगे।
देवचन्द आणए मानिय वर तसु चंगे ॥ ४ ॥

---

(३)

आदिनर अलवेसर जगपति, भविजन नायक चन्दाजी। मेरु ज-मंडन दुःख विहडण, अद्भुत ज्योति गोरम्भाजी तुम संपति वारण जग तारण मेरे पुन्नर ईशानी रम्णा वर जिनवर उपगारी, वामित गुणकर रंगनो ॥ १ ॥ अरिहन सिद्ध प्रवचन आचारज स्थविर पाठक तप जाणानी। साधुनाणदंसणदर सोवद, विनय चारित्रवस्ता-णोजी ॥ ब्रह्म किया तप गोयम जिणद, समाधि अपूर्व श्रुतनाणोजी। श्रुतभक्ति तीर्थ प्रभावन, वीस थानक पडिवनोजी ॥ २ ॥ श्री मुग ि नर भाव, ए पद ेवो प्राणीनी तीर्थ वर पद पाम्यो नहिवे। जिन आगमनी वाणीनी ॥ पाना दशे गणधर करे, विचरीने धरणी आगी नो। ए आजपर ते गिद पद नहि, निरमर गुन गिमताजी ॥ ३ ॥ तीन पाव पावे नरनाय, मनदा गिरी रंगिनी। पाउ-नरर मलिया गुण्या गिरितु जिन पूर्वजि ॥ मनागमए विड-

टंक पडिकमणो, स्तवना नित्य सुणीजेजी। कृपाचन्द्र सुयदे विपसाये, मनवंछित फल लीजेजी ॥ ४ ॥

(४)

वीस स्थानक सेवो भावधरि नितसेव ॥ १ ॥
अरहंत सकलए आराधे पदएव ॥ २ ॥
जैनागम पण गणधर वाणी सेव ॥ ३ ॥
शासन देवी सहाये माणक आनदमेव ॥ ४ ॥

(५)

बीस स्थानक नित्यं वदे ॥ १ ॥
जिन वचं सत्यं मन्ये ॥ २ ॥
द्रव्य भाव महंस्तोष्ये ॥ ३ ॥
सिद्धा ध्यानं सुखं भूयात् ॥ ४ ॥

स्तवन

(१)

(श्री सिद्धाचल भेटीये ए देशी)

वीस थांनक तप सेवीए। धरकर शुभ परिणाम लालरे। तीजे भाव से व्योथको। बाधे तीर्थंकर नाम लालरे॥ वी० ॥ १ ॥ तप-रचना अधकी कही। ज्ञाता अङ्गम भार लालरे। सुण जो भविसुं। चित्त से करिये उच्चार लालरे ॥ वी० ॥ २ ॥ सुविहित गुरु पासे ग्रहे। वीसथानक तप गृह लालरे। निरएहपण शुभ महूरते। उचरीजे सस-नेह लालरे ॥ वी० ॥ ३ ॥ अरिहंत सिद्ध प्रवचन नमुं, सूरिथिवर

उवझाय लालरे । साधु नाण दसण अरु, विनयने मू उलसाय लालरे ॥ वी० ॥ ४ ॥ चारित्र वभ क्रिया पदे तप गोयम जिन इम लालरे । चारित्रज्ञान ने श्रुत भणी नमु तीर्थ पद वीस लालरे ॥ वी० ॥ ५ ॥ वीसदिवस मे एकही पद गुणनो करमेव लालरे । अथवा दिन वीसल गे वीमे पद गुणमेव लालरे ॥ वी० ॥ ६ ॥ एक ओली पट मास मे पूरि-जोन विहोय लालरे ॥ फेरन विकरणी पडे, पिछली निष्फल जोय लालरे ॥वी ॥ ७ ॥ छठ आठम उपवासु, पउवाससु अथवादेसी शक्तिलालरे पोसहकर आराधिये, देववादे जिन भक्ति नालरे ॥ वी० ॥ ८ ॥ सूरुण पद सेवता, हरो नहि जोग लालरे। तोहीमान पदे सही, पोसह करिए संजोग लालरे ॥ वी० ॥ ९ ॥ सूरि थिवर पाठक पदे साधु चारित्र सुजाण लालरे । गौतम तीर्थ पदे सही, सात थानक मनमान लालरे ॥ वी० ॥ १० ॥ पद पद दीप करु सदा, दोय-दोय जाप हजार लालरे । पडिक मणे दोय ट कही, करीये पूजा सार लालरे । वी० ॥ ११ ॥ शक्ति मुजव तप कीजिए, एक ओली करो वीस लालरे। वीसा तीसी च्या-रसे, तप संख्या कही एम लालरे॥ वी० ॥ १२ ॥ जिस दिन जो पद तप करे, तिसके गुण चित्तवार लालरे। काउसग्ग पर दखण, मुख गणिए नवकार लालरे ॥ १३ ॥ जिम पद की स्तवना सुणे, कीजे जिन पद भक्ति लालर । पूजन शुभ मन साचवे दिन दिन चढती शक्ति ला लरे ॥ वी० ॥ १४ ॥ मृतव जनम ऋतु काल मे, करि धार्यो उप-वास लालरे सो लेखेनहि लेखवो, निकेवल तप जास लालरे ॥ वी० ॥ ॥ १५ ॥ सावजत्याग पणो करे, शोक न धारे चित्त लालरे । शील आभूषण आदरे, मुख सु बोले सत्य लालरे, ॥ वी० ॥ १६ ॥ जेठ, आषाढ वैशाख मे, मिगसर फागुण माह लालरे । इन षट मास माहिने ने व्रत ग्रहिये बड भाग लालरे ॥ वी० ॥ १७ ॥ तप पूरण हुआ थका उजमणो निरधार लालरे । कीजे शक्ति विचारने, उच्छवविविध

प्रकार लालरे ॥ वी० ॥ १८ ॥ वीस वीस गीणती तणा. पुस्तक पुठा आदि लालरे। ज्ञान तणी पूजा करे, मुंक्ति जो चावे नित्य लालरे ॥ वी० ॥ १९ ॥ फलोदी नगरनी श्राविका कीधी विधि चित्त लाय लालरे। जनम सफल करवा भणी ओहीजमोक्ष उपाय लालरे ॥ वी० ॥ २० ॥ (कलश) इम वीर जिनवरतणी आज्ञाधार चित्त मझारए। सहुदेख आगम तणी स्तवनाकरी तपविधि सारए ॥ वसुनद सिद्धि चंन्द वरसे चैत्र मास सुहंकरु। मुनि केशरि गणिगच्छ खरतर भणी स्तवना मनहरु ॥२१॥

(२)

(आदि जिणद मया करो——एदेसी)

वीस स्थानक पद ध्याइये, जननायक पद लायकरे। अरिहतादिक पद नमो, सकल जंतु हितकार करे ॥ वी० ॥ १ ॥ सिद्धि प्रवचन आचारज नमो, स्थविर पाठक पद सोहेरे। साधु ज्ञान दर्शन सेवो, विनय सदा मन मोहेरे ॥ वी० ॥ २ ॥ चारित्र पद मुझ मन वस्यो, गुणिजन करो नितसे वारे ब्रह्म क्रिया तप गौनम, भविजन लहे सुखमे वारे। वी० ।३ ।नमो नमो जिन पद संग से, गुण अनंत उजासीरे। संजम ज्ञान श्रुत पद सदा, अनुभव रसए प्रकाशीरे। वी० । ४ । तीरथ पद पूजो भविजना, लौकिक अरु सठतजोयेरे। चउविह महा-तीरथ, लोकोत्तर नेए भजीयेरे। वी० । ५ । ज्ञानीए तप जप वर्णव्या वहु विध भवि हितकारी रे वीश थानक सम कोई नहि, इण जग मे सुणो प्राणीरे। वी० । ६ । तप महिमा अधिक कहि, विधियुतछट्ठे अंगेरे। पूजे भवियण पद सहू, शिव सुख मन चंगेरे ॥ वी० ॥ ७॥ तीर्थंकर पद जेल पद सेवे भवती जेरे। सप्तवली अष्टभव करी, उत्कृष्टेजीवसी मेरे ॥ वी ॥ ८ ॥ नगर अजीमगज शोभतो, श्रावक श्राविका पुन्य वंतारे। वीसथानक सेवे भाव थी, शासन उन्नति कर-

सारे। वी० ॥ ९ ॥ तामतणे आग्रहथकी, स्तवन रच्योभाव आणीरे। द्रव्य भावे भवि आदरो, थानक पद हित याणीरे ॥ वी० ॥ १० ॥ वीस थानक पद सेवग, कठिन कर्मते वीजेरे ॥ अनुभव अधिक माण थी, अजर अमर पद लीजेरे वी० ॥ ११ ॥ सवत उगणी वयामीये, 'तिय सातम वुध वारोरे। माम आश्विन कृष्ण पच्च मे, वीस थानक गुण गायोरे ॥ वी० ॥ १२ ॥

कलश

इम वीस थानक जगत वदन, सकल जन आनदनो भयो वन दिन आजनीवलि दु ख गयो दूर मनतणो । युग प्रधान जिन चारित्र सद्गुरु, वहत्खरतर गणधरो पत्र प्रमोदजी कृपाजो कीए स्तवन माणक नित भणो ॥ १३ ॥

(३)

आज आनद वहाररे तप मेवो मगन मे सेवो मगन मे ध्यावो मगन मे, वीस थानक सुखकाररे ॥ तप० १ ॥

अरिहत सिद्ध प्रवचनए नमता, थाये सुखनयनु धाररे ॥ तप० २ ॥ आचार्ज थिवरने पाठक साधु नमो सुख काररे ॥ तप० ३ ॥ ज्ञा दर्शन विनय सेवोए चारित्र गुण अपाररे ॥ तप० ४ ॥ ब्रह्म पदको भवि सेवो निशदिन, क्रिया सदा दिलधाररे ॥ तप० ५ ॥ वाह्यअभ्यतर तप को ध्यावो गौतम पद शिरदाररे ॥ तप० ६ ॥ जिन मजम की भावना भावो, त्रिभुवनमे हितकाररे ॥ तप० ७ ॥ ज्ञान सदा जयवनो नमता, पामे गुण अपाररे ॥ तप० ८ ॥ श्रुत पद नमिये भावे भविया, श्रुत वे जगत आधाररे ॥ तप० ९ ॥ श्रीतीर्थ पद पूजो गुणि-जन, आणी हर्ष अपाररे ॥ तप० १० ॥ एवीसे पद नित नित ध्यावो, माणक रो अवताररे ॥ तप० ११ ॥ जिन चारित्र सूरिश प्रसादे, माणक जय जय काररे ॥ तप० १२ ॥

(४)

(सुण २ सेत्रुंजगिरि स्वामी——एचाल)

अरिहन्तादिक पद नित नमिये, जेथी जग दु ख दूरे गमिये, निज स्वभाव मे भवि नितरमिये सुणो भवि भाव से हित आणी, वीस-थानक सैवो प्राणी, जिनसे कर्म कठिन होय हाणि ॥ सुणो० ॥ १ ॥ सिद्ध सेवो भवि चित आणी, रह्या एक तीस गुणना खाणी. लोका लोक प्रकाशना नाणी ॥ सुणो० २ ॥ प्रवचन भक्ति भावथी करिये, संसार समुद्र से तरिये, जिन वचन सदा सर दहिये ॥ सुणो० ३ ॥ गुण छत्तीसे रह्या सूरिराया जिन मत को अधिक दिपाया, पंचा चार पालन सुखदाया ॥ सुणो० ४ ॥ स्थविर पाठक तत्वना जाण, भाषे जिनवर वचन प्रमाण, तम रु मल हरण जग माण ॥ सुणो० ५ ॥ सो हे साधु सदा गुण भरिया' सप्त वीस गुणे पर वरिया, ज्ञानादिक गुणना दरिया ॥ सुणो० ६ ॥ ज्ञान दर्शन को दिलधारो, पाप कर्म थकी मनवारो, रहो शुद्ध क्रिया अनुसारो सुणो० ७ ॥ विनय सेवो सदा सुखदाई, जिनसे जनम मरण मिट जाई, नित चारित्र से चित लाइ ॥ सुणो० ८ ॥ सियलको सुरतरु सम जाणी, क्रिया तप सेवो भविप्राणी निसदिन पूजीजेहो प्राणी ॥ सुणो० ९ ॥ गोयम जिन संयम धरो, प्रकटे अधिक अधारो होय जनम मरण छुटकारो ॥ सुणो० १० ॥ ज्ञान भक्ति करो भवि प्राणी, श्रुतिज्ञान को मन तण आणी, सघ भक्ति सदा सुखदाणी, ॥ सुणो० ११ तप महिमा ज्ञाता सूत्र मे जाणो, तीर्थ कर गोत्र वधाणो भाषे जिनवर श्रीजगभाणो ॥ सुणो० १२ ॥ वेत्र वसु नद चंद बखाणो, जिन चारित्र सूरि गुण खाणो, माणक मन तप मे भराणो ॥ सुणो० १३ ॥

(४)

ध्यावोरी माइ वीस थानक पद ध्यावो, अरिहत सिद्ध प्रवचन ए नमता मन वाछित सुख थाये ॥ ध्या ॥ आचारज स्थाविर ने पाठक साधु सेवे दु ख जाये ॥ ध्या० ॥ १ ॥ ज्ञान दर्शन विनय सेवा थी, चारित्र जग सुखकार ॥ ध्या० ॥ ब्रह्म क्रिया तप को भवि ध्यावो, गौतम पद हितकार ॥ ध्या० ॥ २ ॥ जिन सजम को भविजन पूजो, ज्ञान तणा गुण गावो ॥ ध्या० ॥ श्रुत पद को भवि ध्यावो निस दिन, तीर्थ सदा मन चावो ॥ ध्या० ॥ ३ ॥ प्रभु पूजा पर भावना करिये उजमणो सुविवेक ॥ ध्या० ॥ ए तप महिमाना अधिकार, वर्णव्या ग्रन्थ अनेक ॥ ध्या० ४ ॥ थानक तप सेवन्ता प्राणी, गोत्र तीर्थकर बांधे ॥ ध्या० ॥ शुभ भावे ए तप की सेवा, माणक मन मे आराधे ॥ ध्या० ॥ ५ ॥

---

(६)

(धण केसरकी क्यारीमा रूडो, फूल हजारीरे एहनी देशी) ॥
आज आणन्द बधाई म्हारे वाधी सोभ सवाईरे । साजन वीस थानक पद सवा, जिम मनवाछित फल लेवोरे ॥ सा० ॥ वी० निरमल कायमु कीजे निकरण शुभ ध्यान धरीजे ॥ सा० वी० ॥ अरिहतादिक वीस पद दाख्या श्री जगदीसेरे । सा० २ वी० ॥ एहनो सेवन कीजे सहू, कठिण करम ते छीजेरे । सा० वी० ॥ मोटो तप यह कहिये भावे करी ते सरदहियेरे ॥ सा० ३ ॥ वी ॥ सील सयमव्रत पाली दोयण मनमा सब टालारे० । सा० वी० ॥ एह वीसोपदराया सेवितभवि शिवपद पायारे सा० ॥ ४ ॥ वी० । जे विधसु आराधे ते तीर्थ करपद पावेर ॥ सा० वी० ॥ एहना गुण कहे मार सुरगुरु पिण

न लहे पाररे ॥ सा० ॥ ५ वी ॥ उदयापुरे मन रंग गुरु मुख विधि लहिये सुचगेरे ॥ सा० वी० ॥ जोरावर वडभागी तेहनी लय प्रभुसु लागीरे । सा० ६ ॥ वी ॥ उच्छव अधिक मडाण, करि कीधो जनम प्रमाणरे० । सा० वी० ॥ उजमणा विधिभारी निरण त्रिश्री चित्त उदारीरे ॥ सा० ७ वी० ॥ संवत (१८९९) अठारनिनाण, आषाढ़ वदि वीज वखाणरे । सा० वी० ॥ रूडो कारज कीधो; धन खरची जग जस लीधोरे० सा० ॥ ८ वी० ॥ श्रीजिनमहेन्द्रसूरिन्दा, नित वांदे कीर्ति आनंदारे ॥ सा० ९ ॥ ॥ इति ॥

---

(७)

पूछे गोतम वीर जिणंदा, समवसरण बैठा सुखकन्दा, पूजित अमर सुरीन्दा केम निकाचे पद जिनचन्दा, कीन विध तप करता भवफन्दा, टाले दुरितह दंदा, तप भावे प्रभुजी गतनिंदा सुण गोतम वसभूति नन्दा, निर्मल तप अरविंदा, वीसथानक तप करत महिंदा, जिम तारक समुदाये वृन्दा, तिम ए सवी तप इंदा ॥ १ ॥ प्रथमपदे अरिहन्त नमीजे, बीजे सिद्ध पवयणपद त्रीजे, आचारज थेर ठवीजे, उपाध्याय ने साधु ग्रहिजे, नाण दशम पद विनय वहीजे, अगीआर में चारित्र लीजे, बभवयश्रारीण गणीजे किरीयाणंतवस्स करीजे, गोयम जिणाणं लहीजे चारित्र नाण श्रुत तीथ्थस्सकीजे, त्रीजे भव तप करत सुणिजे, ए सवी जिन तप लीजे ॥ २ ॥ आदि नमो पद सगले ठवीस बार पन्नर बारत्तली छत्रीस दश पणवीस, पाचने सडसठ सेर गनीस सत्तर नव किरिया पंचवीस, बार अठावीस चउवीस, सीतेर इगवन्न पांपीतालिस, पांच लोगस्स काउसग्ग रहिस, नोकरवाली वीस, एक २ पदे उपवास वीस, मास खटें एक ओली करीस, इम सिद्धान्त जगीस ॥ ३ ॥ शक्ते एकासणु तीवीहार, छठ अठम

मासखमण उदार, पडिक्रमणा दोय वार, इत्यादिक विधि गुन्गम धार, एक पद आराधन भवपार, उजमणु विविध प्रकार, मातग यज्ञ करे मनोहार, देवी सीद्धाइ शासन रखकर, सव वीघन अपहार, खीमावीजेय जस उपर प्यार, सुभ भवीयन वरमी आधार, वीर वीजे जयकार ॥ ४ ॥

---

(८)

पहिले पद अरिहत नमु वीजे सर्व सिद्ध ।
त्रीजे प्रवचन मन धरो आचरण प्रसिद्ध ॥ १ ॥
नमो थेगणं पाच मे पाठक गुण छट्ठे ।
नमो लोय सव्व साहूण जे छे गुण गरिट्ठे ॥ २ ॥
नमो नाणस्स आठम दर्शन मन भावो ।
विनय करो गुणवतनो चारित्र पद ध्यावो ॥ ३ ॥
नमो बभवय धारण तेरमे किरियाण ।
नमो तवस्स चवदमे गोयम नमो जिणाण ॥ ४ ॥
चारित्र ज्ञान सुअस्स नेए नमो तित्थस्स जाणी ।
जिन उत्तम पद पद्मएने नमता तोय सुखसाणी ॥ ५ ॥

---

(९)

(वीर सुणो मेरी वीनती एनी ढाल) वीसथानक तप सेविजे, भव्य प्राणीरे आणी मन भाव, श्री अरिहन्त इम उपदीसे, ए तपनारे मोटा परभाव ॥ वी० ॥ १ ॥ नमो अरिहन्ताणं गुणो पद, पहिलेरे मन हरख अपार, द्रव्यत भावत भेदसु, जिनपुजारे करो आठ प्रकार ॥ वी० ॥ २ ॥ नमो सिद्धाण एहनो, सुद्ध चित्तेरे गुणो वीजी

ठाण, आराधो सिद्ध चक्रनो, जिन धायरे निज जनम प्रमाण ॥ वी० ॥ ३ ॥ पवयणस्स नमो गुणो तीजे ठाणेरे करो नाण अभ्यास, भगति करो सिद्धान्तनी जिन पावोरे तुम लिलविलास ॥ वी० ॥ ४ ॥ आयरियाणंनमो गुणो चौथे थोनेरे पूजो गुरु ना पाय, नमो थेराणं पञ्चमे गुणो सेवोरे धरमी मुनिराय ॥ वी० ॥ ५ ॥ पण्डित गुरुने पूछिए, छट्टे गुणिएरे नमो उवझाय, नमो सव्व साहु सातमे वलि सेवोरे तपसी वहु जाण ॥ वी० ॥ ६ ॥ नमो नाणीणं आठमे, गुणे भणिएरे नवतत्व सिज्झाय, नमो दर्शन धारो गुणो, पाले नवमेरे समकित सुखदाय ॥ वी० ॥ ७ ॥ विनय संपन्न नमो इसो, पद दशमेरे गुणिए शुभ ध्यान, विनय करो गुणवन्तनी, इण रीते हो लहिए शिव, थान ॥ वी ॥ ८ ॥ इग्यार थानक गुणो पडिकमणांरे साझ सवार चारित्तस्स नमो इसो, पद ध्यावो रे शिवसुख दातार ॥ वी० ॥ ९ ॥ गुणो बंभयारीण नमो, आठ पोहोरी रे करो पोसह लील, वारमे ठाणई पालिए, शुभ भावेरे निरमल गुण शील ॥ वी० ॥ १० ॥ नमो किरियावारो भणो' मन गुणीए नित तेरमे ठाण, सामायिक पोस लिजिए, दोष टालोरे बत्रीस प्रमाण ॥ वी० ॥ ११ ॥ तप अविको करो चवदमे, नमो तपसीरे गुणिए मनरग, तपसी सेवा कीजिए, वलि रहिए तपसीने संग ॥ वी० ॥ १२ ॥

(ढाल थभनपुरी) अतिथिदान वहु भावे दीजे, नमो गौयमाईण गुणिजे; पनरमो किरिया एह, प्रतिमानू भूषण पहिरावो, नमो जिणाणं ए पद ध्यावो, सोलमे धर्म सनेह ॥ १३ ॥ आठपोहरी पोसो विधि करिए ध्यान नमो चारित्तस्स धरीये, एविसतरमठाण नवो नाण उछरंगे भणिये नमो नाणय, गुणणो गुणीये.आठारमे परिमान ॥ १४ ॥ नमो सुयस्स गुणो मन चगे, पुस्तक पूजा करो वहुभगे, ए उगुणो समरीते नमो, तीरथराध्यान धरावो संघ, चतुर्विध भगति

करानी, वीस मे शास्त्र विदीन ॥ १५ ॥ ढाल–दोयन्ण सुव्रते केरै, गुणिये गुणाणी सुविशेषै, च्यारसो उपवास पूरी ज्यारे, समकित गुण शुद्ध धरीजै ॥ १ ॥ ए वीस स्थानक विधि जानी रे, सेवो मनतु भट आणी, विधि तु ग्डे ए तन हीयरे, सो तीर्थंकर पद लहीये, भावे स्तव चारित्रधारी रे द्रव्य भावे विवि सागरी सेवे, जे नरने नारीरे ते मोक्षतणा अधिकारी, ॥ १७ ॥ इम बीसथानक तपतणी विधि शास्त्र ने अनुसार ए जे वहे नरने नारी विधिसु धन्य तसु अवतार ए' रतनपुरवर संघ सुप्रकारजगतनाथ जिणेसरो, तसु चरणपकज प्रणमि भावे कहे वसतो मुनिवरो ॥ १८ ॥

॥ तिइ ॥

---

(१)

अरिहन्तपद चैत्यवन्दन

जय जय श्री जिनराज मैं, शरणे आज आयो ।
चिन्तामणि वर कल्पतर, महा पुण्ये पायो ॥ १ ॥
दर्शन ज्ञानावरण युग, अन्तराय मोह जान ।
घातिचतुष्क विनष्ट कर, पायो केवल ज्ञान ॥ २ ॥
सम्प्रति विंशति जिन नमो, प्रथम पदे जयकार ।
वाणीगुण पैंतीस वर चौतिस अतिशय धार ॥ ३ ॥
देवपाल राजा हुये, पूजी जिनवर देव ।
होंगे श्रेणिक तीर्थ पति, महावीर पद सेव ॥ ४ ॥
सुख सागर भगवद् विभो पुण्य पुञ्ज जगनाथ ।
'स्वर्ण' विचक्षण तो शरण देकर करें सनाथ ॥ ५ ॥

---

(२)

श्री सिद्ध पद चैत्यवन्दन

सिद्ध बुद्ध परमातमा, अलख अगोचर ईश ।
अजर अमर अविनाशि अग, धारक गुणइकतीस ॥ १ ॥
जम्बुवात की द्वीप है, पुष्कर अर्द्ध प्रमाण ।
लख पेतालिस मनुजलोक सिद्ध शिला वरठाण ॥ २ ॥
सहजाकृति निरुपाधि सुख, भोक्ता पूर्णानन्द ।
निर्मल निस्सङ्गी प्रभू, नीरुज नित्यायन्द ॥ ३ ॥
हस्तिपाल नृप पालिया, द्वितीय पद महन्त ।
वर्ण गन्ध रस स्पर्शविन, गुण चतुष्क अनन्त ॥ ४ ॥
सुख सिन्धो । भगवान पद, दीजे त्रिभुवनवास ।
कहे विचक्षण विनय युत, मांगूं यही त्रिकाल ॥ ५ ॥

---

(३)

श्री प्रवचन पद चैत्यवन्दन

जय जय प्रवचन पद वड़ो, विंशतिपद तप माहि ।
तीर्थंकर जितने हुए, आराधे उच्छाहि ॥ १ ॥
जिन प्रवचन शाश्वत नमो, नही आदि नहिं अन्त ।
जीव अनन्ते तिर गये, और तिरेंगेऽनन्त ॥ २ ॥
देश सर्व विरती धरें, सङ्घ चतुर्विध रूप ।
भरत प्रमुख आराध कर, नही दूर करे भवकूप ॥ ३ ॥
सुख का सागर है यही, मोक्ष बीज यह सार ।
स्वर्ण शरण 'भव भव' चहे, सुविचक्षण हितकार ॥ ४ ॥

---

(४)

श्री आचार्य पद चैत्यवन्दन

चौथ पद सूरीश है, शासन थभ समान।
जिनवर सूर्य अभाव मे सूरि प्रदीप सुजान ॥ १ ॥
दर्शन ज्ञान चारित्र तप,-वीर्य सुपन्चाचार।
इनके पालक मुनिवरा, आचारज गणधार ॥ २ ॥
छत्तीस छत्तीस के, छिन्नु वारशत भेद।
द्विसहस्र चउ युगवरा, धरे हरे भववेद ॥ ३ ॥
युगवर श्री सुख सिन्धु है, सूरीश्वर सम्राट।
इनसे शोभित नित रहे, वीर प्रभु का पाट ॥ ४ ॥
पुरुषोत्तम नृप सूरि पद, धरे हर त्रयताप।
स्वर्ण विचक्षण के सदा, सूरीश्वर मा वाप ॥ ५ ॥

---

(५)

श्री स्थविरपद चैत्यवदन

ज्ञानवृद्ध पर्यायवृद्ध, वयोवृद्ध गुणराग।
लौकिक लोकोत्तर थविर कहे दसविध ठाणाग ॥ १ ॥
तीर्थङ्कर गणधर सभी, नवदीक्षित मुनि होय।
सौंपे स्थविर मुनीन्द्र को, देते शिक्षा दोय ॥ २ ॥
शिथिल बने मुनिमार्ग से, दृढ करेंदे उपदेश।
पचमपद आराधना, प्रेम से करो हमेश ॥ ३ ॥
पद्मोत्तर नरपति बने, सुखसागर भगवान।
सुवरण ज्योति प्रकट हो, मिले 'विचक्षण'ज्ञान ॥ ४ ॥

---

(६)

श्री उपाध्यायपद चैत्यवन्दन

पाठकपद छट्ठे नमूं, ज्ञानाकर गुणवन्त ।
  द्वादशाङ्गि गणिपिटक धर, गुण पच्चीस महन्त ॥ १ ॥
अंग इग्यार द्वादश उपांग, छेद पयन्ना मूल ।
  पैतालिस आगम धरे, जिन शासन अनुकूल ॥ २ ॥
श्रमणसंघ को वाचना, दें अप्रमत्त हमेश ।
  पाठकपद में जिन थये, महेन्द्रपाल नरेश ॥ ३ ॥
सुखसागर सुवर्णधर, उपाध्याय भगवान ।
  ज्ञान यत्न से मूर्ख भी, 'विचक्षण' हो विद्वान ॥ ४ ॥

---

(७)

श्री मुनिपद चैत्यवन्दन

सिद्धिगमन की साधना, जो करते दिनरात ।
  सप्तमपद में नित नमूं, त्यागमूर्ति साक्षात ॥ १ ॥
सत्ताईस गुण धारते, तप जप श्रुत अभ्यास ।
  चाह दाह से रहित हो, करते आत्म विकास ॥ २ ॥
आराधक उपशमधरा, क्रोधी विराधक जान ।
  उपशम ही श्रमणत्व है, कल्पसूत्र प्रमाण ॥ ३ ॥
वह सुख अनुभव नहिं करे, चक्रवर्ति सुर इन्द ।
  वीतराग मुनि अनुभवे, जो अनुपम आनन्द ॥ ४ ॥
वीरभद्र लिया मुक्तिपद, सुवर्ण मुनिपद सेव ।
  ज्ञान यत्न युत साधुपद, इष्ट 'विचक्षण' देव ॥ ५ ॥

---

(८)

श्री ज्ञानपद चैत्यवन्दन

सम्यग्ज्ञान सदा नमो, अष्टमपद सुविकाश।
भवभ्रमण अज्ञानमूल, करे सज्ज्ञान विनाश ॥ १ ॥
मतिश्रुतावधि मनपर्यय, केवल ज्ञान प्रधान।
अट्ठाइस बीस छ युगल, इक है अमित विधान ॥ २ ॥
आतमज्ञानी श्वास मे करे कर्म चकचूर।
अज्ञानी नहि कर सके, क्रोड वर्ष भी दूर ॥ ३ ॥
भ्रमत फिरे अज्ञानि जन, ज्यो घाणी का बैल।
छुटकारा तब ही मिले, नाश करे यह मैल ॥ ४ ॥
सुखदायक जिनपद लिया, जयन्तनृप जयकार।
सुवर्णज्ञान सुयत्न से, विचक्षण हो निस्तार ॥ ५ ॥

---

(९)

श्री दर्शनपद चैत्यवन्दन

उपशम क्षायिक मिश्र है, समकित तीन प्रकार।
पांच एक र असख्य है, नवमे पद जयकार ॥ १ ॥
सम संवेग विराग पुनि, करुणा अस्तिक्य पच।
समकित लक्षण धारकर दूर करो भवमंच ॥ २ ॥
समकित विन चारित नहो, है नहिं तत्वप्रतीति।
तत्वज्ञान विन नहिं मिटे, जन्म मरण री भीति ॥ ३ ॥
अंक बिना बिन्दू सभी, कहलाते हैं शून्य।
विन समकित तप जप क्रिया, ज्ञान निर्जरा शून्य ॥ ४ ॥

देह भिन्न आतम लखे, म्यान मध्य तलवार।
हरिविक्रम जिनवर बने, शिवसुख पाया सार ॥ ५ ॥
मिला सुवर्ण समय करो, ज्ञान सुयत्न अतीव।
मिथ्याग्रन्थि अनादि की, छेद 'विचक्षण' जीव ॥ ६ ॥

---

(१०)

श्री विनयपद चैत्यवन्दन

विनयमूल जिनमत है, उत्तराध्ययन सिद्धांत।
प्रथमाध्ययन मनन करो, पद दशवें एकान्त ॥ १ ॥
सर्व गुणों में प्रथम गुण, विनय कहा भगवान।
विनय विना समकित नहो, न फले चारित ज्ञान ॥ २ ॥
अर्हत् सिद्ध सूरि थविर, कुलगण संघ महन्त।
धन्ना सदृश विनय कर, शीघ्र करो भव अन्त ॥ ३ ॥
सुख का सागर विनय है, विनय स्वर्ण रस जान।
ज्ञान यत्न सह विनय गुण, चहै 'विचक्षण' दान ॥ ४ ॥

---

(११)

श्री चारित्रपद चैत्यवन्दन

ग्यारमपद चारित्र जय, शिवपद सुख दातार।
सात आठ भव से अधिक, रहे नही ससार ॥ १ ॥
समृद्धि षट् खण्ड की, तृणवत् करके त्याग।
सर्वविरति स्वीकारते, चक्रवृत्ति महाभाग ॥ २ ॥

अन्तर्मुहूर्त्त साधना, शुद्धभाव से होय ।
अनन्तकाल की कर्मरज, रिक्त करे मलधोय ॥ ३ ॥
चारित विन नहीं मोक्ष हैं, रखडे काल अनन्त ।
पापि अधर्मी दुष्ट भी, शिव गये बन मुनि सन्त ॥ ४ ॥
वरुणदेवनृप पालिया, सुख स्वरूप शिवराज ।
स्वर्ण विचक्षण को मिले, भव भव चरित जहाज ॥ ५ ॥

---

(१२)

श्री ब्रह्मचर्यपद चैत्यवन्दन

नमो ब्रह्मव्रय धारका, द्वादशपद श्रीकार ।
करण योग देवनर, भेद अठारह धार ॥ १ ॥
सभी व्रतों मे व्रत वडो, ब्रह्मचर्यव्रत सार ।
सुर सुरेन्द्र भी नमत है, ब्रह्मचारि नरनार ॥ २ ॥
विषय विजयी स्थूलि भद्र, किया सुदुष्कर काम ।
चौराशी चौवीसि तक, विजयवन्त जसु नाम ॥ ३ ॥
कोशा वेश्या भवन मे ध्यान धरें चउमास ।
द्वादशवर्षी स्नेह तज, करी श्राविका खास ॥ ४ ॥
विजयसेठ विजयामती, अटल ब्रह्मव्रतिमान ।
दान सहस चौराशि मुनि, फल कहे श्री भगवान ॥ ५ ॥
धर न सके सुरराज भी, इक दिन भी ब्रह्चर्य ।
शीलव्रतधारी नमो, श्रावक औ मुनिवर्य ॥ ६ ॥
चन्द्रवर्म सुखपद लियो, ब्रह्मव्रत सुवर्णखान ।
विचक्षण हार्दिक प्रार्थना, दो ब्रह्मव्रत दान ॥ ७ ॥

---

(१३)

श्री क्रियापद चैत्यवन्दन

क्रियाप्रवर्त्तन रहित धन, प्रतिदिन नमूं मुनीश ।
कर्मबन्ध कारण क्रिया, कहि प्रभु ने पचवीस ॥ १ ॥
दान शील तप भाव वर, आवश्यक प्रणिधान ।
ये सब कर अक्रिय बनो, लहो चवदम गुणथान ॥ २ ॥
तेरमपद आराध कर, हरिवाहन नरनाथ ।
सुखसागर भगवद्द बने, तीन लोक वरनाथ ॥ ३ ॥
अशुभ क्रिया से जीव सब, रखड़े काल अनन्त ।
अब सुवर्ण शुभ यत्न कर विचक्षण हो भव अन्त ॥ ३ ॥

---

(१४)

श्री तपपद चैत्यवन्दन

चौदमपद आराधिये, तप कर विविध प्रकार ।
कर्मवल्लि छेदन करे, शुतीक्षण तप तलवार ॥ १ ॥
लब्धी आमो सहि प्रमुख, प्रकटे तप सुप्रभाव ।
कल्पवृक्ष चिन्तामणी, है तप शिवसुखदाव ॥ २ ॥
नन्दन मुनि भव वीर प्रभु, तपोमूर्त्ति साक्षात ।
लग ग्यार पेंताल सहस, मासखमण सय सात ॥ ३ ॥
नन्दिषेण मेतार्यमुनि, सुधन्ना शालिभद्र ।
दृढप्रहारि खंधक प्रमुख, तप कर तिरे मुनीन्द्र ॥ ४ ॥
कनक केतु नृप जिन बने, सुखसागर तपधार ।
स्वर्णोपम तप आचरण, चहे 'विचक्षण' सार ॥ ५ ॥

---

(१५)

श्री गौतमपद चैत्यवन्दन

वीर प्रभु के प्रथम शिष्य, गणधर गौतम स्वाम ।
सर्व लब्धि सम्पन्न को, पनरस पदे प्रणाम ॥ १ ॥
पृथ्वि मात वसुभूति सुत, चौदह विद्या निधान ।
वीरचरण कज मधुप बन, पाया केवलज्ञान ॥ २ ॥
आयुष बाणू वरसका, कञ्चन वरण शरीर ।
मोक्ष गुणावा में गये, पाया भव का तीर ॥ ३ ॥
तीर्थंकर चौवीस के, सब गणधर भगवन्त ।
चौदह सौ बावन्न को, सुरनर इन्द्र नमन्त ॥ ४ ॥
त्रिपदी प्रभु मुख सुन रचे, द्वादशाङ्गि विस्तार ।
गणधर पद से जिन बने, हरिवाहा जयकार ॥ ५ ॥
सुखसागर गौतम सुगुरु, स्वर्णलब्धि भण्डार ।
देवे क्षायिक लब्धिनिधि, लहे विचक्षण पार ॥ ६ ॥

---

(१६)

श्री जिनपद चैत्यवन्दन

जय जय सीमन्धर नमूं, युगमन्धर प्रणमूं ।
बाहु सुबाहु श्री सुजात, स्वयम्प्रभ नाथ नमूं ॥ १ ॥
ऋषभानन अनन्तवीर्य, सूरप्रभ श्री विशाल ।
वज्रन्धर चन्द्रानन, चन्द्रबाहु गुणमाल ॥ २ ॥
भुजङ्ग ईश्वर नमिप्रभ, वीरसेन महाभद्र ।
देवयशाप्रभु अजीतवीर्य, नमो विश जिनचन्द्र ॥ ३ ॥

चौराशीलखपूर्व आयु, धनु शतपच शरीर।
विचरे महाविदेह मे, धन्य धन्य तकदीर ॥ ४ ॥
सुखसिन्धो ! तव स्वर्ण पद, स्पर्शन करूं हमेश।
ज्ञानपुञ्ज प्रवचन सुनूं, दो वरदान जिनेश ॥ ५ ॥
जीमूतवाहन जिन बने, सोलम पद जिन सेव।
यत्न से भव भीति हरो, विचक्षण की हे देव ॥ ६ ॥

(१७)

श्री संयम चैत्यवन्दन

सतरमपद सयम नमो, सतरह विध जयकार।
व्रत पट समिति पंच गुप्ति त्रिक योगत्रय चार ॥ १ ॥
नामान्तर थिर त्रस नव, अजीव प्रेक्षा भेद।
उपेक्षा अरु प्रमार्जना, धर त्रिक योग अखेद ॥ २ ॥
संयम मुक्ति सुमार्ग है, मुक्ति विन। कहा सुख।
विना मुक्ति मिटता नही, जन्म मरण का दुःख ॥ ३ ॥
संयम विन भी मुक्ति कहे, वे लोपें शिवपन्थ।
तीर्थङ्कर चक्री ग्रहे, क्यो फिर संयमपन्थ ॥ ४ ॥
सुखसिन्धु सुवर्ण सयम, ग्रहे पुरन्दर भूप।
ज्ञान यत्न पूर्वक बने 'विचक्षण' सिद्ध आतम रूप ॥ ५ ॥

---

(१८)

श्री अभिनव श्रुत पद चैत्यवन्दन

अष्टादश पद मे धरो, अपूर्वश्रुत अभिधान।
भवभ्रमण जड़ काट दो, यह अनादि अज्ञान ॥ १ ॥

नव नव आगम नित सुनो, वाचन करो हमेश।
आगमज्ञान ही देत है, आतम ज्ञान विशेष ॥ २ ॥
श्रुत स्वाध्याय से कटत है, अष्ट कर्म का फन्द।
आगम आराधक बने, जिनपति सागरचन्द ॥ ३ ॥
सुख का सागर ज्ञान है, स्वर्णसिद्धिरस ज्ञान।
यत्नशील 'विचक्षण' बने, आगमज्ञान निधान ॥ ४ ॥

---

(१९)

श्री श्रुतज्ञान पद चैत्यवन्दन

श्री श्रुतज्ञान सदा नमो, पद उन्नीसवें सार।
तीर्थङ्कर गणधर कथित, द्वादशाङ्गि विस्तार ॥ १ ॥
मति अवधि मनःपर्यवा, केवल ज्ञान प्रधान।
ये चारों ही मौन हैं, उपकारक श्रुत ज्ञान ॥ २ ॥
श्रुत ज्ञानी केवलिसमा, हैं प्रवचन सुप्रदीप।
चवदह वीस श्रुत भेद धर, गुणमुक्ताफल सीप ॥ ३ ॥
सर्वाराधक श्रुत करे, पर भव भी रहे साथ।
सुख सागर श्रुत से बने, रत्नचूड जगनाथ ॥ ४ ॥
तीर्थङ्कर गणधर नहीं, नहीं पूर्वधर आज।
सुवर्ण श्रुत आधार से, 'विचक्षण' ले भव पाज ॥ ५ ॥

---

(२०)

श्री तीर्थपद चैत्यवन्दन

ॐ अर्हं जय तीर्थपद, श्रमण सुश्रावक रूप ।
है अनादि अनन्त यह, कहते त्रिभूवन भूप ॥ १ ॥
अनन्त तीर्थङ्कर बने, और बनेगे अनन्त ।
होते ही सर्वज्ञ सब, स्थापे तीर्थ महन्त ॥ २ ॥
देश विरति द्वादशव्रती, धारे गुण इकवीस ।
मुनि सतरह संयम धरा सुतीर्थ गुणअडतीस ॥ ३ ॥
खरनर सुख सिवु भगवन, तीन लोक हरिपूज्य ।
आनंद विभु कवीद्रं नत, प्रवर्जिनी श्री पुण्य ॥ ४ ॥
वीसम पद से जिन बने, मेरुप्रभ पुण्यवान ।
निर्मल बने सुवर्ण सम, ज्ञान सुयत्न महान ॥ ५ ॥
दोय सहस सतरह स्तवे, अनुपम विगति स्थान ।
मांगे हे विज्ञान धन, सुविचेक्षण तपवान ॥ ६ ॥

तर्ज—(प्रभु पारस अर्ज सुनो मेरी)

भवि करलो वीसस्थानक तप को । भवि करलो ॥ टेर ॥
तीर्थंकर अनन्ते हो गये ।
किया सभी ने महा तप को ॥ भवि० ॥ १ ॥
जितने भी अब होगे तीरथपति ।
वे भी करेगे इस तप को ॥ भवि० ॥ २ ॥
वीसों पद मे एक एक पद भी ।
देवे मुक्ति आराधक को ॥ भवि० ॥ ३ ॥
यह तप चार गति चकचूरे ।
तोड़े चौरासी लख को ॥ भवि० ॥ ४ ॥

प्रतिक्रमण देववन्दन करके।
धारो ब्रह्मचर्य व्रत को ॥ भवि० ॥ ५ ॥
विविध प्रकार से प्रभु भक्ति कर।
सफल करो निज जीवन को ॥ भवि० ॥ ६ ॥
काउसग्ग क्षमासमण प्रदक्षिणा।
पौषध करके तरो भव को ॥ भवि० ॥ ७ ॥
सुखसागर भगवान बताये।
यह तप तारक त्रिभुवन को ॥ भवि० ॥ ८ ॥
प्रभु को सुवरण शासन पायो।
यत्न से टालो भव दुख को ॥ भवि० ॥ ९ ॥
अनुपम वीसस्थानक तप सेवा।
भव भव मिले "विचक्षण" को ॥ भवि० ॥ १० ॥

(तर्ज—अर्ज सुनो गुरुराज)

तप वीसस्थानक जयकार, आराधो पूरण प्रेम धरी (भविजन हर्ष धरी)
करलो सफल अवतार तप जप संयम शुभ भाव भरी ॥ टेर ॥
तीजे भव में अरिहन्त सबही, इस तप को आराधे।
तीर्थंकर शुभ नाम कर्म को, यहि महाशय बांधे ॥ तप० ॥ १ ॥
पद पहले अरिहन्त प्रभु हैं चौतीस अतिशय धारी।
बारह गुण शोभे भगवन्ता, विश्व सकल उपकारी ॥ तप० ॥ २ ॥
सिद्ध आठ इकतीस गुणधारी, प्रवचन गुण सत्तावीसा।
सूरीश्वर छत्तीस छत्तीसी, स्थविर दश गुण ईशा ॥ तप० ॥ ३ ॥
पाठक गुण पचवीस अनेकन, सत्ताईस मुनिराजा।
ज्ञान इक्कावन समकित सड़सठ, बावन विनय गुणराजा ॥ तप० ॥ ४ ॥
चारित्र सित्तर ब्रह्मचर्य गुण, अष्टादश स्वीकारो।

क्रिया पच्चीस रहित हो करके, द्वादश विध तप धरो ॥ तप० ॥ ५ ॥
गौतम पद बारह विध वन्दो, विचरत वीस जिनन्दा ।
संयम सत्तरे बावन्न अभिनव, धारो ज्ञान दिनन्दा ॥ तप० ॥ ६ ॥
चौदह वीस भेद श्रुत सीखो, अज्ञान अनादि निवारो ।
पूजो प्रणमो तीर्थ पद को, नित अड़तीस विचारो ॥ तप० ॥ ७ ॥
उभय काल आवश्यक, पाप कर्म सब हरिये ।
प्रात. शाम मध्यान्ह समय में, देववन्दन विधि करिये ॥ तप० ॥ ८ ॥
एकासन नीवी आंबिल, उपवास छट्ठ से सेवो ।
जघन्य मध्यम उत्कृष्टो तप, कर सुखसागर लेवो ॥ तप० ॥ ९ ॥
एक एक पद का आराधन भी, त्रिभुवन पति बनावे ।
सुवर्ण अवसर मिला यतन से. "विचक्षण" ज्योति जगावे ॥ १० ॥

---

(१७)

वीसस्थानक तप जयवन्तम् ॥ १ ॥
आराधित अगणित भगवन्तम् ॥ २ ॥
ज्ञाता सूत्रे भाषित तत्त्वम् ॥ ३ ॥
रक्षति सुरगण मघ महन्तम् ॥ ४ ॥

वीस स्थानक देव वदन विधि ।

'इच्छामि० इच्छा० चैत्यवंदन करु ? इच्छं, कहकर वीश स्थानक का चैत्यवदन और नमोत्थुणं० कहे। पश्चात खमासमण देकर इरियावाहियं० तस्सउत्तरी० अन्नत्थ० कहकर एक लोगस्स का कायोत्सर्ग करके प्रकट लोगस्स कहे। पीछे 'इच्छामि० इच्छा० चैत्यवदन करु ? इच्छं, कहकर चैत्यवदन करे इसके बाद ज किंचि० नमोत्थुणं० कहकर खडे हो जाय,। पश्चात् अरिहतचेइआणं। अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का कयोत्सर्ग करना। पीछे 'नमो अरिहताणं, कहते हुए कायोत्सर्ग पूराकर 'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्य कहकर वीसस्थानक की पहली स्तुति कहे। इसके बाद लोगस्स० सव्वलोए० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का कायोत्सर्ग करके दूसरी स्तुति कहे। पीछे पुक्खरवरदीवड्ढे० सुअस्स भगवओ० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का कायोत्सर्ग करके तीसरी स्तुति कहे। पश्चात् सिद्धाणं वेयावच्चगराणं० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का कायोत्सर्ग करके नमोऽर्हत्० कहकर चोथी स्तुति कहे। अब नीचे वैठकर 'नमोऽत्थुणं०, कहे, अनन्तर खडे होकर फिर अरिहतचेईआणं० अन्नत्थ० एक नवकार का कयोत्सर्ग पूरा नमोऽर्हन्० कहकर पहली स्तुति कहे। पश्चात् लोगस्स० सव्वलोए०अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का कयोत्सर्ग पूरा कर दूसरी स्तुति कहे। पीछे पुक्खरवरदीवड्ढे० सुअस्स भगवओ अन्नत्थ० एक नवकार का कायोत्सर्ग करके तीसरी स्तुति कहे पश्चात् सिद्धाणं बुद्धाणं वेयावच्चगराणं० अन्नत्थ० एक नवकार का कायोत्सर्ग करके नमोऽर्हत्०कहकर चौथी स्तुति कहे। अब नीचे वैठकर नमोऽत्थुणं० जावंतिचेइआइ० जावंत केवि साहू० नमोऽर्हत्० उवसग्गहरं० का वीसस्थानक का स्तवन कहकर जयवीयराय० कह पश्चात् नमोऽत्थुणं कहे॥ इति॥

वीसस्थानकके उजमणे की वस्तु ।

देवोपकरण

देरासर, कटोरी, रकेबी, जिनविम्ब, स्थापना, आरती, मङ्गल-दीप, अंगलुहने, कलश, केशर की पुडी, नौवकारवाली, अष्टमङ्ग-लिक, चन्द्रवा, पूठीया, तोरण, छत्र, मोर पीछी, चंदन का मुट्ठीया, वीस स्थानकजी के गट्टे, सिंहासन, कचोला, घंटी, तमेड़ा, मुख कोश, कामली, धोती, उत्तरासण, तिलक मुकुट, खसकूंची, धूपदानी वरास की पुडियां, चांदी के वर्क, केसर की पुड़िया, सोने का वर्क चवर, चंदन घसने के चकले, हंडा, ध्वजाएं, अगरवत्ती की पुड़िया ।

ज्ञानोपकरण

सापडा, टीप, पट्टी, कलम, दवात, पुस्तक, पूठा, ठवणी, रुमाल, विटागणा, डोरी, पुस्तक रखने का बकस, वासकुपा, कागज हिंगलू की पुड़िआं, पेंसिल, कवली, रूल ।

चारित्रोपकरण

कम्बल, चोलपट्टे, ओप, ओधाडाडि, चंदरे, औलियां, डीड़े तरपणी, पातरा, जोड, पूंजणी की दंडीये, आसेन, संथारिये, पागरनी, मुहपत्ती, पूंजणी, दंडासन, चवला चरवला की डांडी,

नोट—उपरोक्त सर्व वस्तुए बीस बीस लेना ।